महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.ए. समाजशास्त्र

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.एस. - 015

प्रथम सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : 05

पाठ्यचर्या का शीर्षक : समाजशास्त्र एवं शिक्षा

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. शैलजा दुबे
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग उच्च
शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभु जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
इकाई 1 – डॉ. आदित्य चतुर्वेदी
इकाई 2 - श्री ब्रम्हा नन्द मिश्र
इकाई 3 - श्री रजनीश अग्रहरी

खंड - 2
इकाई 1- डॉ. गुणवंत सोनोने
इकाई 2- डॉ. गुणवंत सोनोने
इकाई 3- श्री ब्रम्हा नन्द मिश्र

खंड - 3
इकाई 1 – डॉ. आदित्य चतुर्वेदी
इकाई 2 - डॉ. आदित्य चतुर्वेदी
इकाई 3 - श्री ब्रम्हा नन्द मिश्र

खंड - 4
इकाई 1- श्री समरजीत यादव
इकाई 2 - डॉ. आदित्य चतुर्वेदी
इकाई 3 - डॉ. गुणवंत सोनोने

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा ठाकरे
टंकण/फार्मेटिंग/इंडिटींग
दू.शि. निदेशालय

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट, दू.शि. निदेशालय

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर, दू.शि. निदेशालय

विषय कोड : एमएएस- 05

विषय का नाम : समाजशास्त्र एवं शिक्षा

क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट

शिक्षण उद्देश्य :

विद्यार्थी निम्नलिखित को समझने में सक्षम हो सकेंगे –

- समाजशास्त्र एवं शिक्षा के बीच अंतरसंबंध को समझ सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक विकास के लिए शिक्षा के महत्त्व को छात्र समझ सकेंगे।
- भारतीय समाज में शिक्षा के उद्भव एवं विकास को समझ सकेंगे।
- छात्र महिला एवं दूर शिक्षा के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- प्राथमिक, उच्च, एवं तकनीकी शिक्षा से भी छात्र परिचित होंगे।
- राष्ट्रीय विकास में शिक्षा किस प्रकार अपना योगदान दे रही है इसकी समालोचना करने में छात्र सक्षम होंगे।

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

समाजशास्त्र एवं शिक्षा

खंड (1) समाजशास्त्र एवं शिक्षा

इकाई : 1 शिक्षा एवं समाजशास्त्र : परिभाषा, विशेषताएं, सिद्धांत एवं संबंध

इकाई : 2 शिक्षा एवं समाजीकरण

इकाई : 3 सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा का संबंध

खंड (2) शिक्षा एवं वैश्वीकरण

इकाई : 1 पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा

इकाई : 2 धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा

इकाई : 3 मानवाधिकार एवं शिक्षा

खंड (3) भारतीय समाज में शिक्षा

इकाई : 1 भारतीय शिक्षा व्यवस्था की विकास-यात्रा

इकाई : 2 महिला शिक्षा

इकाई : 3 मुक्त दूरस्थ शिक्षण

खंड (4) भारतीय समाज, राज्य एवं शिक्षा

इकाई : 1 भारतीय संविधान एवं शिक्षा

इकाई : 2 शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति : प्राथमिक, उच्च, तकनीकी एवं कंप्यूटर शिक्षा

इकाई : 3 शिक्षा : राजनीतिक विचारधाराएं एवं भौगोलिक सीमाएं

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 – समाजशास्त्र एवं शिक्षा**	
	इकाई -1 शिक्षा एवं समाजशास्त्र : परिभाषा, विशेषताएं, सिद्धांत एवं संबंध	4-19
	इकाई -2 शिक्षा एवं समाजीकरण	20-38
	इकाई -3 सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा का संबंध	39-53
2	**खंड - 2 शिक्षा एवं वैश्वीकरण**	
	इकाई -1 पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा	54-75
	इकाई -2 धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा	76-98
	इकाई -3 मानवाधिकार एवं शिक्षा	99-118
3	**खंड - 3 – भारतीय समाज में शिक्षा**	
	इकाई -1 भारतीय शिक्षा व्यवस्था की विकास-यात्रा	119-145
	इकाई -2 महिला शिक्षा	146-160
	इकाई -3 मुक्त दूरस्थ शिक्षण	161-182
4	**खंड - 4 – भारतीय समाज, राज्य एवं शिक्षा**	
	इकाई – 1 भारतीय संविधान एवं शिक्षा	183-197
	इकाई –2 शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति : प्राथमिक, उच्च, तकनीकी एवं कंप्यूटर शिक्षा	198-215
	इकाई –3 शिक्षा : राजनीतिक विचारधाराएं एवं भौगोलिक सीमाएं	216-239

खंड - 1 शिक्षा एवं समाजशास्त्र

इकाई : 01 शिक्षा एवं समाजशास्त्र : परिभाषा, विशेषताएं, सिद्धांत एवं संबंध

इकाई की रूपरेखा

1.1.0. उद्देश्य कथन
1.1.1. प्रस्तावना
1.1.2. शिक्षा का अर्थ
1.1.3. शिक्षा की परिभाषाएँ
1.1.4. शिक्षा की विशेषताएँ
1.1.5. समाजशास्त्र का अर्थ
1.1.6. समाजशास्त्र की परिभाषाएँ
1.1.7. समाजशास्त्र के सिद्धांत
1.1.8. समाजशास्त्र एवं शिक्षा में संबंध
1.1.9. शैक्षिक समाजशास्त्र
1.1.10. शिक्षा का समाजशास्त्र
1.1.11. शैक्षिक समाजशास्त्र की परिभाषाएँ
1.1.12. शैक्षिक समाजशास्त्र के उद्देश्य
1.1.13. शैक्षिक समाजशास्त्र के क्षेत्र
1.1.14. शैक्षिक समाजशास्त्र का पाठ्यक्रम
1.1.15. शैक्षिक समाजशास्त्र की विधियाँ
1.1.16. शैक्षिक समाजशास्त्र की आवश्यकता
1.1.17. शैक्षिक समाजशास्त्र का शिक्षा पर प्रभाव
1.1.18. सारांश
1.1.19. बोध प्रश्न
1.1.20. कठिन शब्दावली
1.1.21. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1.0. उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त छात्र –

- शिक्षा क्या है इसे समझ सकेगें।
- शिक्षा की आवश्यकता क्यों होती है।
- शिक्षा के कौन-कौन से सिद्धांत है।
- समाज क्या है ? उसकी विशेषताएं क्या है ?
- समाजशस्त्र के सिद्धांत कौन-कौन से है।
- शिक्षा एवं समाज में क्या संबंध है।

1.1.1. प्रस्तावना

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। चूंकि व्यक्ति समाज एक सदस्य है अत: व्यक्ति का शिक्षित होना संसकारित होना समाज का संस्कारित और शिक्षित होना है शिक्षा एवं समाज का गहरा संबंध है जहाँ शिक्षा काप्रभाव समाज पर पड़ता है वहीं समाज के अनुरूप शिक्षा दी जाती है। अच्छी शिक्षा से समाज शिक्षित होकर रूढ़ीयों कुरूतियों से दूर होकर एक सभ्य समाज बनाता है। और समाज के सभ्य या असभ्य दोने के आधार पर वहां कि शिक्षा व्यवस्था बदलती है। अत: हम कह सकते है कि समाज एवं शिक्षा एक दूसरे के पूरक है।

1.1.2. शिक्षा का अर्थ

शिक्षा संस्कृत भाषा की शिक्ष् धातु में अ प्रत्यय लगाने से बना है। शिक्ष्ज्ञ का अर्थ है सीखना और सिखाना इसलिए शिक्षा का अर्थ हुआ – सीखने सिखाने की क्रिया। यदि हम शिक्षा के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द एज्युकेशन पर विचार करे तो उसका भी अर्थ यही निकलता है। एज्युकेशन शब्द लैटिन भाषा के एजुकेशन (Education) से बना है और एजूकेटम शब्द उसी के ए (E) तथा ड्यूको (Duco) दो शब्दों से मिलकर बना है। ए का अर्थ है अन्दर से और ड्यूको का अर्थ है आगे बढ़ाना। इसलिए एजूकेशन का अर्थ हुआ – बच्चे का आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करना।

विद्यालय की चार दीवारी में चलने वाली प्रक्रिया शिक्षा का संकुचित रूप है। इसके अनुसार शिक्षा का प्रारंभ प्रत्येक व्यक्ति के लिए उस समय होता है जब वह विद्यालय जाना प्रारम्भ करता है। तथा विद्यालय सामाप्ति पर शिक्षा की सामाप्ति हो जाती है। इसके अनुसार जो व्यक्ति विद्यालय पढ़ने नहीं गया वह शिक्षित नहीं कहा जा सकता अर्थात् वह अशिक्षित है। अर्थात् शिक्षा औपचारिक शिक्षा साधनों द्वारा

निर्धारित की जाने वाली प्रक्रिया है। जिसमें स्थान, पाठ्यक्रम, समय, शिक्षा देने वाला व्यक्ति एवं शिक्षा ग्रहण करने वाला व्यक्ति पूर्व निर्धारित होते है।

शिक्षा को प्रयोग के रूप में देखने पर शिक्षा शब्द का उपयोग दो रूपों में होता है –एक प्रक्रिया के रूप में और दूसरा प्रक्रिया के परिणाम के रूप में।जब हम कहते हैं कि शिक्षा सुचारू रूप से चल रही है तब हम शिक्षा प्रक्रिया होती है। और जब हम कहते हैं कि उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की है तब हम उसके परिणाम की बात करते हैं।आधुनिक शिक्षाशास्त्री शिक्षा को प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं।उनका तर्क है कि जब कोई प्रक्रिया होती है तो उसका परिणाम भी आता है अर्थातप्रक्रिया के साथ परिणाम जुड़ा रहता है वह उससे अलग नहीं है।और शिक्षा प्रक्रिया के परिणाम को अब ज्ञान,कौशल एवं व्यवहार परिवर्तन के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।

शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप की व्याख्या दार्शनिकों,समाजशास्त्रियों,मनोवैज्ञानिकों,एवं अर्थशास्त्रियों ने अपने अपने दृष्टिकोण से की है।इन सभी के अनुसार शिक्षा के स्वरूप को समझने का प्रयास हम करेंगे।

शिक्षा का दार्शनिक स्वरूप – दर्शन का केंन्द्र बिन्दु मनुष्य होता है।दर्शन में मनुष्य के वास्तविक रूप को जानने एवं उसके जीवन के अंतिम उद्देश को निश्चित करने का प्रयास किया जाता है।मानव जीवन के अंतिम उद्देश को प्राप्त करने का मार्ग शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। दार्शनिकों के जीवन के अंतिम उद्देश के संबंध में भिन्न –भिन्न मत हैं इसलिए शिक्षा को अलग –अलग परिभाषित किया है।स्वामी विवेकानंद के अनुसार मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।यूनानी दार्शनिक प्लोटो ने कहा कि शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को पूर्णता प्रदान करना है जिसके कि वे योग्य हैं।

भौतिकवादी दार्शनिक मनुष्य के केवल लौकिक जीवन को सत्य मानते हैं।उनके अनुसार जीवन का अंतिम उद्देश सुखपूर्वक जीना है। भौतिकवादी चार्वाकों कि दृष्टि से शिक्षा वह है जो मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने योग्य बनती है। प्रकृतिवादी दर्शन में भी सुख को प्रधानता दी गई है।वही प्रयोजनवादी दार्शनिक जॉन डी वी के अनुसार शिक्षा व्यक्ति की उन सब योग्यताओं का विकास है जो उससे अपने पर्यावरण प नियंत्रण रखने तथा अपनी संभावनाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करे।

शिक्षा का समाजशास्त्रीय स्वरूप – समाजशास्त्रियों का विचार केंद्र समाज होता है। समाजशास्त्री व्यष्टि को उसके समाज के संदर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में ही देखते समझते हैं।और शिक्षा को व्यष्टि एवं समाज के विकास का साधन मानते हैं। इन्होंने शिक्षा प्रक्रिया की प्रकृति के विषय में कुछ महत्वपूर्ण विचार रखे –

- **शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है** –समाज में रहकर व्यक्ति एक दूसरे की भाषा, विचार, आचरण से प्रभावित होते हैं। प्रभावित होने की इस क्रिया को सीखना कहते हैं और जब यह कार्य किसी निश्चित उद्देश्यों को सामने रख कर किया जाता है तो उसे शिक्षा कहते हैं।
- **शिक्षा अविरत प्रक्रिया है** – शिक्षा के विषय में समाजशास्त्रियों का मत है कि शिक्षा समाज में निरंतर चलती रहती है।जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति कुछ न कुछ सीखता रहता हैं।

- **शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया है** – समाजशास्त्रियों के अनुसार शिक्षा कि प्रक्रिया में एक पक्ष प्रभावित करता है और दूसरा पक्ष प्रभावित होता है।अत: शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया है।शिक्षा का एक ध्रुव शिक्षक तो दूसरा ध्रुव छात्र होता है।
- **शिक्षा विकास की प्रक्रिया है** –शिक्षा के द्वारा मनुष्य के रहन-सहन ,खान-पान एवं विचारों और जीवन को सुखमय बनाने के साधनों में निरंतर परिवर्तन होता रहता है।इस परिवर्तन को विकास कहते हैं।
- **शिक्षा गतिशील प्रक्रिया है** – समाज में परिवर्तन के साथ शिक्षा उन परिवर्तनों को स्वीकार करती है और आगे बड़ती है।और हम देखते है समय –समय पर शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ बदलती रहती है।इसलिए हम कह सकते है कि शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है।

शिक्षा का आर्थिक स्वरूप – अर्थशास्त्रियों का विचार केन्द्र समाज के आर्थिक स्त्रोत और आर्थिक तंत्र होता है। इसलिए अर्थशास्त्री शिक्षा को आर्थिक निवेश के रूप में स्वीकार करते हैं।इनके अनुसार ''शिक्षा वह आर्थिक निवेश है जिसके द्वारा व्यक्ति में उत्पादन एवं संगठन के कौशलों का विकास किया जाता है और इस प्रकार व्यक्ति समाज और राष्ट्र की उत्पादन क्षमता बढ़ाई जाती है और उनका आर्थिक विकास होता है।

शिक्षा का मनोवैज्ञानिक स्वरूप-मनोवैज्ञानिकों का विचार केन्द्र मनुष्य का शरीर,मस्तिष्क और व्यवहार होता है।अत: शिक्षा के द्वारा इन शक्तियों का विकास होना चाहिये।फ्रोबेल के अनुसार शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक अपनी आंतरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रगट करता है।

शिक्षा के व्यापक अर्थ में शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक अनवरत प्रक्रिया है। वह उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर चलती रहती है। इसी कारण शिक्षा शास्त्री यह मानते है कि जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है। व्यापक रूप में शिक्षा एक मुक्त प्रक्रिया है जो कही भी कभी समभव है।

1.1.3. शिक्षा की परिभाषायें

- जगत गुरू शंकराचार्य के अनुसार – ''शिक्षा वह है जो मुक्ति दिलाए'' (स: विद्या या विभुक्तये)
- स्वामी विवेकानंद के अनुसार – ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।
- महात्मा गांधी के अनुसार – ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्म के सर्वांगीण एवं सर्वोकृष्ट विकास है है।''
- प्लेटो के अनुसार – शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करना है जिसके कि वे योग्य है।

- अरस्तु के अनुसार – "स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ मन का निर्माण ही शिक्षा है।"
- चार्वाकों के अनुसार – शिक्षा वह है जो मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने योग्य बनाती है।
- हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार -"शिक्षा का अर्थ अन्त: शक्तियों का बाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है।"
- जॉन डी वी के अनुसार – "शिक्षा व्यक्ति की उन सब योग्यताओं का विकास है जो उसमें अपने पर्यावरण पर नियन्त्रण रखने तथा अपनी सम्भावनाओं को पूर्ण करने का सामर्थ्य प्रदान करें।

1.1.4. शिक्षा की विशेषताएँ/कार्य

शिक्षा की विशेषताएँ शिक्षा के कार्य निम्नानुसार है –

1. शिक्षा उन्नति के रूप में – शिक्षा का मुख्य कार्य उन्नति करना है। जॉ ड्यूवी ने अपनी पुस्तक 'डैमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन' में लिखा है कि "उन्नति करना जीवन की विशेषता है। और शिक्षा का इसके अलावा कोई लक्ष्य नहीं कि जो उसे ग्रहण करे, उसका विकास करें।" हम यह कह सकते है कि जीवन विकास है और जीवन को विकास की ओर उन्मुख करना शिक्षा की जिम्मेदारी है।
2. शिक्षा मानव के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है – शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक चारित्रिक, समाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से विकास करती है। महात्मा गांधी के अनुसार, "शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बालक के शरीर मन व आत्मा का पूर्ण विकास।"
3. शिक्षा आत्म निर्भर बनाती है – शिक्षा व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके तथा अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके उसे किसी पर निर्भर न रहना पड़े। प्रो. बागले के अनुसार "शिक्षा को व्यक्ति को आत्म निर्भर बनाना चाहिए जिससे वह किसी पर भार न बने।" आत्मनिर्भर बनने से व्यक्ति में आत्मविश्वास आता है और वह प्रसन्न रहता है।
4. शिक्षा वातावरण से अनुकूलन एवं समायोजन सिखाती है – शिक्षा व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि वह वातावरण के साथ अनुकूलन व समायोजन कर सकें।
5. शिक्षा बाक का सामाजीकरण करती है – शिक्षा का एक मुख्य कार्य है बालक के व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष को विकसित करना। शिक्षा को इस प्रकार शिक्षित करती है कि वह समाज के नियम कायदों को समझे एवं उनके साथ अनुकूलन या समायोजन करें। वह समाज के मूल्य एवं परम्पराओं को अपने व्यक्तित्व में समाहित करें।
6. शिक्षा बालक का चारित्रिक विकास करती है – शिक्षा बालक के अन्दर सद्गुणों का विकास करती है। शिक्षा बालक के अन्दर शाश्वत मूल्यों व सामाजिक मूल्यों के प्रति आस्था की भावना उत्पन्न करती है जिससे बालक बालक का व्यवहार बदलता है।

7. शिक्षा उत्तम नागरिक बनाने में सहायता प्रदान करती है – शिक्षा के द्वारा छात्रों में आदर्श नागरिक के गुणों सच्च चरिता अनुशासन, निष्पक्ष चिन्तन, देशभक्ति, सहयोग, त्याग, सहानुभूति, सहनशीलता, एवं बन्धुत्व का विकास करती है।
8. शिक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति करती है – व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के शिक्षा द्वारा करता है मनुष्य की व्यक्तिगत, सामाजिक आर्थिक मनोवैज्ञानिक सभी आवश्यकतायें शिक्षा के द्वारा ही पूर्ण होती है। शिक्षित होकर मनुष्य अपनी समस्याओं का हल प्राप्त करता है।
9. शिक्षा राष्ट्रीय भावना का विकास करती है – शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय भावना, भावात्मक एकता, राष्ट्रीय सम्पति की सुरक्षा, राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्र भक्ति का विकास होता है शिक्षा राष्ट्रहित में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है।
10. शिक्षा अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास करती है – शिक्षा मनुष्य में विश्व नागरिकता की भावना उत्पन्न करती है विश्व शान्ति के प्रति प्रेम का विकास कर विभिन्न देशों की संस्कृति, साहित्य का ज्ञान कराती है।

1.1.5. समाजशास्त्र का अर्थ

सोसियोलॉजी का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांस के एक दार्शनिक ऑगस्ट कॉम्टे ने 1837 में किया था। उन्होंने कहा कि समाजशास्त्र एक विज्ञान है यह सभी विज्ञानों का समन्वय है तथा इसका उपयोग सामाजिक पुनर्निमाण में करना चाहिये। इन्हें समाजशास्त्र का जन्मदाता कहा जाता है। समाजशास्त्र अंग्रेजी-भाषा के सोसियोलॉजी का हिन्दी रूपान्तर है यह दो शब्दों सोसियो (Socio) तथा लॉजी (Logy) से मिलकर बना है। सोसियो का अर्थ है समाज एवं लॉजी का अर्थ होता है शास्त्र इस प्रकार इसे म समाजशास्त्र कहते है जिसका अर्थ हुआ समाज का विज्ञान मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में जन्म लेता है समाज में ही उसका विकास होता है बिना समाज के उसका कोई जीवन नहीं होता अत: उसकी सम्पूर्ण क्रिया समाज में ही सम्पन्न होती है। अत: व्यक्ति पर समाज का और समाज का व्यक्ति पर प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति तथा समाज में सदैव अन्त:क्रिया चलती रहती है। इस परस्पर चलने वाली अन्त:क्रिया में अनेक सामाजिक प्रक्रियाचें तथा सामाजिक तत्व सम्मलित होते हैं, ये सभी सामाजिक तत्व समाजशास्त्र की विषय वस्तु हैं।

- समाजशास्त्र सामाजिक प्रक्रियाओं तथा सामाजिक तथ्यों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है।
- समाजशास्त्र मानव के बहुमुखी व्यवहार का अध्ययन करता है।
- समाजशास्त्र सामाजिक समस्याओं जो व्यक्ति, परिवार, समाज, धर्म, राज्य, जाति, वर्ग् आदि से संबंध रखती है।
- समाजशास्त्र समस्याओं की प्रकृति का अध्ययन करता है।
- समाजशास्त्र मानव पर प्रभाव डालने वाले तत्वों जेसे रीति-रिवाज, परम्परायें, सामाजिक संस्थाये आदि का अध्ययन करता है।

- समाजशास्त्र सम्पूर्ण मानव-संस्कृति का अध्ययन करता है।
- समाजशास्त्र सामाजिक विघटन एवं सामाजिक परिवर्तनों के विकास के कारण एवं निवारण के उपायों का अध्ययन करता है।
- समाजशास्त्र सामाजिक संगठनों का अध्ययन उसके प्रमुख आधारों द्वारा करता है जिसके कारण समाज में सहयोग, सहानुभूति तथा संवेदना की स्थिति बनती है।

1.1.6. समाजशास्त्र की परिभाषाएँ

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने समाजशास्त्र को अपने-अपने तरह से परिभाषित किया है कुछ प्रमुख समाजशास्त्रियों की परिभाषा निम्नानुसार है –

- आगसट काम्टे के अनुसार – " समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक प्रगति का विज्ञान है।''
- कूले एवं मूर के अनुसार – "समाजशास्त्र व्यक्ति के बहुमुखी व्यवहार का अध्ययन करता है।''
- इमाइल दुर्खीम के अनुसार – "समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधित्व का विज्ञान है।''
- गिलिन और गिलिन के अनुसार – "व्यापक अर्थों में समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो मानव समूह के संयोग से उत्पन्न होने वाली अन्त: क्रियाओं का अध्ययन करता है।''
- उनकन के अनुसार – "समाजशास्त्र मानव के मध्य होने वाली अनत:क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है जिसके अन्दर जैवकीय मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों के प्रारूपों का अध्ययन किया जाता है।
- मैक्स बेवर के अनुसार – "समाजशास्त्र वह विज्ञान है। जो सामाजिक क्रियाओं का विश्लेषणात्म्क बोध कराता है।''
- मेकाइबर और पेज – "समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों का व्यवस्थित अध्ययन है। सामाजिक संबंधों के जाल को हम समाज कहते है।''

1.1.7. समाजशास्त्र के सिद्धांत

समाजशास्त्र के सिद्धांतों को मुख्य रूप से पाँच भागों में विभाजित कर सकते है। जो निम्नानुसार है –

1. क्लासिकी समाजशास्त्र सिद्धांत
2. आगस्त काम्टे का सिद्धांत
3. दुर्खाइम का सिद्धांत
4. मार्क्सवादी सिद्धांत

5. वेबर का सिद्धांत
6. पार्सन्स का कार्य सिद्धांत
7. राबर्ट के मार्टम का सिद्धांत

क्लासिकी समाजशास्त्रीय सिद्धांत – इस सिद्धांत में यह विचार उभर कर सामने आया कि समाज का वैज्ञानिक अध्ययन म्भव है। समाज किस प्रकार स्वयं की पहचान बनाता है ? इसका वैज्ञानिक अध्ययन कैसे किया जा सकता है ? ऐसे सभी प्रश्न इस सिद्धांत में सम्मलित थे।

आगस्त काम्टे का सिद्धांत – समाजशास्त्र को अलग एवं स्वतंत्र विषय के रूप में स्थापित करने के लिए आगस्त काम्ट ने समाजशास्त्र को दो भागों में बाट दिया सामाजिक संख्यिकी एवं सामाजिक गतिशीलता। सामाजिक सांख्यिकी समाज में संतुलन से संबंधित है जबकि सामाजिक गतिशीलता का संबंध समाज में परिवर्तन से। उनका मानना था कि समाजशास्त्र को गणित, जीव विज्ञान, या राजनीतिक अर्थव्यवस्था की तरह परिसीमित नहीं किया जा सकता। उन्होंने त्रि-चरणों के नियम की बात की धर्मविज्ञान, आलौकिक एवं वैज्ञानिक। उनके अनुसार प्रत्येक समाज तीनचरणों से गुजरता है। धर्म विज्ञान में प्रत्येक घटना को ईश्वर से जोड़ा जाता है। अलौकिक अवस्था-जिसका अर्थ होता है बदलाव तथा तीसरे चरण को वैज्ञानिक चरण कहते है। जहाँ समाज के सन्दर्भ में ईश्वरीय शक्ति तथा अलौकिकता को पर्याप्त नहीं माना जाता।

दुर्खाइम का सिद्धांत – फांस के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाइल दुर्खाइम ने अगस्त काम्टे द्वारा स्थापित प्रत्यक्षवाद की परम्परा को कायम रखा। दुर्खाइम ने अगस्त काम्टे के छोड़े गये काम से अपना काम प्रारंभ किया। उन्होंने कहा कि समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए प्राकृतिक विज्ञान क नियमों को लागू किया जा सकता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'द रूल ऑफ सोयियोलॉजिकल मैथड में अपने समाजशास्त्रीय उपागम को खोल कर स्पष्ट किया। दुर्खाइम सामाजिक विश्लेषण विधि पर जोर देते है जिसे वे 'सामाजिक तथ्य' कहते है। इसलिए में पहली बार समाजशास्त्रीय सूत्रीकरण दुर्खाइम के 'सामाजिक तथ्य' के विचार से शुरू हुये।

मार्क्सवादी सिद्धांत – जर्मनी के दर्शनशास्त्री कार्ल मार्क्स एक समाजिक विज्ञानी के साथ-साथ समाजशास्त्री भी थे। मार्क्स ने कुछ बुनियादी सूत्र प्रस्तुत किये इन बुनियादी सूत्रों में शामिल हैं – ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग एवं वर्ग संघष्ज्ञ, अधिशेष मूल्य का सिद्धांत एवं अलगवाद। मार्क्स के सूत्रों ने समाजशास्त्रीय विश्लेषण के लिए नई दिशा दिखाई। मार्क्स की विधि में 'तर्कशास्त्र' के सिद्धांत को शामिल किया गया जिसकी पहले किसी समाजशास्त्री ने चर्चा नहीं की। मार्क्स के सिद्धांत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण था 'द्वद्वात्मक विधि' इसकी सहायता से उन्होंने समाज की भौतिकवादी व्याख्या थी।

मैक्स बेवर का सिद्धांत – जर्मनी के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री मैक्स बेवर समाजशास्त्र में क्लासिकी युग के थे। मैक्स बेवर ने अपने नीजि शब्दों एवं तरीकों से समाजशास्त्र को परिभाषित किया। उनके द्वारा निर्मित 'वर्सिटीहेन' जैसे सूत्रों के लिए अभी भी स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। मैक्स बेवर के प्रमुख सूत्र है सोशल एक्शन, वर्सिटिहोनया फिनौमिलौजी। मैक्स बेवर ने समाजशास्त्र में वस्तुनिष्ठता बनाम विषय निष्ठता संबंधी मुद्दो के बारे में लिखा है।

पार्सन्स का कार्य सिद्धांत – टॉलकोट पार्सन्स अमेरिका के प्रसिद्ध समाजशास्त्री थे उनका सामाजिक कार्य के सिद्धांत में महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने रैफरेंस के एक्शन फ्रेम, सामाजिक पद्धति और विकासवाद पर चर्चा की। उन्होंने 'द सोशल स्टिम' में क्रिया के तीन अनिवार्य घटक व्यक्तित्व-व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था, और सांस्कृतिक व्यवस्था बतलायें। एक अन्य पेपर में उन्होंने "एगिल (AGIL) रूपावली" को स्पष्ट किया जिसके अनुसार ए का अर्थ है अनुकूलन जी का अर्थ है लक्ष्य प्राप्ति, आइ का समेकन और एल का अर्थ है अव्यक्तता। उनकी एक अन्य महत्वपूर्ण रचना है "पैटर्न चर योजना"

राबर्ट के मार्टम का सिद्धांत – राबर्ट के मार्टन ने सिद्धांत एवं तथ्य के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। इन्होंने प्रकार्यात्मक सिद्धांत 'को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया। इसमें उन्होंने तीन अवधारणों का हवाला दिया है। ये है – 1. समाज की प्रकार्यात्मक एकता की अभिधारणा 2. सार्वभौमिक प्रकार्यवाद की अवधारणा 3. अपरिहार्यता की अवधारणा।

1.1.8. समाजशास्त्र और शिक्षा में संबंध

समाजशास्त्र में समाज और सामाजिक समूहों का अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति का समूह विशेष पर और समूह विशेष का व्यक्ति पर किस प्रकार प्रमाव पड़ता है इसका अध्ययन किया जाता है। इसके साथ-साथ व्यक्ति के व्यवहार निर्धारक अन्य सामाजिक तत्वों जैसे – संस्कृति, सभ्यता, मूल्यों, आदि का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा भी एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन होता है। अत: शिक्षा समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में आती है और चूंकि दोनों का संबंध मानव व्यवहार से है इसलिए इनमें आपस में गहरा संबंध है।

मनुष्य के व्यवहार में क्या परिवर्तन करना है यह उस समाज के दर्शन, संरचना, सभ्यता संस्कृति धर्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। और इसका समग्र रूप से अध्ययन समाजशास्त्र में किया जाता है। इस प्रकार समाजशास्त्र शिक्षा के स्वरूप को निश्चित करने का आधार होता है। दूसरी तरफ शिक्षा मनुष्य के सम्पूर्ण विकास की आधारशिला होती है। उचित शिक्षा के द्वारा ही कोई समाज ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विकास करता है। शिक्षा के अभाव में समाज का विकास सम्भव नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते है कि समाजशास्त्र एवं शिक्षा में गहरा संबंध है। वे एक दूसरे के पूरक है।

1.1.9. शैक्षिक समाजशास्त्र

शिक्षा और समाज के घनिष्ठ संबंधों ने शैक्षिक समाजशास्त्र को जन्म दिया। दुर्खीम के अनुसार शिक्षा मूलत: अपने स्वरूप, उद्भव एवं प्रकार्य दृष्टि से एक सामाजिक क्रिया है। फलत: शिक्षा का सिद्धांत किसी अन्य विका की अपेक्षा समाजशास्त्र से स्पष्ट रूप से संबंधित होता है। शैक्षिक समाजशास्त्र में समाजशास्त्र के उन सभी सिद्धांतों को उपयोग में लाया जाता है जो शिक्षा के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों को प्रभावित करते है।

शैक्षिक समाजशास्त्र पर व्यवस्थित अध्ययन 1923 ई. में अमेरिका के समाजशास्त्री ई. जार्ज पेनी ने किया। उन्होंने अपनी पुस्तक प्रिंसिपल्स ऑफ एज्युकेशनल सोसियोलॉजी में लिखा कि यह एक नवीन

विज्ञान है जो समाजशास्त्र को शिक्षा से जोड़ता है। उन्होंने शैक्षिक प्रक्रिया की व्याख्या समाजशास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर की। उन्होंने बताया कि सामूहिक जीवन पर शिक्षा एवं समाज का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और वह समाज के उत्थान तथा पुननिर्माण के मध्य कार्य करती है।

जॉन डी वी ने अपनी पुस्तक 'स्कूल एण्ड सोसाइटी' और डेमोकेसी एण्ड एज्यूकेशन में शिक्षा को एक सामाजिक प्रक्रिया माना है। जो व्यक्ति के द्वारा जाति की सामाजिक चेतना में भाग ले ने से विकसित होती है। भारत में शैक्षिक समाजशास्त्र का प्रारंभ 1965 में हुआ। भारत में शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रवर्तक प्रो. एम. एम. गोरे थे।

1.1.10. शिक्षा का समाजशास्त्र- यह समाजशास्त्र की वह शाखा है जो समाज और शिक्षा के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन करती है।कुछ विद्वानों ने इसे निम्नानुसार परिभाषित किया है-

ब्रूकोवर के अनुसार –शिक्षा का समाजशास्त्र शिक्षा व्यावस्था का वैज्ञानिक विश्लेषण है।

हेम्पसेन के अनुसार - शिक्षा का समाजशास्त्र शिक्षा और समाज के बीच के संबंध से सरोकार रखता है।

बी.वी.शाह के अनुसार- विस्तृत रूप से कहें तो शिक्षा के समाजशास्त्र की रूचि सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में शिक्षा व्यवस्था के अध्ययन में है।

शिक्षा के समाज शास्त्र विषय का शिक्षा को योगदान – शिक्षा का समाजशास्त्र विषय शिक्षा के लोगो को निम्नांकित योगदान दे सकता है –

- यह बाह्य सामाजिक व्यवस्था का पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन कर सकता है।
- यह समाज की एक प्रमुख संस्था के रूप में विद्यालय का व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत कर सकता है।
- यह कक्षा में होने वाली सामाजिक अंत: क्रिया को समझने में समाजशास्त्रीय सिद्धांत और विधि को उपयोग में ला सकता है।

शिक्षा का नया समाज शास्त्र –यह शिक्षा समाजशास्त्र का वर्तमान चरण है। इसकी जानकारी अधिकांश भारतीय शिक्षकों को नहीं है।उन्हें इसकी जानकारी अवश्य होनी चाहिए।काल मार्क्स ने इसकी शुरूवात की।एल्थूसर के अनुसार शिक्षा शासक वर्ग की विचारधारा को ही प्रसारित करती है और श्रम विभाजन में बड़े वर्गों के लिए उन्हीं दृष्टिकोणों और व्यवहारों के मैनेजर ,प्रशासक ,और राजनीतिज्ञों को पैदा करती है जिससे कि आम श्रमिक का शोषण किया जाता है।

शिक्षा के समाजशास्त्रका महत्व- वर्तमान में शिक्षा एकांत में चलने वाली प्रक्रिया नहीं रहगयी है।उसे समाज में रहकर ही प्राप्त किया जाता है ,शिक्षा समाज के लिए दी जाती है तथा समाज के द्वारा दी जाती है। शिक्षक एवं शिक्षा संस्थानों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कई मामलो में समाल ,राज्य की सहमति लेना पड़ती है ,उसे समाज के मूल्यों आदर्शों के आधार पर काम कारण पड़ता है।अत: समाज एवं शिक्षा का परस्पर संबंध अभिन्न बन गया है।

शैक्षिक समाजशास्त्र एवं शिक्षा का समाजशास्त्र में अंतर- शैक्षिक समाजशास्त्र एवं शिक्षा का समाजशास्त्र में अंतर को निम्नानुसार स्पष्ट कर सकते है।

शैक्षिक समाजशास्त्र	शिक्षा का समाजशास्त्र
1.यह मूलरूप से शिक्षाशास्त्र का अंग है।	1.यह मूलरूप से समाज शास्त्र की एक शाखा है।
2.यह अनुप्रयोगिक समाजशास्त्र है।	2.या शुद्ध समाजशास्त्र की एक शाखा है।
3.इस क्षेत्र में किए गए शोध सतही है।	3. इस क्षेत्र में किए गए शोध वैज्ञानिक है।
4.इसका शिक्षण अव्यवस्थित है।	4.इसका शिक्षण व्यवस्थित है।
5.शैक्षिक समाजशास्त्री अधिक व्यावहारिक होते है।	5.शिक्षा समाजशास्त्री अधिक सैद्धांतिक होते है।
6.इसमें समाजशास्त्र शिक्षा के भीतर देखता है।	6.इसमें समाजशास्त्र शिक्षा के बाहर देखता है।
7.यह शिक्षा समाजशास्त्र के पूर्व का विषय है।	7.यह वर्तमान में शिक्षा का समाजशास्त्र है।

1.1.11. शैक्षिक समाज की परिभाषाएं

शैक्षिक समाजशास्त्र को विभिन्न विद्वानों ने निम्नानुसार परिभाषित किया है।

- जार्ज पेने – "शैक्षिक समाजशास्त्र से हमारा अभिप्राय उस विज्ञान से है जो कि संस्थाओं सामाजिक समूहों और सामाजिक प्रक्रियाओं की व्याख्या एवं विवेचना करता है, अर्थात् वे सामाजिक संबंध जिनसे या जिनसे द्वारा व्यक्ति अपने अनुभवों को प्राप्त करने है एवं संगठित करते हैं।"
- कार्टर – "शैक्षिक समाजशास्त्र समाजशास्त्र के उन तत्वों का अध्ययन करता है जिनका शैक्षिक प्रक्रिया में महत्व है और विशेष रूप से उनका अध्ययन करता है जो सीखने की महत्वपूर्ण योजना और सीखने की क्रिया के नियंत्रण की ओर संकेत करते है।"
- रोसेक – "शैक्षिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में सब सामाजिक प्रक्रियाएं आ जाती है।"
- ब्राउन – "शैक्षिक समाजशास्त्र, समाजशास्त्र के सिद्धांतों को शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर लाग करता है।"
- ए.के.सी. ओटावे – "शैक्षिक समाजशास्त्र का आरम्भ इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए हाता है कि शिक्षा एक प्रक्रिया है जो समाज में होती है और वह समाज जिसमें यह शैक्षिक प्रक्रिया होती है, अपनी प्रकृति के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों तथा शिक्षा शिक्षण पद्धतियों को निर्धारित करता है।"
- डॉ. आदित्य चतुर्वेदी के अनुसार – "शिक्षा को यदि व्यपक रूप् से लिया जाये तो वह समाज में ही होने वाली प्रक्रिया है अत: समाजशास्त्र एवं शैक्षिक समाजशास्त्र अलग नहीं है एक ही है।"

1.1.12. शैक्षिक समाजशास्त्र के उद्देश्य

हेरिंगटन के अनुसार शैक्षिक समाजशास्त्र के निम्नांकित उद्देश्य है –

- विद्यालय को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारको का अध्ययन करना।
- सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का समझना व उन्हें पाठ्यक्रम में उचित स्थान देना।
- शिक्षक के कार्य का तथा सामाजिक प्रगति के लिए विद्यालय के कार्य का समाज के सन्दर्भ में ज्ञान प्राप्त करना।
- सामाजिक तत्वों का अध्ययन करते हुए उनके द्वारा व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करना।
- जनतन्त्रीय सिद्धांतों को समझना।
- इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अनुसन्धान की विधियों का उपयोग करना।

1.1.13. शैक्षिक समाजशास्त्र के क्षेत्र

ब्राउन के अनुसार शैक्षिक समाजशास्त्र के क्षेत्र निम्नानुसार है –

- शिक्षक के समाज में स्थान का अध्ययन करना।
- विद्यालय एवं सामाजिक संगठनों के परस्पर संबंध का अध्ययन करना।
- सामाजिक विकास व सामाजिक नियन्त्रण का अध्ययन करना।
- सामाजिक जीवन किस प्रकार व्यक्तियों एवं ़विालय को प्रभावित करता है। इसका अध्ययन करना।
- स्थानीय समुदायों का महत्व और उद्देश्यों का अध्ययन करना।

डी.एफ.स्विफ्ट के अनुसार शैक्षिक समाजशास्त्र के क्षेत्र निम्नानुसार है –

- एक सामाजिक समूह के रूप में विद्यालय का अध्ययन करना।
- शिक्षा संस्थाओं पर अन्य सामाजिक संस्थाओं के प्रभाव का अध्ययन करना।
- शिक्षा संस्था द्वारा समाज के लिए निर्धारित कार्यों का अध्ययन करना।
- सामाजिक अन्तर्सम्बन्ध के एक पक्ष के रूप में शिक्षा की प्रक्रिा का अध्ययन कर।

1.1.14. शैक्षिक समाजशास्त्र और पाठ्यक्रम

शैक्षिक समाजशास्त्र के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। समाज एवं उनकी आवयकतायें परिवर्तनशील होती है। इस कारण शिक्षा का पाठ्यक्रम भी बदलते रहना चाहिए। पाठ्यक्रम तना लचीला होना चाहिए कि समाज की बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार उसका उपयोग किया जा सके। पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए –

- पाठ्यक्रम तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं एवं आकाक्षांओं के अनुरूप हो।
- पाठ्यक्रम छात्रों के अन्दर सामाजिकता का भावना पैदा करने वाला होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं समस्याओं का निराकरण वाला होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम समाज का विकास करने वाला होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम समाज के मूल्यों, आदर्शों व संस्कृति से परिचित कराने वाला होना चाहिए।

1.1.15. शैक्षिक समाजशास्त्र और शिक्षण विधियाँ

जार्ज पैने ने शैक्षिक समाजशास्त्र में निम्नलिखित बिन्दुओं को शिक्षण विधियों में सम्मलित करने की बात कही है-

- शिक्षण विधियाँ सैद्धांतिक कम व व्यवहारिक अधिक होनी चाहिए।
- विद्यालय में आर्जित ज्ञान को छात्र अपने दैनिक (वास्तविक) जीवन से जोड़ सके।
- शिक्षण विधियों के द्वारा छात्रों को इतना सक्षय बनाया जाये कि वह स्वयं को सामाजिक वातावरण के अनुकूल ढाल सकें।
- छात्रों की सामाजिक शक्तियों को विकसित करने का प्रयास किया जाये।

शिक्षा समाजशास्त्र में शोध करने की निम्नलिखित विधियाँ होती है

- **ऐतिहासिक विधि** –परंपरागत ऐतिहासिक विधि में महान पुरूषों और प्रमुख घटनाओं का अध्ययन किया जाता था जबकि आधुनिक ऐतिहासिक विधि में जनसाधारण की समस्याओं,स्थितियों , महत्वाकांक्षाओं तथा घटनाओं का अध्ययन किया जाता है।
- **तुलनात्मक विधि** – तुलनात्मक विधि में दो या दो से अधिक घटनाओं, समस्याओं, परिस्थितियों,व्यवस्थों,व्यक्तियों के बीच पाई जाने वाली समानताओं और असमानताओं का वर्णन किया जाता है।
- **संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विधि-** इस विधि में सबसे पहले हम समाज की संरचना में कर्ता की स्थिति का विश्लेषण करते हैं इसके अंतर्गत उसकी जाति,धर्म,वर्ग,समूह ,आयु

,राजनैतिक संगठन,आदि साए संबन्धित जानकारी एकत्र करते है। इसके पश्चात कर्ता या संस्था के प्रकार्यों का विश्लेषण करते है।

- **सांख्यिकी विधि** – सांख्यिकी के विभिन्न सूत्रों के द्वारा गुणात्मक सामग्री को विश्लेषित किया जाताहै। प्रारम्भ में इसका प्रयोग कम होता था किन्तु बाद में प्रयोग बड़ गया और कम्प्युटर ने उसे और सरल बना दिया है।
- **आदर्श प्रकार विश्लेषण विधि** – इस विधि में जिस व्यक्ति संस्था का विश्लेषण करने जा रहे है,पहले उसके रूप की कल्पना ,विचार मंथन ,अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर एक आदर्श चित्र बनाया जाता है। फिर इस आदर्श तस्वीर से हम उसकी तुलना करते है।

1.1.16. शैक्षिक समाजशास्त्र की आवश्यकता

शिक्षा का कार्य बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। बालक के विकास पर उसके परिवार, विद्यालय, समुदाय, संस्कृति आदि का प्रभाव पड़ता है। शैक्षिक समाजशास्त्र इन सभी का अध्ययन करता है। शैक्षिक समाजशास्त्र की आवश्यकता एवं महत्व निम्नानुसार है –

- शैक्षिक समाजशास्त्र से शिक्षा की अवधारणा को समझने में सहायता मिलती है।
- शैक्षिक समाजशास्त्र से समाज के विभिन्न रूपों का शिक्षा पर प्रभाव ज्ञान प्राप्त होता है।
- समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा के उद्देश्यों को निर्धारित करने में सहायता मिलती है।
- शैक्षिक समाजशास्त्र की सहायता से विद्यालयों के स्वरूप व उनके कार्यों का ज्ञान प्राप्त होता है।
- शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक के महत्व एवं योगदान को समझने के लिए शैक्षिक समाजशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है।
- शैक्षिक समाजशास्त्र में पिछड़े, समस्या मूलक, अपराधी बालकों की समस्याओं एवं उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया जाता है।
- शैक्षिक समाजशास्त्र से शिक्षा की अन्य समस्याओं का हल खोजने में सहायता मिलती है।
- शैक्षिक समाजशास्त्र अनुशासन हीनता को अपराध की पृष्ठभूमि में न देखकर सामाजिक वातावरण की पृष्ठभूमि में देखता है।

1.1.17. शैक्षिक समाजशास्त्र का शिक्षा पर प्रभाव

शैक्षिक समाजशास्त्र का शिक्षा पर प्रभाव के फलस्वरूप शिक्षा में अनेक पिरवर्तन हुए हैं –

- जनता तथा लोक कल्याण की शिक्षा के लिए आन्दोलन प्रारंभ हुए।
- बालकों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया।

- प्रौढ़ शिक्षा प्रारंभ की गई।
- विकलांग एवं मंद बुद्धि छात्रों की शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किये गये।
- शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण संस्थान खोले गये।
- शिक्षा को बाल केन्द्रित बनाया गया।
- शिक्षा में मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाने लगा।
- ग्रामीण छात्रों के अध्ययन हेतु नवोदय विद्यालय खोले गये।
- आदिवासी छात्रों को उनकी भाषा में पढ़ाने की व्यवस्था की गई।
- मातृभाषा प्रयोग पर बल दिया गया।।

1.1.18. सारांश

इस इकाई में आपने शिक्षा का अर्थ परिभाषा विशेषताएं समाज का अर्थ परिभाषा विशेषताएं एवं सिद्धांत के विषय में अध्ययन किया इसके साथ-साथ शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ परिभाषा उद्देश्य क्षेत्र पाठ्यक्रम एवं उसकी विधियों का अध्ययन किया। समाजशास्त्र का शिक्षा से संबंध को भी आपने पढ़ा।

1.1.19. बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों में चारसंभवित उत्तर दिये गए है सही उत्तर का चुनाव कर लिखिए।

प्रश्न 1. शिक्षा के विषय में क्या सही है ?

(क) शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। **(ख)** शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया है।

(ग) शिक्षा गतिशील प्रक्रिया है। **(घ)** शिक्षा अचर प्रक्रिया है।

प्रश्न 2. "शिक्षा वह है जो मुक्ति दिलाए" किसने कहा ?

(क) स्वामी विकेकानंद **(ख)** जगगुरू शंकराचार्य

(ग) अरस्तू **(घ)** महात्मा गांधी

प्रश्न 3. शिक्षा की विशेषता नहीं है

(क) शिक्षा चारित्रिक विकास करती है। **(ख)** शिक्षा राष्ट्रीय भावना का विकास है।

(ग) शिक्षा आवाश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती है। **(घ)** शिक्षा उत्तम नागरिक बनाने में सहायता करती है।

प्रश्न 4. "समाजशास्त्र व्यक्ति के बहुमुखी व्यवहार का अध्ययन करता है"किसने कहा -

(क) इमाइल दुर्खीम **(ख)** आगस्ट कामते

(ग) कूले एवं मूर **(घ)** उनकन

प्रश्न 5."द रूल ऑफ सोसियोलोजिकल मैथड" पुस्तक किसने लिखी।

(क) इमाइल दुर्खीम **(ख)** कूले एवं मूर

(ग) मैक्स वेबर **(घ)** उनकन

प्रश्न 6. भारत में शैक्षिक समाजशास्त्र के प्रवर्तक थे।

(क) श्यामा चरण दुबे **(ख)** प्रो.एम.एम.गोरे

(ग) महात्मा गांधी **(घ)** प्रो.एस.एन.चौधरी

प्रश्न 7. शिक्षा से आप क्या समझते है ?

प्रश्न 8. शिक्षा के मुख्य विशेषताएँ लिखिए

प्रश्न 9. समाजशास्त्र के मुख्य सिद्धांत कौन-कौन से है ?

प्रश्न 10. समाजशास्त्र का से क्या संबंध है ?

प्रश्न 11. शैक्षिक समाजशास्त्र से आप क्या समझते है

प्रश्न 12. शैक्षिक समाजशास्त्र समाजशास्त्र से कैसे भिन्न है।

प्रश्न 13. शैक्षिक समाजशास्त्र की आवश्यकता क्यों है ?

प्रश्न 14. शैक्षिक समाजशास्त्र के क्षेत्र एवं उद्देश लिखिए।

प्रश्न 15. शैक्षिक समाजशास्त्र एवं शिक्षा का समाजशास्त्र में अंतर स्पष्ट कीजिए।

1.1.20. कठिन शब्द

प्रकार्यात्मक, वर्सिटी हेन, क्लासकीय सामाजिक विज्ञान

1.1.21. संदर्भ ग्रंथ

- मिश्रा, उमा. (2014). *शिक्षा का समाजशास्त्र*. इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस.
- रूहेला, सत्यपाल. (2012). *भारतीय शिक्षाका समाजशास्त्र*. राजस्थान: हिंदी ग्रंथ अकादमी.
- रमन, बिहारी. लाल. (2012). *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत*: रस्तोगी पब्लिकेशन्स.
- एगर, बेन. (1978) *वेस्टर्न मार्क्सिज्म एवं इंट्रोडक्शन*. सांता मोनिका कालिफ: गुडईयर.
- एल्फ्रड, रॉबर्ट. आर. एण्ड फ्रेडलेंड, रोजर. (1985). *पावर्स ऑफ थ्योरी : कैपिटलिज्म द स्टेट एंड ईमोक्रेसी*. कैम्ब्रिज: यूनिवर्सिटी प्रेस.

इकाई-2 समाजीकरण एवं शिक्षा

इकाई संरचना

1.2.0. उद्देश्य

1.2.1. प्रस्तावना

1.2.2. समाजीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

1.2.3. समाजीकरण की विशेषताएँ

1.2.4. समाजीकरण के उद्देश्य

1.2.5. समाजीकरण के तत्व

1.2.6. समाजीकरण के प्रमुख साधना

1.2.7. समाजीकरण कैसे होता है

1.2.8. समाजीकरण की पद्धतियाँ

1.2.9. समाजीकरण के कारक

1.2.10. समाजीकरण ही शिक्षा है: शिक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

1.2.11. शिक्षा की परिभाषा: परंपरागत समाजीकरण ही शिक्षा है

1.2.12. सारांश

1.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.2.0. शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- समाजीकरण के अर्थ एवं उसके विस्तृत रूप को परिभाषित कर सकेंगे।
- समाजीकरण की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- समाजीकरण के उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- समाजीकरण के विभिन्न कारक को जान सकेंगे।
- शिक्षा के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।
- समाजीकरण एवं शिक्षा की अवधारणा को समझ सकेंगे।

1.2.1. प्रस्तावना

इस इकाई में समाजीकरण का अर्थ एवं विभिन्न विद्वानों द्वारा दिये गये परिभाषाओं के द्वारा समाजीकरण को समझाने का प्रयास किया गया है। समाजीकरण की विशेषताओं, उद्देश्य, तत्व एवं प्रमुख साधनों को विस्तृत रूप से समझाने का प्रयास किया गया है। साथ ही साथ समाजीकरण कैसे होता है एवं समाजीकरण की विभिन्न विभिन्न पद्धतियों एवं उनके कारकों की विस्तृत रूप से समझाया गया है। समाजीकरण एवं शिक्षा का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण समझाया गया है। शिक्षा को परिभाषित करते हुए परंपरागत समाजीकरण ही शिक्षा है इस बात को विस्तृत रूप से समझाने का प्रयास किया गया है।

1.2.2. समाजीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

सामजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समाज की जीवन-शैली सिखता है और समाज में समायोजन करता है। मनुष्य जिस समाज के बीच जन्म लेता है और रहता है उसे उस समाज की भाषा, रहन-सहन,खान-पान,एवं आचरण की विधियाँ और रीति-रिवाज सीखने होते हैं। बिना उन्हें सीखे वह समाज में समायोजन नहीं कर सकता, उसका सदस्य नहीं बन सकता। वह यह सब कार्य एक दिन में नहीं सीख सकता , यह सब सिखाने में उसे काफी समय लगता है। जन्म के कुछ दिन बाद वह अपने समाज की भाषा सीखने लगता है, रहन-सहन,खान-पान और आचरण की विधियाँ सीखने लगता है और जैसे –जैसे बड़ा होता है-वैसे-वैसे समाज के रीति-रिवाज सिखहने लगता है और उसके अनुसार आचरण कर अपने समाज में समायोज्न करता है। प्रायः मनुष्य एक साथ अनेक समाजों का सदस्य होते हैं और उन्हें इनमें से किसी भी समाज में समायोजन करने के लिए उसकी भाषा और व्यवहार प्रतिमानों को सीखना होता है। इस पूरी प्रक्रिया को समाजीकरण कहते हैं। **ड्रेवर** महोदय ने इसे निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है-

समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक पर्यावरण के साथ अनुकूलन करता है और इस प्रकार वह उस समाज का मान्य,सहयोगी और कुशल सदस्य बनता है।

परंतु इस परिभाषा में समाजीकरण की प्रक्रिया के परिणाम पर ही प्रकाश डाला गया है,उसके स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया गया है। दूसरी बात यह है कि उसके परिणाम की सीमा भी बड़ी व्यापक बना दी गई है इसके द्वारा समाज का मान्य,सहयोगी और कुशल सदस्य बनता है।

हरलॉक के अनुसार- "सामाजिक विकास का अभिप्राय है सामाजिक आशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की योग्यता प्राप्त करना"।

हरलॉक ने समाजीकरण के संबंध में कहा है कि "यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति इस प्रकार का व्यवहार करता है जिससे कि वह उस समूह के अनुकूल अपना व्यवहार करता है जिसके साथ वह अपना आतमीकरण करता है जिससे कि सामाजिक समूह द्वारा वह एक सदस्य के रूप में स्वीकृत किया जा सके"।

हरलॉक के अनुसार समाजीकरण की प्रक्रिया में तीन उपक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं-

1 उचित व्यवहार करना- इसका अभिप्राय है बालक सामाजिक समूह द्वारा स्वीकृत व्यवहार करे और हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक समूह की "उचित व्यवहार" के संबंध में अपनी नियमवली होती है।

2 स्वीकृत सामाजिक प्रकार्यों को करना- समाज द्वारा स्वीकृत प्रकार्यों को संपादित करने से अभिप्राय है व्यक्ति उन सभी कार्यों का सम्पादन करे जो उस विशेष स्थिति के साथ जुड़े हुए हैं जिसे वह समाज में रह कर प्राप्त करता है।"

3 सामाजिक अभिवृत्ति का विकास- इसका अभिप्राय है व्यक्ति में एकीकरण व सहयोग का भाव होना जिससे कि वह समाज के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सके।

रॉस के अनुसार- "सामाजीकरण सहयोग करने वाले व्यक्तियों में 'हम भावना' का विकास करती है और उनमें एक साथ कार्य करने की इच्छा तथा क्षमता की वृद्धि करती है।"

गसकिन एवं गसकिन के अनुसार- "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति व्यवहारों,मूल्यों एवं अपेक्षाओं को सीखता है जिससे वह समाज में विशिष्ट प्रकार्यों को संपादित कर सके।"

हैविग्रस्ट एवं न्यूगाटन के अनुसर – "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बालक अपने समाज के स्वीकृत तरीकों को सिखाता है तथा इन तरीकों को अपने व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनाता है"।

गिलिन और गिलिन के अनुसार- "समाजीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह में एक क्रियाशील सदस्य बनता है,समूह की कार्यविधियों से समन्वय स्थापित करता है,उसकी परम्पराओं का ध्यान रखता है और सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन करके अपने साथियों के प्रति सहनशीलता की भावना को विकसित करता है"।

आगबर्न के अनुसार- "समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति समूह के आदर्श नियमों के अनुसार व्यवहार करना सीखता है।"

ग्रीन के अनुसार- "समजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक सांस्कृतिक विशेषताओं,आत्मपन और व्यक्तित्व को प्राप्त करता है"।

हार्टन एवं हंट के अनुसार- "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपने समूह मे मानकों को आत्मसात कर लेता है जिससे उसके आत्म का विकास होता है जो उस व्यक्ति की अपनी विशेषता है"।

एच. एम. जॉनसन के अनुसार- "समाजीकरण एक प्रकार का सीखना है जो सीखने वाले को सामाजिक कार्य करने के योग्य बनता है"।

लुण्डबर्ग के अनुसार- "समाजीकरण अन्तः क्रियाओं की जटिल प्रक्रियाओं का नाम है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक समूहों एवं समुदायों में प्रभावी भाग लेने हेतु आदतों, चतुराइयों, विश्वासों एवं नियमों को सीखता है"।

स्टीवर्ट एवं ग्लिन के अनुसार – "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक व्यवहारों को स्वीकार करता है और उनसे अनुकूलन करना सीखता है"।

किंम्बाल यंग के मतानुसार – "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है तथा समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है और जिसके द्वारा उसे समाज के मूल्यों तथा मानकों को स्वीकार करने की प्रेरणा प्राप्त होती है"।

बोगार्डस के शब्दों में – "समाजीकरण इकट्ठा मिलकर कार्य करने, समूह दायित्व की भावना विकसित होने तथा अन्य व्यक्तियों की कल्याणकारी आवश्यकताओं से मार्गदर्शन लेने की प्रक्रिया है"।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि **समाजीकरण सांस्कृतिक विशेषताओं एवं समाजिक मूल्यों की सीख एक प्रक्रिया है। इसके द्वारा सांस्कृतिक विशेषताएं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती हैं। इसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करता है एवं समाज का क्रियाशील सदस्य बनता है।**

अपने प्रगति की जांच करें –

1 समाजीकरण से आप क्या समझते हैं ?

1.2.3. सामाजीकरण की विशेषताएँ –

सामाजीकरण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

I. सामाजीकरण एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है।

II. सामाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है। किन्तु सभी प्रकार का सीखना सामाजीकरण नहीं है। केवल उन व्यवहारों, मूल्यों एवं आदर्शों को,जो समाज द्वारा मान्य है, सीखना सामाजीकरण कहलाता है।

III. सामाजीकरण की प्रक्रिया समय व स्थान सापेक्ष होती है। सामाजीकरण की प्रक्रिया समय व स्थान परिवर्तन के साथ बदलती रहती है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न समाजों में एवं भिन्न-भिन्न कालों में सामाजीकरण का ढंग भिन्न-भिन्न होता है।

IV. सामाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के 'आत्म'को विकसित करती है क्योंकि इसी के द्वारा व्यक्ति का निर्माण होता है।

V. सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा समाज की सांस्कृतिक विशेषताएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है। इस प्रकार सामाजीकरण संस्कृति को आत्मसात करने की प्रक्रिया है।

1.2.4. सामाजीकरण के उद्देश्य

जन्म के समय मनुष्य एक जैविकीय प्राणी होता है। उनमें कोई सामाजिक विशेषताएँ नहीं होती। यदि आरंभ से ही माता- पिता अपनी संस्कृति तथा सामाजिक नियमों के अनुसार बालक का पालन-पोषण न करें तो निश्चय ही बच्चे का कोई भी व्यवहार सामाजिक नहीं बन सकता है। वह मानवीय व्यवहारों और मानवीय विशेषताओं से वंचित रह जाएगा। सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा समाज बच्चे को यह सीखता है कि समूह के अन्य सदस्य के साथ कैसा व्यवहार किया जाय , समूह में कौन से कार्य

करने उचित हैं और कौन अनुचित। इस दृष्टिकोण से सामाजीकरण एक प्रकार का सामाजिक नियंत्रन है जिसका उपयोग समूह के जीवन को शक्तिशाली बनाने तथा व्यक्तित्व के विकास के लिए किया जाता है। **ब्रूम तथा सेल्जनिक** ने सामाजीकरण के चार प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन किया है जो इस प्रकार हैं –

I. **नियमबद्धता का विकास** – सामाजीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन को नियमबद्ध बनाए रखने के लिए आवश्यक है। व्यक्ति की आंतरिक प्रेरणाएँ उसे नियम विरुद्ध व्यवहार करने को प्रेरित करती है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को अपने लक्ष्यों को तत्काल पूरा करने पर ज़ोर नहीं देती बल्कि आवश्यकतानुसार लक्ष्यों को आगे के लिए स्थगित करने,छोड़ देने तथा सशोधित करने के लिए प्रेरित करती हैं। इसका उद्देश्य सामाजिक नियमों,मूल्यों एवं आदर्शों को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व का विकास करना है।

II. **सामाजिक क्षमता का विकास** – सामाजीकरण का उद्देश्य व्यक्ति में ऐसी क्षमताएँ पैदा करना है जिससे वह अपने आपको समाज के अनुकूल बना के तथा सभी क्षेत्रों में अपने दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सके। समान्यतः सरल समाजों में व्यक्ति अनुकरण द्वारा ही परंपरागत व्यवहार,कार्य एवं व्यवसाय को सीखता रहता है। किन्तु वर्तमान औद्योगिक समाज में तकनीकी ज्ञान व कौशल को अर्जित करने के लिए औपचारिक शिक्षा की आवश्यकता होती है।

III. **आकांक्षाओं की पूर्ति -** सामाजीकरण का उद्देश्य व्यक्ति की आकांक्षाओं को उत्पन्न करना है तथा उसके रूप का निर्धारण करके व्यक्ति द्वारा उनकी आदर्श पूर्ति में सहायता पहुँचती है। उच्च तकनीकी ज्ञान से पूर्ण समाजों में व्यक्ति उद्योगपति, वैज्ञानिक अथवा इंजीनियर बनने की आकांक्षा रखते हैं।

IV. **सामाजिक दायित्व की पूर्ति का प्रशिक्षण-** सामाजीकरण द्वारा व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की सामाजिक भूमिका निभाने की योग्यता प्राप्त होती है। व्यक्ति को विभिन्न पदों पर दायित्व निभाने होते हैं। सामाजीकरण की प्रक्रिया यह सिखाती है कि विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति अन्य लोगों से किस प्रकार सामंजस्य स्थापित करे।

इस प्रकार सामाजीकरण प्रक्रिया के द्वारा समाज बालक को यह सीखता है कि यदि उसे अपने समुदाय के सदस्यों से मिलकर रहना है तो उसे किस प्रकार का व्यवहार करना है जिससे उसकी व्यक्तिगत एवं सामाजिक दायित्वों की पूर्ति हो सके।

अपने प्रगति की जांच करें-

1 सामाजीकरण की विशेषताएँ बताइये।

2 सामाजीकरण के उद्देश्यों को समझाये।

1.2.5. सामाजीकरण के तत्व

समाजशास्त्रियों ने समाजीकरण की प्रक्रिया का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है। उनके अनुसार समाजीकरण की प्रक्रिया के चार तत्व होते हैं –

I. **मनुष्य की जैविकीय विशेषता-** मनुष्य की अपनी जैवकीय विशेषता है, वह कुछ मूल प्रवृत्तियों, संवेगों, सामान्य जन्मजात प्रवृतियों,इंद्रियों और मस्तिष्क को लेकर जन्म लेता है। इन्हीं के आधार पर समाजीकरण होता है। इनके अभाव में हम उसका समाजीकरण नहीं कर सकते।

II. **सामाजिक अन्तःक्रियाएँ** – मानुष्य के समाजीकरण के लिए दूसरा आवश्यक तत्व सनजिक अंतःक्रियाएं हैं। जब तक कोई मनुष्य दूसरे मनुष्यों के संपर्क में नहीं आता है और उनके बीच अंतःक्रियाएं नहीं होती तब तक वह न तो समाज की भाषा सीख सकता है और न ही आचरण की विधियाँ। इनको सीखकर ही वह जैवकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी बनता है।

III. **सामाजिक अंतःक्रियाओं के निश्चित परिणाम** – समाजीकरण के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति-व्यक्ति अथवा व्यक्ति – समाज के बीच की अंतःक्रियाओं के निश्चित परिणाम हो, निरर्थक अंतःक्रियाओं से समाज सम्मत आचरण नहीं सीखा जा सकता है।

IV. **परिणामों के प्रति स्वीकृति – अस्वीकृति** – जहां क्रिया होगी वहाँ परिणाम अवश्य होगा। चोरों के बीच रहकर बच्चा चोरी करना सीख सकता है परंतु उसे यह जानकारी होगी कि यह कार्य समाज द्वारा स्वीकृत नहीं है और ऐसा करके वह उस समाज में समायोजन नहीं कर सकता तो वह उस कार्य को स्वीकार नहीं करेगा। समाज द्वारा स्वीकृत आचरण को सीखकर तदनुकूल आचरण करना ही समाजीकरण होता है।

1.2.6. समाजीकरण के प्रमुख साधन

बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया बड़ी लंबी एवं जटिल है। इस कार्य में अनेक समूहों तथा संस्थाओं का योगदान होता है। ये संस्थाएं समय –समय पर बालक को समाज की संस्कृति के अनुकूल विभिन्न प्रकार की बातें सिखाती हैं जिसका बालक पर प्रभाव पड़ता है। बालक जन्म के समय सामाजिक नहीं होता है। जैसे-जैसे वह समाज के अन्य व्यक्तियों और संस्थाओं के संपर्क में आता है तथा सामाजिक क्रियाओं में भाग लेता है वैसे-वैसे वह अपनी पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करते हुए सामाजिक मूल्यों एवं आदर्श को सीखता रहता है। इस कार्य में अनेक संस्थाएं –परिवार,पड़ोस ,मित्र-मंडली, नातेदार समूह, विद्यालय,धार्मिक,आर्थिक, राजनीतिक ,सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक संगठन उसकी सहायता करते हैं। व्यक्ति इन संस्थाओं से जितना अनुकूलन कर लेता है,समाजीकरण की प्रक्रिया में उतनी ही पूर्णता आ जाती है। बालक के समाजीकरण करने वाली प्रमुख संस्थाएं एवं समूह हैं-

I. **परिवार-** परिवार बच्चे का समाजीकरण करने वाली सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण संस्था है। कारण यह है कि बालक जन्म लेते ही परिवार के सदस्यों के संपर्क में आता है। परिवार में आरंभ से ही अपने माता-पिता, भाई-बहन,और सदस्यों का पारस्परिक प्रेम,स्नेह,त्याग,अधिकार,मार्ग-निर्देशन और सहायता बालक के प्रभावित करती है। फलतः परिवार में रहते हुए प्रेम, त्याग, सहकारिता, सहानुभूति सामाजिक गुण प्राप्त करता है। यही नहीं,परिवार के सदस्यों के साथ अन्तः क्रिया करते हुए वह अपने परिवार के आदर्शों,मूल्यों,रीति-रिवाजों परम्पराओं एवं मान्यताओं को भी सीखता है। यह आधारभूत इकाई है। परिवार का प्रभाव प्राथमिक,स्थायी एवं आंतरिक होता है।

परिवार में आयु,लिंग एवं पद कि दृष्टि से विभिन्न प्रकार के लोग होते हैं जिनके आचरणों का अनुकरण करने का बालक प्रयास करता है। परिवार में बड़े सदस्य छोटों के प्रति अधिकारों का एवं छोटे सदस्य बड़ों के प्रति कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं जिसे बालक अनायास ही ग्रहण करता चलता है। परिवार का सहयोगी एवं भावात्मक वातावरण बालकों के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार में बालक जो कुछ सिखता है,वह उसके जीवन कि स्थायी पूंजी होती है। अनेक महापुरुषो के उदाहरणों से स्पष्ट है कि उनके महान बनने में उनके परिवार की प्रमुख भूमिका रही है। परिवार में ही बालक भाषा का प्रयोग, अनुकूलन का गुण ,आज्ञाकारिता, सहिष्णुता आदि गुणों को सिखाता है। इस प्रकार परिवार ही बालक को नागरिकता का पाठ पढ़ाता है। इसलिए ही परिवार को बालक की प्रथम पाठशाला माना जाता है।

युंग के अनुसार-, "बालक के समाजीकरण में परिवार सबसे महत्वपूर्ण साधन है,बालक अपने परिवार का ही प्रतिरूप होता है। परिवार का विघटन बालक के समाजीकरण में बाधा डालता है। इस लिए विघटित परिवारों के अधिकतर बालक अपराधी प्रकृति वाले पाये जाते हैं।

हेली और ब्रोनर ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया की, "अधिकतर बाल अपराधी उन्हीं परिवारों में मिलते है जहां सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना में बाधा पड़ रही है।"

टरमन ने परिवार के महत्व के बारे में यहाँ तक कह डाला कि, "केवल वही बच्चे विवाह को सुख पूर्ण बना सकते हैं जिनके माता-पिता का पारिवारिक जीवन सुखी था"। इससे स्पष्ट होता है कि बालक के समाजीकरण में परिवार का प्रभाव स्थायी होता है।

II. **पड़ोस** – पड़ोस का भी बालक के समाजीकरण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। बालक जब कुछ बड़ा होता है तो वह परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त पड़ोस में रहने वाले व्यक्तियों तथा अन्य समूहों के संपर्क में आता है एवं उनसे अंतःक्रिया करते हुए विभिन्न सामाजिक बातों का ज्ञान प्राप्त करता है। पड़ोस के लोग बच्चे को स्नेह एवं प्यार से,प्रशंसा एवं निंदा द्वारा समाज सम्मत व्यवहार को करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार पड़ोस वास्तव में परिवार एवं बाहरी समूहोंके बीच के अंतर को कम करके व्यवहार के नए ढंग सिखता है। इस दृष्टि से यदि पड़ोस अच्छा हे तो बालकों के व्यक्तित्व पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा अन्यथा बालक के बिगड़ने की संभावना रहती है।

III. **क्रीडा-समूह** – क्रीडा –समूह द्वारा भी बालकों का समाजीकरण होता है। परिवार के बाद बालक खेल के साथियों के संपर्क में आता है जो बहुधा उसके हम उम्र होते हैं। समूह में खेलने तथा भाग लेने से बालक विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों व नियंत्रणों में पाले हुए बच्चों के साथ जात-पांत ,ऊंच-नीच, तथा अन्य प्रकार के भेदभावों से ऊपर उठकर विस्तृत समाज में अपना अनुकूलन सिखाता है। क्रीडा-समूह में खेल-कूद से बालकों में स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना जाग्रत होती है। उनमें जीत-हार के प्रति समभाव उपजता है। परिस्थितियों से अनुकूलन की भावना उत्पन्न होती है। इसमें बालक खेल के नियमों का पालन करना,दूसरों के नियंत्रण में रहना,अनुशासन का पालन करना सीखता है। इसी समूह में उसमें नेतृत्व के गुण विकसित होते हैं तथा वह लोगों को नियंत्रण व अनुशासन में रखना भी सीखता है।

रिजमैन का मानना है कि वर्तमान समय में क्रीड़ा-समूह समाजीकरण करने का एक प्रमुख समूह है क्योंकि इसमें बालक को निर्देश के लिए हम उम्र लोग मिलते हैं जिनके सुझावों का उस पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

4 शिक्षण संस्थाएँ – परिवार एवं पड़ोस के बाद विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहां बालक का समाजीकरण होता है। यहाँ पर अन्य बालकों तथा अध्यापकों तथा अध्यापकों के बीच रहने पर परस्पर सामाजिक प्रक्रिया होती है जो बालक के समाजीकरण में सहायक होती है। विद्यालय में बालक विभिन्न विषयों की शिक्षा के द्वारा सामाजिक नियमों,रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मान्यताओं, आदर्शों एवं मूल्यों का ज्ञान प्राप्त विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेता है जिसमें उसका समाजीकरण होता है। विद्यालय में कोई न कोई अध्यापक ऐसे होते है जिनको वह अपना मॉडल बना कर,उनके अनुरूप अपने को ढालने का प्रयत्न करता है। विद्यालय में बालकों को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है जिससे उसमें सामाजिक अनुशासन की भावना का विकास होता है। वह देश-विदेश की सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित होता है। बालक के उचित समाजीकरण की दृष्टि से विद्यालयों में निम्न बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जा सकता है –

i. विद्यालय में सामूहिक कार्यों की व्यवस्था,नाटक,वाद-विवाद,सामूहिक शिक्षण आदि का आयोजन करके सामाजिक अंतःक्रिया के विभिन्न अवसर प्रदान करना।
ii. सामाजिक कौशलों एवं सामाजिक अनुभवों की शिक्षा प्रदान करना।
iii. सामाजिक अनुशासन की भावना पैदा करना।
iv. पुरस्कार एवं दण्ड द्वारा सामाजिक सम्मान एवं तिरस्कार की भावना उत्तपन्न करना।
v. बालकों को उनकी योग्यताओं के अनुरूप प्रेरणा प्रदान कर महत्वाकांक्षी बनाना।

5 जाति – समाजीकरण में जाति भी एक सहायक तत्व है। प्रत्येक जाति की परम्पराएँ,प्रथाएँ,रीति-रिवाज तथा सांस्कृतिक उपलब्धियां होती हैं जो सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहती हैं कि उस जाति के बालक अपनी जाति की सभी बातों को ग्रहण करें। यही कारण है कि प्रत्येक जाति के बालक का समाजीकरण अलग-अलग होता है। जाति व्यवस्था का प्रभाव उसके सदस्यों पर अवश्य पड़ता है क्यों

कि समान जाति के लोग एक-दूसरे के खुशी-गम में इकट्ठे होते थे। शिक्षा के कारण अब जाति के बंधन ढीले होते जा रहे हैं फलतः इसका समाजीकरण में महत्व कम होता जा रहा है।

6 समुदाय- प्रत्येक समुदाय की अपनी रीति-रिवाज,प्रथाएँ,परम्पराएँ एवं मान्यताएँ होती हैं जो बालक के समाजीकरण करने में सहायक होती हैं। समुदाय में मनाए जाने वाले त्योहार, उत्सव आदि क्रियाओं में भाग लेकर बालक का समाजीकरण होता है।

7 स्काउटिंग एवं गर्ल गाइडिंग – बालक-बालिकाओं का समाजीकरण करने की दृष्टि से स्काउउटिंग एवं गर्ल गाइडिंग का विशेष महत्व है। इन क्रियाओं में भाग लेने से उन्हें सामूहिक कार्य करने के अवसर प्राप्त होते हैं। साथ ही साथ उनमें त्याग करने तथा निःस्वार्थ भाव से सेवा करने की भावनाएं जाग्रत होती हैं। उनमें संकुचित राष्ट्रीयता की भावना समाप्त होती है और वे लोक कल्याण कार्यों में लगे रहते हैं।

8 **आर्थिक संस्थाएं** – आर्थिक संस्थाएं व्यक्ति को विभिन्न व्यावसायिक संघों से संबन्धित करती हैं। इन संस्थाओं के द्वारा प्रतिस्पर्धा, सहयोग, सहकारिता, समायोजन आदि के सिद्धान्त को सीखकर समाज से अनुकूलन करना सरल हो जाता है। आर्थिक संस्थाएं व्यक्ति को जीवनयापन के लिए समर्थ बनाती हैं। **मार्क्स एवं वेबलेन** के अनुसार "आर्थिक संस्थाएं ही व्यक्ति के जीवन व सामाजिक ढांचे को निर्धारित करती हैं। आर्थिक जीवन की सफलता आज के युग में समाजीकरण की सफलता की सबसे महत्वपूर्ण कसोटी समझी जाती है।"

9 धार्मिक संस्थाएं – व्यक्ति के जीवन में धर्म का गहरा प्रभाव पड़ता है। धार्मिक संस्थाएं व्यक्ति के पवित्रता,शांति, न्याय, सच्चरित्रता और नैतिकता जैसे गुणों का विकास करके यूएसई प्रत्येक स्थिति में संतुष्ट रहना और अपने कर्तव्यों को पूर्ण करना सिखाता है। ये संस्थाएं हमारे विश्वासों एवं जीवन ढंगों को प्रभावित करती हैं। धार्मिक प्रवचन, पाप-पुण्य स्वर्ग-नरक की धारणा लोगों को सामाजिक प्रतिमानों के अनुरूप आचरण करना सिखाती है।

10 उत्सव – हमारे देश में अनेक प्रकार के धार्मिक-सामाजिक उत्सव मनाए जाते हैं जिसमें लोग एक दूसरे के साथ मिलकर सामूहिक रूप से खुशियाँ मानते हैं। इसमें वे आपसी मतभेद को भुलाकर एक-दूसरे से गले मिलते हैं। इससे उनमें आपसी सौहार्द बढ़ता है और उनका अपनी संस्कृति के अनुरूप समाजीकरण होता है।

11 राजनीतिक संस्थाएं – राजनीतिक संस्थाएं व्यक्ति को कानून,शासन तथा अनुशासन से परिचित कराकर तथा व्यक्ति को उसके अधिकारों एवं कर्तव्यों की जानकारी प्रदान करती है जिसमें व्यक्ति को राजनीतिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है तथा उसे अपने व्यक्तित्व निर्माण का सुअवसर प्राप्त होता है।

12 सांस्कृतिक संस्थाएं – समाजीकरण की प्रक्रिया में सांस्कृतिक संस्थाएं जैसे- संगीत अकादमी,नाटक मंडली,कवि-सम्मेलन,क्लब आदि ऐसे वातावरण का सृजन करती है जिसमें भाग लेकर व्यक्ति को अपनी संस्कृति, प्रथा, परंपरा, साहित्य, कला विश्वास आदि का ज्ञान होता है जिससे उसके व्यक्तित्व का संतुलित विकास होता है।

इस प्रकार व्यक्ति के जन्म से लेकर जीवन पर्यंत समाजीकरण होता रहता है। व्यक्ति समाजीकरण द्वारा समाज में भली-भांति अपनी भूमिका निर्वाह करने में समर्थ होता है।

अपने प्रगति की जांच करें-
1 समाजीकरण के प्रमुख साधनों को स्पष्ट कीजिये।

1.2.7. समाजीकरण कैसे होता है –

समाजीकरण की प्रक्रिया एक सामाजिक –मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति का विकास सामाजिक संस्थाओं के अनुकूलन होता है परंतु व्यक्ति को अपने आपको भी इसके लिए तैयार करना होता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति निम्न प्रकार से स्वयं को संचालित करता है –

विभिन्न व्यक्तियों के मध्य होने वाली अन्तः क्रियाएँ व्यक्ति के अंदर होने वाली अन्तः क्रियाएँ

I. विभिन्न व्यक्तियों के मध्य होने वाली क्रियाएँ से व्यक्ति उचित व्यवहार करने के तौर – तरीके सीखता है। प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि वह समाज का स्वीकृत सदस्य बने तथा स्वीकृत सदस्य बनने के लिए अनिवार्य है कि उसका व्यवहार समाज के अनुकूल हो। इस स्तर पर व्यक्ति चार प्रक्रियाओं द्वारा सीखता है –
   i. प्रतिस्पर्धा (Competition)
   ii. सहयोग (co-operation)
   iii. संघर्ष (conflict)
   iv. सामंजस्य (Accomodation)।

II. समाजीकरण की प्रक्रिया में व्यक्ति के अंदर होने वाली अन्तः क्रिया का भी अपना महत्व है चूंकि व्यक्ति जब तक समाज के अनुकूल व्यवहार करने के लिए प्रेरित नहीं होगा,अन्य कोई भी व्यक्ति उसे करने को बाध्य नहीं कर सकता। इसके अंतर्गत तीन प्रक्रियाओं का उल्लेख किया जाता है –
   i. सात्मीकरण (Assimilation)
   ii. आत्मीकरण (Identification)
   iii. अनुकरण (Imitation)

समाजीकरण के सिद्धान्त -

समाजीकरण की प्रक्रिया के संबंध में विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा विभिन्न विचार व्यक्त किए गए हैं जिनमें से प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

- दुर्खीम का सिद्धांत

- मीड का सिद्धांत
- कूले का सिद्धांत
- फ्रायड का सिद्धांत

दुर्खीम का सिद्धांत – प्रसिद्ध समाज शास्त्री इमाइल दुर्खीम ने समाजीकरण के सिद्धांत को समूहिक प्रतिनिधित्व पर आधारित बताया है। समूहिक प्रतिनिधित्व का अभिप्राय है व्यक्ति उन विचार धाराओं के अनुसार परिपक्व होता है जो समाज में विद्यमान होती हैं,साथ ही व्यक्ति के विकास में समाज में विद्यमान मूल्यों एवं आस्थाओं का भी प्रभाव पड़ता है।

कूले का सिद्धांत – कूले का 'आत्म' का सम्बोध उनके समाजीकरण सिद्धांत का आधार है। उनके अनुसार सामाजिक सामाजिक चेतना (Social Conciousness) के विकास में व्यक्ति के आत्म का बहुत महत्व है। इसके साथ ही कुले ने स्वयं का दर्पण के संबोध को प्रस्तुत किया है इस (Looking Glass Self) का प्रभाव हमारे दैनिक जीवन पर पड़ता है चूकीं इसी के द्वारा व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है व्यक्ति आत्म-चेतन, सामाजिक चेतना व जन-चेतना को प्राप्त करता है –

i. आत्मचेतना का अभिप्राय है व्यक्ति स्वयं के बारे में क्या सोचता है।
ii. सामाजिक चेतना का तात्पर्य है अन्य व्यक्तियों का क्या सोचना है ?
iii. जनचेतना का अभिप्राय है 'स्व'व सामाजिक चेतना का सामूहिक दृष्टिकोण जिसमें सभी व्यक्ति एक सामाजिक समूह का गठन करते है। कूले का विचार है कि "जनचेतना हेतु विचारों का आदान-प्रदान जरूरी है चूंकि इसके कारण मानव संबंध बने रहते है"।

- **मीड का सिद्धान्त** – **मीड** के अनुसार, "जैवकीय प्राणी को सामाजिक प्राणी बनाने हेतु समाजीकरण की प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है। किसी भी व्यक्ति की जैवकीय प्रवृतियां सामाजिक वातावरण में ही परिमार्जित व संशोधित होती है। मीड का यह भी मानना है कि समाजीकरण हेतु व्यक्ति के आत्म का विकास होना जरूरी है। आत्म के विकास ही व्यक्ति अपने व अन्य लोगों के बारे में सोचता है और यह आत्म जागरूकता व सामाजिक आगरूकता समाजीकरण की प्रक्रिया का ही परिणाम है"।
- **फ्रायड का सिद्धान्त** – फ्रायड के अनुसार, "बालक बाल्यावस्था में ही अपनी संस्कृति व समाज के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है व वह स्वयं का अपने माँ – बाप या अन्य बड़ों के साथ आत्मसात करने लगता है तथा उन्हीं के दृष्टिकोण, विचार एवं आस्थाएँ चेतन या अचेतन रूप से सिखता है। समाजीकरण हेतु फ्रायड अहम (Ego), व परम अहम (Super Ego) को आवश्यक मानता है चूंकि अहम 'मैं' या 'आत्म' के विकास में सहायक होता है व परम अहम का जैसे – जैसे विकास होता है , बालक समाजीकरण की ओर उन्मुख होता जाता है।

अपने प्रगति की जांच करें –

1 किसी बालक में समाजीकरण किस प्रकार से होता है।

1.2.8. समाजीकरण की पद्धतियाँ –

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री **ओटावे (**Otteway) ने समाजीकरण की तीन प्रमुख पद्धतियाँ बताई हैं जो इस प्रकार हैं-

i. सामाजिक सीखना (Social Learning)
ii. सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Loyality),
iii. सामाजिक प्रशिक्षण (Social Training)।

सामाजिक सीखना – समाज मे रहकर बालक को समजीकृत करने की ज़िम्मेदारी उन व्यक्तियों पर होती है जिनके संपर्क में बालक दिन-प्रतिदिन आता है। इसमें बालक के माँ – बाप,मित्र व अध्यापक का स्थान प्रमुख है। प्रारम्भ से ही बालक परिवार के रीति-रिवाज व परम्पराएँ सीखता है और जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, वह समाज के रीति-रिवाज व परम्पराएँ सीखने लगता है। माँ – बाप और अध्यापक बालक को यह इस कारण सीखते हैं जिसमें बालक का व्यवहार समाज के अनुरूप हो सके।

सामाजिक उत्तरदायित्व- ओटावे का मानना है कि बालक के अंदर उत्तरदायित्व कि भावना का विकास आयु के साथ-साथ होता है। जो व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व समझ कर उनके अनुकूल स्वयं को ढालता है उसका सामाजिक दृष्टि से विकास अच्छा होता है।अतः समाजीकरण हेतु यह आवश्यक है कि बालक के अंदर यह दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाये कि वह अपनी ज़िम्मेदारी का वहाँ कर सके।

सामाजिक प्रशिक्षण – सामाजिक प्रशिक्षण से बालक को प्रशिक्षित करने हेतु हम तीन विधियों का प्रयोग करते हैं जो निम्नलिखित हैं –

a. पुरस्कार एवं दण्ड (Reward and Punishment)
b. उपदेशात्मक शिक्षण (Diadactic Teaching)
c. अनुकरण विधि (Imitation Method)।

पुरस्कार एवं दण्ड – बालक को समाज के अनुकूल कार्य करने पर हम उसे दो तरह से पुरस्कार देते हैं। प्रथम, भौतिक समग्रियाँ प्रदान करके (To give Material Goods)। इसमें हम बालक को रूपया, पैसा या कोई वस्तु देते हैं। द्वितीय सामाजिक स्वीकृति प्रदान करके (To give Social Approval)। इसमें हम बालक के समाजोपयोगी कार्यों के लिए उसकी प्रशंसा करते हैं। यह दोनों ही तरीके समाजीकरण के सकारात्मक साधन हैं जिनमें बालक को यह बता जाता है कि उसे पुरस्कार इस कारण मिल रहा है। चूंकि उसे इस बात की भी प्रेरणा दी जाती है कि भविष्य में वह अपने व्यवहार को समाज द्वारा वांछनीय नियमों पर आधारित करे।

समाजीकरण की दूसरी विधि दण्ड विधि है। बालक को दण्ड तब दिया जाता है जबकि उसका व्यवहार समाज के नियमों के प्रतिकूल होता है। दण्ड विधि,नकारात्मक प्रेरणा देने का साधन है। व्यक्ति को दण्ड दो प्रकार से दिया जाता है। प्रथम , वैधानिक दण्ड (Corporal Punishment)। इस प्रकार का दंड तब दिया जाता है जबकि व्यक्ति का व्यवहार वैधानिक दृष्टि से गलत होता है। द्वितीय प्रकार है सामाजिक दण्ड (Social Punishment) – यह दण्ड तब दिया जाता है जब व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं व परम्पराओं के विपरीत होता है। समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि

बालक को दण्ड बहुत अधिक नहीं देना चाहिए। जब उसका व्यवहार असहनीय हो जाए तभी समाजीकरण की इस विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

उपदेशात्मक शिक्षण – यह वह विधि है जिसके द्वारा समाज की वांछनीय परम्पराओं मूल्यों एवं रीति-रिवाजों का उल्लेख व व्याख्या बालक के समक्ष बड़े लोगों द्वारा की जाती है। समाज के बड़े सदस्य छोटों से कहते हैं 'तुम क्या करो'(What to do) अथवा 'तुम कैसे करो' (how to do it)। इसमें बालक को 'क्या' व 'कैसे' के द्वारा समाज की नियमावली की जानकारी दी जाती है व उसके व्यवहार को समाज के अनुकूल बनाने का प्रयास किया जाता है।

अनुकरण विधि – इसमें बालक के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया जाता है और उस आदर्श का अनुपालन करने का उसे निर्देश दिया जाता है। जो भी आदर्श व्यक्ति है,वह बालक से कहता है, 'देखो मैं या अन्य इसे कैसे कर रहें है'। अनुकरण करने को जब बालक से कहा जाता है तो उसे हम चैतन्य अनुकरण कहते हैं। परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बालक समाज के किसी भी व्यक्ति को अनजाने मे ही अपना आदर्श मानने लगता है व अनजाने में उसका अनुकरण करने लगता है। इस प्रकार के अनुकरण को अचैतन्य अनुकरण कहते हैं। अचैतन्य अनुकरण के लिए यह आवश्यक है कि बालक जिसे अपना आदर्श बनाए,वह समाज के आदर्शों के अनुकूल होना चाहिए।

अपने प्रगति की जांच करें 1 समाजीकरण के विभिन्न पद्धतियों को स्पष्ट कीजिये।

1.2.9. समाजीकरण के कारक (Factors of Socialization)

समाजीकरण के संबंध में प्रमुख रूप से दो कारकों का महत्व है जो इस प्रकार हैं –

i. मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factor)
ii. सामाजिक कारक (Sociological Factor)

मनोवैज्ञानिक कारक – मनोवैज्ञानिकों की विचारधारा है कि हमारे व्यक्तित्व के तीन प्रमुख स्तर हैं –

- इदम (Id),
- अहम (Ego),
- परम अहम Super Ego)।

व्यक्ति का परम अहम समाजीकरण की प्रक्रिया में सहयोग देता है। इस कारण यह समाजीकरण का प्रमुख कारक है। परम अहम की विचारधारा व्यक्ति के अंदर सामाजिक चेतना (Social Consciousness) उत्पन्न करती है और समाजीकरण चेतना बहुत आवश्यक है।

सामाजिक कारक – समाजशास्त्रियों का विचार है कि समाजीकरण के प्रमुख दो कारक हैं –

- जैवकीय – भौतिक वातावरण (Bio-physical Environment),
- सामाजिक – सांस्कृतिक वातावरण (Socio-cultural Environment)।

समाजीकरण या सामाजिक स्थानांतरण विभिन्न प्रकार के वातावरण मे होता है (भौगोलोक, सामाजिक,सांस्कृतिक व जैवकीय)। समाजशास्त्रियों ने समाजीकरण के कारकों को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया है –

A जैवकीय – भौतिक वातावरण

i. Transmitting Machanism

a. Transmitting Mechanism (Organic Reproduction)

b. Emergent Level (Biological)

c. Science Involved (Genetic)

B सामाजिक – सांस्कृतिक वातावरण

Social Transformation

a. Transmitting Mechanism (Symbolic Reproduction)

b. Emergent Level (Socio-cultural)

c. Science Involved (Study of Socialization)

व्यक्ति

(Individual)

यह समाजीकरण का पूर्व स्तर है जिसमें बालक आनुवांशिक रूप में माँ – बाप से कुछ विशेषताएँ ग्रहण करता है।

जब बालक जन्म लेता है,उस समय वह एक मनुष्य होता है और सामाजिक स्थानातरण द्वारा उसे सामाजिक प्राणी बनाया जाता है।

अपने प्रगति की जांच करें-

1 समाजीकरण के विभिन्न कारकों को समझाये।

1.2.10. समाजीकरण ही शिक्षा है : शिक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण –

शिक्षा के संबंध में एक रोचक विरोधाभास यह देखने में आता है कि यद्यपि प्राय: सभी प्रकार के व्यक्ति इसके विषय में कुछ सम्मति दे सकते हैं और देते है, तथापि इसके सही अर्थ में कोई एकमत या सहमति देखने में नहीं आता है। शिक्षा शास्त्र संबंधी पुस्तकों व लेखों में हम शिक्षा की कई परिभाषाएं पाते है। उनका विश्लेषण करने पर हमने यह पाया है कि मोटे रूप में तीन प्रकार की परिभाषाएँ हैं-प्रथम , वे परिभाषाएँ जो दार्शनिक ने दी है तथा जो आदर्शों अथवा शाश्वत सत्य व मूल्यों पर बल देती है द्वितीय , वे परिभाषाएँ जो भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण मानती है,स्पष्ट है कि ऐसी धारणा चिंतित माता-पिता व व्यावहारिक सामाजिक चिंतकों की ही हो सकती है;तृतीय ,ऐसी परिभाषाएँ जो बालक के व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया के रूप में शिक्षा को महत्वपूर्ण मानती है।

सुकरात ने शिक्षा को 'त्रुटि को दूर करने तथा सत्य की खोज करने का कार्य'बताकर, ऋग्वेद ने इसे 'मुक्ति दिलाने का साधन' बताकर , जगदगुरु शंकराचार्य ने इसे 'आत्मानुभूति' अथवा 'आत्मसाक्षात्कार' कहकर, अरविंद घोष ने इसे 'आत्म की अपने भीतर की सर्वोत्कृष्ट शक्तियों को बाहर निकालकर प्रस्तुत करने की प्रक्रिया' बता कर प्रथम प्रकार की शिक्षा संबंधी परिभाषाएं दी थी।

'शिक्षा जीवन के लिए तैयारी या नौसिखियापन की अवस्था है',विलमोट की यह परिभाषा जनता में आज भी सामान्य रूप से प्रचलित धारणा से भिन्न नहीं है। यज्ञवल्क्य, प्लेटो ,अरस्तू पेस्टालाजी, फ्रोबेल, रूसो, नन आदि विचारकों के मतानुसार शिक्षा एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करने की प्रक्रिया है।

इन परिभाषों में हम कुछ न्यूनता स्पष्टतया देख सकते हैं। बिन किसी समाज की संस्कृति विशेष के संदर्भ को ध्यान में रखकर दी गयी ये परिभाषा हमें कोई भी स्पष्ट दिशा नहीं देती। सत्य, सुंदरता, भलाई, सर्वागीण विकास आदि पद अथवा तत्व ऐसे हैं जिन्हें यदि किसी विशेष सामाजिक संदर्भ में रखकर चर्चा का विषय बनाया जाता है तो वे अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ ही प्रस्तुत करते हैं। भविष्य के महत्व पर सर्वाधिक बल देने वाले विचारक वर्तमान व भविष्य को भली-भांति व्यक्त नहीं करते। एक व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत कुछ उसके समाज की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, परम्पराओं आदि से प्रभावित होता है, लेकिन लगता है कि तृतीय प्रकार की परिभाषा देने वालों ने मनोवैज्ञानिक कारकों को ही अधिकतम महत्वपूर्ण माना है।

शिक्षा संबंधी परिभाषाओं या विचारों की उपर्युक्त न्युनताओं अथवा सीमाओं के फलस्वरूप शिक्षा एक अत्यंत अस्पष्ट प्रक्रिया के रूप में उपस्थित होती है। इसको सही रूप में समझने के कुछ प्रयास समाजशास्त्र व मानवशास्त्र के कुछ विद्वानों ने पिछले 120-125 वर्षों में किए हैं। उनकी इस संबंध में प्रमुख देने इस प्रकार हैं – प्रथम, वे मूलस्वरूप में इस पक्ष पर सर्वाधिक बल देते हैं कि हमें उस समाज या समुदाय विशेष की व्यवस्था व विशेषताओं को समझना होगा जिनमें शिक्षा दी जा रही है। द्वीतीय हम मानव की इन तीन प्रमुख सामाजिक विशेषताओं को अवश्य ध्यान में रखें –

(1)एक समाज या समूह के जीवन की विधि का प्रत्येक पक्ष व्यक्ति को सीखना पड़ता है, उसे वह जन्मजात रूप से ही नहीं पा लेता। (2) मानव शिशु अनुभवों को ग्रहण करता है तथा उनका विकास करते हुए स्वयं अपना असीमित विकास करने की महत्वपूर्ण क्षमता रखता है। (3) प्राणी जगत के अधिकांश प्राणियों की तुलना में वह अपने माता-पिता व अन्य प्रोढ़ों की सहायता, आश्रय व प्रशिक्षण पर बहुत अधिक सीमा तथा पर्याप्त लंबे समय तक निर्भर रहता है। इन मूलाधारों पर ही शिक्षा में रुचि रखने वाले समाजशास्त्रियों, सामाजिक दार्शनिकों तथा सामाजिक व सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों ने शिक्षा की सार्थक परिभाषा व व्याख्याएँ देने का प्रयास किया है।

कुछ प्राचीन मध्य तथा वर्तमान युग के विचारकों ने भी ऐसे कुछ विचार व्यक्त किए हैं, जो इन आधुनिक समाज वैज्ञानिकों के विचारों से मेल खाते हैं। उदाहरणार्थ, प्लेटो का मत था कि "शिक्षा उस सिद्धान्त की ओर बालकों को खींचने या मार्गदर्शित करने की प्रक्रिया है जिसे एक देश के कानून तथा वृद्ध लोगों व न्यायपरायण व्यक्तियों के अनुभवों के अनुसार उचित माना जाता है। "हरबर्ट स्पेंसर के

अनुसार – 'शिक्षा वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के लिए बालक को तैयार करने की प्रक्रिया के रूप में ही हमारे सामने उपस्थित होती है। हमारे देश में शिक्षा का अर्थ है – 'देश के लिए प्रशिक्षण तथा राष्ट्र के लिए प्रेम'।

लेकिन व्यवस्थित रूप से अथवा कुछ सामाजिक सिद्धांतों के आधार पर शिक्षा की व्याख्या करने का श्रेय तो वास्तव में आधुनिक समाजशास्त्रियों व सामाजिक मानव शास्त्रियों को ही दिया जा सकता है। फ्रांस के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम (1858-1917) उनमें अग्रणी रहें हैं। वे फ्रांस के बोडीयू तथा सोहबो विश्वविद्यालय में क्रमशः 1887 से 1902 तथा 1902 से 1917 तक समाजशास्त्र के प्राध्यापक भी रहे थे। संक्षेप में उनके शिक्षा संबंधी समाजशास्त्री विचारों को उनकी पुस्तक 'एजुकेशन एंड सोशियोलोजी' में देखा जा सकता है। अपने जीवन के आरंभ में आस्ट्रेलिया की अरुंटा जनजाति की सांस्कृतिक विशेषताओं से प्रभावित होकर उन्होने समाजशास्त्र के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत किये थे। उन्हीं सिद्धांतों की सहायता से उन्होने परंपरागत समाज में शिक्षा के कार्य को समझने का यत्न किया था। उनकी विचारधारा को अत्यत्न संक्षेप व सरल रूप में हम निम्न लिखित रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं –

प्रथम, प्रत्येक समाज के सम्मुख सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यही होता है कि वह अपने अस्तित्व को बनाए रखे। इसीलिए तो वह परम्पराओं, रीति-रिवाजों, त्यौहारों, शिक्षा, कानून आदि अनेकानेक साधनों व उपायों के द्वारा यह प्रयत्न करता रहता है कि उनकी निरंतरता बनीं रहे। कोई भी समाज स्वयं को नष्ट करने की बात नहीं सोच सकता।

द्वितीय, प्रत्येक समुदाय या समाज की अपनी 'समूहिक भावना'होती है। रिश्तेदारी, निकट संपर्क तथा दूर-दूर के लेकिन घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्धों तथा श्रम विभाजन के संबंध द्वारा समूह की यह सामाजिक भावना विकसित होती है। प्रायः इस चेतना की अभिव्यक्ति 'सामूहिक प्रतिनिधित्व' के द्वारा की जाती है। उदाहरणार्थ देश या समूह का झण्डा, नारा, मूर्ति, धार्मिक पुस्तकें, पुरस्कार कोई विशेष उच्च पद आदि प्रतीक सामुदायिक प्रतिनिधित्व ही कर्टेन हैं, क्योंकि समुदाय की चेतना व एकता इन्हीं के द्वारा प्रकट होती है।

तृतीय, 'मनुष्य इसीलिए मनुष्य है क्योंकि वह समाज में रहता है' इस कथन के द्वारा लेखक समाज की सर्वाधिक शक्ति, महत्व व निर्णायक शक्तियों को अभिव्यक्त करता है।

चतुर्थ, सामाजिक तथ्य व्यवहार, विचार, अनुभव या क्रिया का वह पक्ष होता है जिसका कर्म- विषयक अर्थात निष्पक्ष रूप से अध्ययन या निरीक्षण किया जा सकता है तथा जो कि किसी विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है। प्रत्येक सामाजिक तथ्य में बाह्यता तथा बाध्यता अवश्य होती है। सामाजिक तथ्य सामाजिक चेतना से संबन्धित होते हैं।

अपने प्रगति की जांच करें-
1 शिक्षा के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को समझाये।

1.2.11. शिक्षा की परिभाषा : परंपरागत समाजीकरण ही शिक्षा है

"शिक्षा, प्रौढ़ पीढ़ियों द्वारा सामाजिक जीवन के लिए अब तक तैयार न हुए व्यक्तियों पर डाला गया प्रभाव है। इसका उद्देश्य बालक में एक विशेष प्रकार की शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक अवस्थाओं को उभारना तथा विकसित करना होता है जिन्हें विशेष राजनैतिक समाज चाहता है तथा जिनकी उस सामाजिक पर्यावरण को आवश्यकता होगी जिसमें एक व्यक्ति को रहना होगा। संक्षेप में, शिक्षा युवा पीढ़ी का एक समाजीकरण ही है।"

शिक्षा वह साधन है जिसके द्वारा समाज बालकों में अपने ही अस्तित्व की अनिवार्य अवस्था को तैयार करता है"।

शिक्षा में राज्य का कार्य :

चूंकि शिक्षा एक अनिवार्य सामाजिक कार्य है अतः राज्य उसके प्रति उपेक्षा वृति नहीं अपना सकता। इसके विपरीत शिक्षा से संबन्धित प्रत्येक वस्तु को इसके प्रभाव के आगे झुकना चाहिए।

"यह राज्य का कार्य है कि वह उन आवश्यक सिद्धांतों की रूपरेखा प्रस्तुत करे जिन्हें वह पाठशालाओं में पढ़वाया जाना आवश्यक समझता है और यह देखे कि उन्हें उचित सम्मान प्रदान किया जाता है"।

"एक अध्यापक उस समय अपने कर्तव्य से च्युत हो जाता है जबकि वह अपने अधिकार का उपयोग अपनी पूर्व निर्धारित सम्मतियों से अपने शिष्यों को प्रभावित करने में करता है, चाहे वे सम्मतियों उसे कितनी भी अधिक न्यायसंगत प्रतीत होती हों।"

शिक्षक :

"जिस प्रकर से पुजारी अपने देवता का दुभाषिया होता है उसी प्रकार से शिक्षक अपने समय व अपने देश के महान नैतिक विचारों का व्याख्याकार या दुभाषिया होता है"।

शिक्षा का आदर्श :

"भूतकाल की ही भांति वर्तमान में भी हमारा शैक्षिक आदर्श अपने प्रत्येक अर्थ में समाज का ही कार्य होता है। यह समाज ही है जो हमारे लिए इस प्रकार के व्यक्ति के चित्र चित्रित करता है। जिसे हम चाहते हैं, उस चित्र में उस समाज की व्यवस्था की सभी विशेषताएँ प्रतिबिम्बित होती हैं"।

पाठशाला :

जितनी अच्छी तरह से हम समाज को समझेंगे उतनी ही अच्छी तरह से हम पाठशाला रूपी समाज के सूक्ष्म रूप में होने वाली सभी बातों का स्पष्टीकरण कर सकेंगे"।

अपनी पुस्तक 'Moral Education' में दुर्खीम ने अपनी सम्पूर्ण शिक्षा समाजशास्त्रीय विचारधारा को इस महत्वपूर्ण कथनांश में प्रस्तुत किया है।

"सबसे बड़ी बात तो यह है कि शिक्षा सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति का एक सामाजिक साधन है ऐसा साधन जिससे समाज अपने अस्तित्व को सुनिश्चित करता है। शिक्षा समाज का अभिकर्ता या एजेंट है, वह

सांस्कृतिक संचार की एक महत्वपूर्ण कड़ी भी है। यह उसी का कार्य है कि वह एक सामाजिक या नैतिक व्यक्ति की रचना करता है। यह शिक्षा का कार्य और गौरव है। शिक्षा एक नया व्यक्ति बनती है।"

जब हम उपर्युक्त कथनानशों पर विचार करना आरंभ करते हैं तो कई बातें पूर्णतया स्पष्ट हो जाती हैं। दुर्खीम की विचारधारा के अनुसार शिक्षा को समाजीकरण की प्रक्रिया ही माना जा सकता है। लेकिन यहाँ यह बात स्मरण रखने की है कि किसी भी प्रकार के निश्चित समाजीकरण को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार समाजीकरण ऐसा ही होना चाहिए जिसे समाज के बड़े-बुढ़े व राज्य पसंद करते हैं। वे तो निःसंदेह पहले से चली आ रही परम्पराओं, रीति-रिवाजों व्यवहार के प्रतिमान को ही पसंद करेंगे, क्योकि ऐसा करना ही समाज के हित में है। उनके अनुसार व्यक्तियों के लिए सामाजिक व सांस्कृतिक आदत के रूप में व्यवहार करना सरल होता है। इनके अनुसार व्यवहार करने से उस समाज के सदस्य अन्य समाज के सदस्यों से भिन्न होते हैं। समाज का अस्तित्व इस प्रकार से चलता रहता है कि व्यक्ति को भी सुगमतापूर्वक अपने पूर्वजों की जीवन-योजना अथवा जीवन के मानचित्र के आधार पर अपना जीवन यापन करना सुगम होता है।

अपने प्रगति की जांच करें –

1 शिक्षा को परिभाषित करते हुए समाजीकरण का शिक्षा से संबंध को समझाये।

1.2.12. सारांश

सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक पर्यावरण के साथ अनुकूलन करता है और इस प्रकार वह उस समाज का मान्य सहयोगी और कुशल सदस्य बनता है। सामाजीकरण की अनेकों विशेषताएं है जिसके द्वारा व्यक्ति समाज में अपना अलग स्थान प्राप्त करता है। सामाजीकरण के प्रमुख साधनों में परिवार, पड़ोस, क्रीडा, समूह, शिक्षण संस्थाएं, जाति, समुदाय, आर्थिक संस्थाएं, धार्मिक संस्थाएं, उत्सव, राजनीतिक संस्थाएं, सांस्कृतिक संस्थाएं इत्यादि हैं। जिसका व्यक्ति के ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। समाजीकरण की पद्धतियां ओटावे के अनुसार तीन है जो कि समाजिक सीखना, समाजिक उत्तरदायित्व, समाजिक प्रशिक्षण हैं और समाजीकरण के कारकों में मनोवैज्ञानिक व सामाजिक कारक मुख्य हैं।

1.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

- मिश्रा, उमा. (2014). *शिक्षा का समाजशास्त्र*. इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस.
- रूहेला, सत्यपाल. (2012). *भारतीय शिक्षाका समाजशास्त्र*. राजस्थान: हिंदी ग्रंथ अकादमी.
- रमन, बिहारी. लाल. (2012). *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत*: रस्तोगी पब्लिकेशन्स.
- एगर, बेन. (1978) *वेस्टर्न मार्क्सिज्म एवं इंट्रोडक्शन*. सांता मोनिका कालिफ: गुडईयर.
- एल्फ्रड, रॉबर्ट. आर. एण्ड फ्रेडलेंड, रोजर. (1985). *पावर्स ऑफ थ्योरी : कैपिटलिज्म द स्टेट एंड ईमोक्रेसी*. कैम्ब्रिज: यूनिवर्सिटी प्रेस.

इकाई-3 सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा का संबंध

इकाई की रूपरेखा

1.3.0. उद्देश्य

1.3.1. प्रस्तावना

1.3.2. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ

1.3.3. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ

1.3.4. सामाजिक परिवर्तन के मुख्य स्त्रोत

1.3.5. सामाजिक परिवर्तन के कारक

1.3.6. सामाजिक परिवर्तन की कुछ संबंधित अवधारणाएं

1.3.7. शिक्षा की अवधारणा एवं उद्देश्य

1.3.8. शिक्षा के प्रकार

1.3.9. सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा में संबंध

1.3.10. सामाजिक परिवर्तन के मुख्य उपकरण के रूप में शिक्षा

1.3.11. सारांश

1.3.12. अपना आकलन स्वयं करे (अभ्यास प्रश्न)

1.3.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.0. उद्देश्य

प्रस्तुत खंड 1 की इकाई 3 का मुख्य उद्देश्य आपको सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा से परिचित कराते हुए शिक्षा के साथ इसके अंतरसंबंध की व्याख्या करना है जिसके माध्यम से आप शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में विश्लेषित कर सके।

संक्षेप में उपरोक्त इकाई का उद्देश्य है कि आप निम्नलिखित बिन्दुओं को आत्मसात कर सके।

- सामाजिक परिवर्तन का अर्थ, विशेषता एवं स्त्रोत
- सामाजिक परिवर्तन के कारक
- शिक्षा की अवधारणा एवं उद्देश्य
- शिक्षा की विशेषताएँ
- सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा में संबंध
- सामाजिक परिवर्तन के मुख्य उपकरण के रूप में शिक्षा

1.3.1. प्रस्तावना

शिक्षा और समाज को एक दूसरे के पूरक के रूप स्वीकार किया जाता रहा है। शिक्षा ने जब से समाज में एक विस्तृत संगठित क्षेत्र के रूप में अपना स्वरूप ग्रहण किया है। तभी से समाजशास्त्रियों और शिक्षाविदो ने इस विषय को गहनता के साथ समझने का प्रयास किया है। शिक्षा और समाज के मध्य क्या, कैसा और क्यूँ संबंध है इसे लेकर उनमें भारी वैचारिक मतभेद रहा है। एक छोर पर शिक्षा को राज्य का सबसे महतवपूर्ण वैचारिक उपकरण स्वीकार किया जाता है, जिसे शासक वर्गों में ईजाद किया है ताकि वे यह सुनिश्चित कर सकें कि समाज अमूमन उन्ही के विचारों और हितों के अनुरूप संचालित हो सके। बल्कि ग्राम्शी मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है

1.3.2. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जिसके कारण मानव के विचारों,आदर्शो तथा मूल्यों में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं, इसी लिए कहा जाता है कि परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है। और यह परिवर्तन मानव जीवन में होना आवश्यक है। इसी प्रकार मानव निर्मित समाज में भी परिवर्तन होते रहते है। जिस प्रकार मनुष्य गतिशील है ठीक उसी प्रकार मानव निर्मित समाज भी गतिशील है। किसी भी समाज में परिवर्तन की दर तेज या मंद हो सकती है लेकिन यह निरंतर प्रक्रिया के रूप में प्रत्येक समाज में गतिमान है। आधुनिक समाज में नई-नई तकनीकों, अविष्कारों, यातायात के साधनों, नगरीकरण, औधोगिकीकरण के परिणाम स्वरूप समाज के ढाँचे या संरचना में होने वाले परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन के रूप में परिभाषित करते है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक समाज की अपनी एक संरचना होते है, अपने व्यवहार प्रतिमान होते है और सामाजिक कार्यों को संपादित करने की अपनी विधियाँ होती है। इन्ही सामाजिक संरचना, व्यवहार प्रतिमान, कार्य संपादन विधियों में होने वाले स्थायी परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

किंग्सले डेविड के अनुसार, "सामाजिक संरचना और उसके कार्यों में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।"

मैकाइवर एवं पेज के शब्दों में, " समाज के दांचे में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है।"

एम.गिंसबर्ग के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन से आशय है सामाजिक संरचना में परिवर्तन आना, उदाहरणार्थ समाज के आकर एवं उसके संगठन के विभिन्न भागों में संतुलन आने से है।"

बी.कुप्पूस्वामी के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन सामाजिक संरचना एवं सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन है।"

हैरी जांसन ने सामाजिक परिवर्तन के अंतर्गत निम्नलिखित पांच प्रकार के परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन के रूप में मान्यता प्रदान किया है –

- **सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन**
- **संस्थागत परिवर्तन**

- **संपति तथा पुरस्कार की वितरण प्रणाली में परिवर्तन**
- **कार्यकर्ताओं में परिवर्तन**
- **कार्यकर्ता की योग्यताओं या अभिवृत्तियों में परिवर्तन**

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं की सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत हम मुख्य रूप से तीन तथ्यों का अध्ययन करते हैं- (क) सामाजिक संरचना में परिवर्तन, (ख) संस्कृति में परिवर्तन एवं (ग) परिवर्तन के कारक।

सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमुख परिभाषाओं पर विचार करेंगे। एवं पेज (R.M. MacIver and C.H. Page) ने अपनी पुस्तक Society में सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए बताया है कि समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष संबंध सामाजिक संबंधों से है और उसमें आए हुए परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहेंगे। डेविस (K. Davis) के अनुसार सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना एवं प्रकार्यों में परिवर्तन है। एच0एम0 जॉनसन (H.M. Johnson) ने सामाजिक परिवर्तन को बहुत ही संक्षिप्त एवं अर्थपूर्ण शब्दों में स्पष्ट करते हुए बताया कि मूल अर्थों में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ संरचनात्मक परिवर्तन है। जॉनसन की तरह गिडेन्स ने बताया है कि सामाजिक परिवर्तन का अर्थ बुनियादी संरचना (Underlying Structure) या बुनियादी संस्था (Basic Institutions) में परिवर्तन से है।

ऊपर की परिभाषाओं के संबंध में यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया है। समाज के किसी भी क्षेत्र में विचलन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। विचलन का अर्थ यहाँ खराब या असामाजिक नहीं है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक आदि सभी क्षेत्रों में होने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है। यह विचलन स्वयं प्रकृति के द्वारा या मानव समाज द्वारा योजनाबद्ध रूप में हो सकता है। परिवर्तन या तो समाज के समस्त ढाँचे में आ सकता है अथवा समाज के किसी विशेक्ष पक्ष तक ही सीमित हो सकता है। परिवर्तन एक सर्वकालिक घटना है। यह किसी-न-किसी रूप में हमेशा चलने वाली प्रक्रिया है। परिवर्तन क्यों और कैसे होता है, इस प्रश्न पर समाजशास्त्री अभी तक एकमत नहीं हैं। इसलिए परिवर्तन जैसी महत्वपूर्ण किन्तु जटिल प्रक्रिया का अर्थ आज भी विवाद का एक विषय है। किसी भी समाज में परिवर्तन की क्या गति होगी, यह उस समाज में विद्यमान परिवर्तन के कारणों तथा उन कारणों का समाज में सापेक्षिक महत्व क्या है, इस पर निर्भर करता है। सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए यहाँ इसकी प्रमुख विशेषताओं की चर्चा अपेक्षित है।

1.3.3. सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया (Universal Process) है। अर्थात् सामाजिक परिवर्तन संसार के हर समाज में घटित होता है। संसार में ऐसा कोई भी ऐसा समाज नजर नहीं आता, जो लम्बे समय तक स्थिर रहा हो या स्थिर है। यह संभव है कि परिवर्तन की रफ्तार कभी धीमी और कभी तीव्र हो, लेकिन परिवर्तन समाज में चलने वाली एक अनवरत प्रक्रिया है।

सामाजिक परिवर्तन के विविध स्वरूप होते हैं। प्रत्येक समाज में सहयोग, समायोजन, संघर्ष या प्रतियोगिता की प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं जिनसे सामाजिक परिवर्तन विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। परिवर्तन कभी एकरेखीय (Unilinear) तो कभी बहुरेखीय (Multilinear) होता है। उसी तरह परिवर्तन कभी समस्यामूलक होता है तो कभी कल्याणकारी। परिवर्तन कभी चक्रीय होता है तो कभी उद्विकासीय। कभी-कभी सामाजिक परिवर्तन क्रांतिकारी भी हो सकता है। परिवर्तन कभी अल्प अवधि के लिए होता है तो कभी दीर्घकालीन। सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा सापेक्षिक (Irregular and Relative) होती है। समाज की विभिन्न इकाइयों के बीच परिवर्तन की गति समान नहीं होती है।

1.3.4. सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण स्रोत

1. खोज

मनुष्य ने अपने ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर अपनी समस्याओं को सुलझाने और एक बेहतर जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत तरह की खोज की है। जैसे शरीर में रक्त संचालन, बहुत सारी बीमारियों के कारणों, खनिजों, खाद्य पदार्थों, पृथ्वी गोल है एवं वह सूर्य की परिक्रमा करती है आदि हजारों किस्म के तथ्यों की मानव ने खोज की, जिनसे उनके भौतिक एवं अभौतिक जीवन में काफी परिवर्तन आया।

2. आविष्कार

विज्ञान और प्रौद्यागिकी के जगत में मनुष्य के आविष्कार इतने अधिक हैं कि उनकी गिनती करना मुश्किल है। आविष्कारों ने मानव समाज में एक युगान्तकारी एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है।

3. प्रसार

सांस्कृतिक जगत के परिवर्तन में प्रसार का प्रमुख योगदान रहा है। पश्चिमीकरण (Westernization), आधुनिकीकरण (Modernization), एवं भूमंडलीकरण (Globalization) जैसी प्रक्रियाओं का मुख्य आधार प्रसार ही रहा है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी का इतना अधिक विकास हुआ है कि प्रसार की गति बहुत तेज हो गयी है।

4. आन्तरिक विभेदीकरण

(Internal Differentiation)—जब हम सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हैं, तो ऐसा लगता है कि परिवर्तन का एक चौथा स्रोत भी संभव है- वह है आन्तरिक विभेदीकरण। इस तथ्य की पुष्टि उद्विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory) के प्रवर्तकों के विचारों से होती है। उन लोगों का

मानना है कि समाज में परिवर्तन समाज के स्वाभाविक उद्विकासीय प्रक्रिया से ही होता है। हरेक समाज अपनी आवश्यकताओं के अनुसार धीरे-धीरे विशेष स्थिति में परिवर्तित होता रहता है। समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने अपने उद्विकासीय सिद्धान्त में स्वत: चलने वाली आन्तरिक विभेदीकरण की प्रक्रिया पर काफी बल दिया है।

1.3.5. सामाजिक परिवर्तन के कारक

सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं। समाजशास्त्री मुख्य रूप से सामाजिक परिवर्तन के जनसांख्यिकीय (Demographic), प्रौद्योगिक (Technological) सांस्कृतिक (Cultural) एवं आर्थिक (Economic) कारकों की चर्चा करते हैं। इसके अलावा सामाजिक परिवर्तन के अन्य कारक भी होते हैं, क्योंकि मानव-समूह की भौतिक (Material) एवं अभौतिक (Non-material) आवश्यकताएँ अनन्त हैं और वे बदलती रहती हैं।

सामाजिक परिवर्तन की कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अनेक आकस्मिक कारक भी सामाजिक परिवर्तन की स्थिति पैदा करते हैं।

विलबर्ट इ0 मोर (Wilbert E. Moore, 1974) ने आधुनिक समाज को ध्यान में रखते हुए सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं की चर्चा अपने ढंग से की है, वे हैं-

सामाजिक परिवर्तन निश्चित रूप से घटित होते रहते हैं। सामाजिक पुनरुत्थान के समय में परिवर्तन की गति बहुत तीव्र होती है। बीते समय की अपेक्षा वर्तमान में परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यधिक तीव्र होती है। आज परिवर्तनों का अवलोकन हम अधिक स्पष्ट रूप में कर सकते हैं। परिवर्तन का विस्तार सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में देख सकते हैं। भौतिक वस्तुओं के क्षेत्र में, विचारों एवं संस्थाओं की तुलना में, परिवर्तन अधिक तीव्र गति से होता है। हमारे विचारों एवं सामाजिक संरचना पर स्वाभाविक ढंग और सामान्य गति के परिवर्तन का प्रभाव अधिक पड़ता है। सामाजिक परिवर्तन का अनुमान तो हम लगा सकते हैं, लेकिन निश्चित रूप से हम इसकी भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं।

सामाजिक परिवर्तन गुणात्मक (Qualitative) होता है। समाज की एक इकाई दूसरी इकाई को परिवर्तित करती है। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक पूरा समाज उसके अच्छे या बुरे प्रभावों से परिचित नहीं हो जाता। आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन न तो मनचाहे ढंग से किया जा सकता है और न ही इसे पूर्णत: स्वतंत्र और असंगठित छोड़ दिया जा सकता है। आज हर समाज में नियोजन (Planning) के द्वारा सामाजिक परिवर्तन को नियंत्रित कर वांछित लक्ष्यों की दिशा में क्रियाशील किया जा सकता है।

1.3.6. सामाजिक परिवर्तन की कुछ संबंधित अवधारणाएं

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कई रूपों में प्रकट होती हैं, जैसे- उद्विकास (Evolution), प्रगति (Progress), विकास (Development), सामाजिक आन्दोलन (Social Movement), क्रांति (Revolution) इत्यादि। चूँकि इन सामाजिक प्रक्रियाओं का सामाजिक परिवर्तन से सीधा संबंध है या कभी-कभी इन संबंधों को सामाजिक परिवर्तन का पर्यायवाची माना जाता है, इसलिए इन शब्दों के अर्थ के संबंध में काफी उलझनें हैं। इनका स्पष्टीकरण निम्नलिखित हैं।

1. उद्विकास

'उद्विकास' शब्द का प्रयोग सबसे पहले जीव-विज्ञान के क्षेत्र में चाल्र्स डार्विन (Charles Darwin) ने किया था। डार्विन के अनुसार उद्विकास की प्रक्रिया में जीव की संरचना सरलता से जटिलता (Simple to Complex) की ओर बढ़ती है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक चयन (Natural Selection) के सिद्धान्त पर आधारित है। आरंभिक समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने जैविक परिवर्तन (Biological Changes) की भाँति ही सामाजिक परिवर्तन को भी कुछ आन्तरिक शक्तियों (Internal Forces) के कारण संभव माना है और कहा है कि उद्विकास की प्रक्रिया धीरे-धीरे निश्चित स्तरों से गुजरती हुई पूरी होती है। उद्विकास की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मकीवर एवं पेज ने लिखा है कि उद्विकास एक किस्म का विकास है। पर प्रत्येक विकास उद्विकास नहीं है क्योंकि विकास की एक निश्चित दिशा होती है, पर उद्विकास की कोई निश्चित दिशा नहीं होती है। किसी भी क्षेत्र में विकास करना उद्विकास कहा जाएगा। मकीवर एवं पेज ने बताया है कि उद्विकास सिर्फ आकार में नहीं बल्कि संरचना में भी विकास है। यदि समाज के आकार में वृद्धि नहीं होती है और वह पहले से ज्यादा आन्तरिक रूप से जटिल हो जाता है तो उसे उद्विकास कहेंगे।

2. प्रगति

परिवर्तन जब अच्छाई की दिशा में होता है तो उसे हम प्रगति (Progress) कहते हैं। प्रगति सामाजिक परिवर्तन की एक निश्चित दिशा को दर्शाता है। प्रगति में समाज-कल्याण और सामूहिक-हित की भावना छिपी होती है। ऑगबर्न एवं निमकॉफ ने बताया है कि प्रगति का अर्थ अच्छाई के निमित्त परिवर्तन है। इसलिए प्रगति इच्छित परिवर्तन है। इसके माध्यम से हम पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को पाना चाहते हैं।

मकीवर एवं पेज आगाह करते हुए कहा है कि हम लोगों को उद्विकास और प्रगति को एक ही अर्थ में प्रयोग नहीं करना चाहिए। दोनों बिल्कुल अलग-अलग अवधारणाएँ हैं।

3. विकास

जिस प्रकार उद्विकास के अर्थ बहुत स्पष्ट एवं निश्चित नहीं हैं, विकास की अवधारणा भी बहुत स्पष्ट नहीं है। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में विकास का अर्थ सामाजिक विकास से है। प्रारंभिक समाजशास्त्रियों विशेषकर कौंत, स्पेन्सर एवं हॉबहाउस ने सामाजिक उद्विकास (Social Evolution), प्रगति (Progress) एवं सामाजिक विकास (Social Development) को एक ही अर्थ में प्रयोग किया था। आधुनिक समाजशास्त्री इन शब्दों को कुछ विशेष अर्थ में ही इस्तेमाल करते हैं। आज समाजशास्त्र के क्षेत्र में विकास से हमारा तात्पर्य मुख्यत: सामाजिक विकास से है। इसका प्रयोग विशेषकर उद्योगीकरण एवं

आधुनिकीकरण के चलते विकसित एवं विकासशील देशों के बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिए होता है। सामाजिक विकास में आर्थिक विकास का भी भाव छिपा होता है और उसी के तहत हम परम्परागत समाज (Traditional Society), संक्रमणशील समाज (Transitional Society) एवं आधुनिक समाज (Modern Society) की चर्चा करते हैं। आधुनिक शिक्षा का विकास भी एक प्रकार का सामाजिक विकास है। उसी तरह से कृषि पर आधारित सामाजिक व्यवस्था से उद्योग पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की ओर अग्रसर होना भी सामाजिक विकास कहा जाएगा। दूसरे शब्दों में, सामन्तवाद (Feudalism) से पूँजीवाद (Capitalism) की ओर जाना भी एक प्रकार का विकास है।

4. सामाजिक आन्दोलन

सामाजिक आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन का एक बहुत प्रमुख कारक रहा है। विशेषकर दकियानूसी समाज में सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा काफी परिवर्तन आए हैं।

गिडेन्स के अनुसार सामूहिक आन्दोलन का ऐसा प्रयास है जिसका एक सामान्य उद्देश्य होता है और उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्थागत सामाजिक नियमों का सहारा न लेकर लोग अपने ढंग से व्यवस्थित होकर किसी परम्परागत व्यवस्था को बदलने का प्रयास करते हैं।

गिडेन्स ने कहा है कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि सामाजिक आन्दोलन और औपचारिक संगठन (Formal Organization) एक ही तरह की चीजें हैं, पर दोनों बिल्कुल भिन्न हैं। सामाजिक आन्दोलन के अन्तर्गत नौकरशाही व्यवस्था जैसे नियम नहीं होते, जबकि औपचारिक व्यवस्था के अन्तर्गत नौकरशाही नियम-कानून की अधिकता होती है। इतना ही नहीं दोनों के बीच उद्देश्यों का भी फर्क होता है। उसी तरह से कबीर पंथ, आर्य समाज, बह्मो समाज या हाल का पिछड़ा वर्ग आन्दोलन (Backward Class Movement) को सामाजिक आन्दोलन कहा जा सकता है। औपचारिक व्यवस्था नहीं।

5. क्रांति

सामाजिक आन्दोलन से भी ज्यादा सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम क्रांति है, इसलिए यहाँ इसकी भी चर्चा आवश्यक है। क्रांति के द्वारा सामाजिक परिवर्तन के अनगिनत उदाहरण मौजूद हैं। लेकिन पिछली दो-तीन शताब्दियों में मानव इतिहास में काफी, बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ आई हैं, जिससे कुछ राष्ट्रों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में युगान्तकारी परिवर्तन हुए हैं। इस संदर्भ में 1775-83 की अमेरिकी क्रांति एवं 1789 की फ्रांसीसी क्रांति विशेष रूप से उललेखनीय हैं। इन क्रांतियों के चलते आज समस्त विश्व में स्वतंत्रता (Liberty), सामाजिक समानता (Social Equality) और प्रजातंत्र (Democracy) की बात की जाती है। उसी तरह से रूसी और चीनी क्रांति का विश्व स्तर पर अपना ही महत्व है। अब्राम्स (Abrams, 1982) ने बताया है कि विश्व में अधिकांश क्रांतियाँ मौलिक सामाजिक पुनर्निमाण के लिए हुई हैं। अरेंड (Nannah Arendt, 1963) के अनुसार क्रांतियों का मुख्य उद्देश्य परम्परागत व्यवस्था से अपने-आपको अलग करना एवं नये समाज का निर्माण करना है। इतिहास में कभी-कभी इसका अपवाद भी देखने को मिलता है। कुछ ऐसी भी क्रांतियाँ हुई हैं, जिनके द्वारा हम समाज को और भी पुरातन समय में ले जाने की कोशिश करते हैं।

1.3.7. शिक्षा की अवधारणा

शिक्षा, समाज की एक पीढ़ी द्वारा अपने से निचली पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तांतरण का प्रयास है। इस विचार से शिक्षा एक संस्था के रूप में काम करती है, जो व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा समाज की संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है। बच्चा शिक्षा द्वारा समाज के आधारभूत नियमों, व्यवस्थाओं, समाज के प्रतिमानों एवं मूल्यों को सीखता है। बच्चा समाज से तभी जुड़ पाता है जब वह उस समाज विशेष के इतिहास से अभिमुख होता है।

दूसरे अर्थों में शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली एक गतिशील प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए तथा सामाजिक मानकों, नियमों, मान्यताओं, की समझ विकसित कर समाज में समायोजित होने के लिए तैयार करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है।

यदि शाब्दिक अवधारणा को दृष्टिगत रखे तो शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है सीखना और सिखाना। 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने-सिखाने की क्रिया।

विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों,समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों व नीतिकारों ने शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। शिक्षा के अर्थ को समझने में ये विचार भी हमारी सहायता करते हैं। कुछ शिक्षा सम्बन्धी मुख्य विचार यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं: -

- **महात्मा गाँधी** के अनुसार – "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है"
- **स्वामी विवेकानंद** के अनुसार – 'मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है')
- 'शिक्षा व्यक्ति के समन्वित विकास की प्रक्रिया है' – **जे. कृष्णमूर्ति**
- **जान डीवी** के अनुसार – 'शिक्षा व्यक्ति की उन सभी आंतरिक शक्तियों का विकास है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रखकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके'
- **हर्बर्ट स्पेंसर** के शब्दों में – 'शिक्षा का अर्थ अन्तःशक्तियों का बाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है'
- **पेस्तालाजी** के अनुसार – 'शिक्षा मानव की सम्पूर्ण शक्तियों का प्राकृतिक, प्रगतिशील और सामंजस्यपूर्ण विकास है'
- शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है, शिक्षा राष्ट्रीय सम्पन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है। **(राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1964-66)**

❖ शिक्षा बच्चे की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है। (सभी के लिए शिक्षा' पर विश्वव्यापी घोषणा, 1990)

शिक्षा का उद्देश्य

उद्देश्यों के दृष्टिकोण से शिक्षा के उद्देश्यों को मुख्यतः दो भागो में वर्गीकृत किया जा सकता हैं , पहला व्यापक रूप में तथा दूसरा संकुचित रूप में। **व्यापक रूप में शिक्षा** किसी समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। मनुष्य क्षण-प्रतिक्षण नए-नए अनुभव प्राप्त करता है व करवाता है, जिससे उसका दिन-प्रतिदन का व्यवहार प्रभावित होता है। उसका यह सीखना-सिखाना विभिन्न समूहों, उत्सवों, पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन आदि से अनौपचारिक रूप से होता है। यही सीखना-सिखाना शिक्षा के व्यापक तथा विस्तृत रूप में आते हैं। **संकुचित परिप्रेक्ष्य में शिक्षा** किसी समाज में एक निश्चित समय तथा निश्चित स्थानों (विद्यालय, महाविद्यालय) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली एक सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा छात्र निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर अनेक परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना सीखता है।

प्राचीन भारत में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य 'मुक्ति' की कामना रही है शंकराचार्य ने शिक्षा या जिसे विद्या के रूप में भी जाना जाता रहा हैं के सन्दर्भ में कहा हैं कि 'सा विद्या या विमुक्तये'

अर्थात विद्या उसे कहते हैं जो विमुक्त कर दे। बाद में समय के रूप बदलने से शिक्षा ने भी उसी तरह उद्देश्यों में परिवर्तन कर लिया।

1.3.8. शिक्षा के प्रकार

व्यवस्था की दृष्टि से देखें तो शिक्षा के मुख्यतः तीन प्रकार हैं है –

(1) औपचारिक शिक्षा

(2) निरौपचारिक शिक्षा

(3) अनौपचारिक शिक्षा

औपचारिक शिक्षा

वह शिक्षा जो विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में चलती हैं, औपचारिक शिक्षा कही जाती है। इस प्रकार की शिक्षा कका उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ, सभी निश्चित होते हैं। यह योजनाबद्ध होती है और इसकी योजना बड़ी कठोर होती है। इसमें अधिगमकर्ता को विद्यालय, महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय की समय सारणी के अनुसार कार्य करना होता है। इसमें परीक्षा लेने और प्रमाण पत्र प्रदान करने की व्यवस्था होती है। इस शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह व्यक्ति में ज्ञान और कौशल का

विकास करती है और उसे किसी व्यवसाय अथवा उद्योग के लिए योग्य बनाती है। परन्तु यह शिक्षा बड़ी व्यय-साध्य होती है। इससे धन, समय व ऊर्जा सभी अधिक व्यय करने पड़ते हैं।

निरौपचारिक शिक्षा

वह शिक्षा जो औपचारिक शिक्षा की भाँति विद्यालय, महाविद्यालय, और विश्वविद्यालयों की सीमा में नहीं बाँधी जाती है। परन्तु औपचारिक शिक्षा की तरह इसके उद्देश्य व पाठ्यचर्या निश्चित होती है, अंतर सिर्फ उसकी योजना में होता है जो बहुत लचीली होती है। इसका मुख्य उद्देश्य सामान्य शिक्षा का प्रसार और शिक्षा की व्यवस्था करना होता है। इसकी पाठ्यचर्या अधिगमकर्ता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निश्चित की गई है। शिक्षणविधियों व सीखने के स्थानों व समय आदि सीखने वालों की सुविधानानुसार निश्चित होता है। प्रौढ़ शिक्षा, सतत् शिक्षा, खुली शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा, ये सब निरौपचारिक शिक्षा के ही विभिन्न रूप हैं।

इस शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा उन बच्चोंव्यक्तियों को शिक्षित किया जाता है / - जो औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाए जैसे

- वे लोग जो विद्यालयी शिक्षा नहीं पा सके)या पूरी नहीं कर पाए(,
- प्रौढ़ व्यक्ति जो पढ़ना चाहते हैं,
- कामकाजी महिलाएँ,
- जो लोग औपचारिक शिक्षा में ज्यादा व्यय)धन समय या ऊर्जा किसी स्तर पर खर्च (नहीं कर सकते।

इस शिक्षा द्वारा व्यक्ति की शिक्षा को निरन्तरता भी प्रदान की जाती है, उन्हें अपने-त्र के नएअपने क्षे-नए अविष्कारों से परिचित कराया जाता है और तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

अनौपचारिक शिक्षा (Informal Education)

वह शिक्षा जिसकी कोई योजना नहीं बनाई जाती है जिसके न उद्देश्य निश्चित होते हैं न पाठ्यक्रम और नही शिक्षण विधियाँ और जो आकस्मिक रूप से सदैव चलती रहती है, उसे अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। यह शिक्षा मनुष्य के जीवन भर चलती है और इसका उस पर सबसे अधिक प्रभाव होता है। मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षण में इस शिक्षा को लेता रहता है, प्रत्येक क्षण वह अपने सम्पर्क में आए व्यक्तियों व वातावरण से सीखता रहता है। बच्चे की प्रथम शिक्षा अनौपचारिक वातावरण में घर में रहकर ही पूरी होती है। जब वह विद्यालय में औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने आता है तो एक व्यक्तित्त्व के साथ आता है जो कि उसकी अनौपचारिक शिक्षा का प्रतिफल है।

व्यक्ति की भाषा व आचरण को उचित दिशा देने, उसके अनुभवों को व्यवस्थित करने, उसे उसकी रुचि, रुझान और योग्यतानुसार किसी भी कार्य विशेष में प्रशिक्षित करने तथा जन शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए हमें औपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा का विधान करना आवश्यक होता है।

अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली

शिक्षा प्रणालियों का निर्माण मुख्य रूप से शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए, अक्सर बच्चों और युवाओं के लिए स्थापित की जाती है एक पाठ्यक्रम छात्रों को क्या पता होना चाहिए, बोध और शिक्षा के परिणाम के रूप में करने के लायक समझ को परिभाषित करता है। अध्यापन का व्यवसाय , सीख प्रदान करता है जो विद्या प्राप्ति और नीतियों की एक प्रणाली, नियमों, परीक्षाओं, संरचनाओं और वित्तपोषण को सक्षम बनाता है और वित्तपोषण शिक्षकों को अपनी प्रतिभा के उच्चतम् क्षमता से पढ़ाने में सहायता करता है। कभी कभी शिक्षा प्रणाली सिद्धांतों या आदर्शों एवं ज्ञान को बढ़ावा देने के लिए प्रयोग की जाती है जिसे सामाजिक अभियांत्रिकी कहा जाता है।विशेषतः अधिनायकवादी राज्यों और सरकार में यह वयवस्था के राजनीतिक दुरुपयोग को बढ़ावा दे सकता है।

1.3.9. सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा में संबंध

समाज की रचना मनुष्य ने की है, और समाज का आधार मानव क्रिया है ये- अन्त: क्रिया सदैव चलती रहेगी और शिक्षा की क्रिया के अन्तर्गत होती है इसीलिये शिक्षा व्यवस्था जहां समाज से प्रभावित होती है वहीं समाज को परिवर्तित भी करती है जैसे कि स्वतंत्रता के पश्चात्सबके लिये शिक्षा एवं समानता के लिये शिक्षा हमारे मुख्य लक्ष्य रहे हैं इससे शिक्षा का प्रचार-प्रसार हुआ और समाज का पुराना ढांचा परिवर्तन होने लगा। आध्यात्मिक मूल्यों के स्थान पर भौतिक मूल्य अधिक लोकप्रिय हुआ। सादा जीवन उच्च विचार से अब हर वर्ग अपनी इच्छाओं के अनुरूप जीना चाहता है। शिक्षा ने जातिगत व लैंगिक असमानता को काफी हद तक दूर करने काप्रयास किया। और ग्रामीण समाज अब शहरी समाजों में बदलने लगे और सामूहिक परिवारों का चलन कम हो रहा है। शिक्षा के द्वारा सामाजिक परिवर्तन और इसके द्वारा शिक्षा पर प्रभाव दोनों ही तथ्य अपने स्थान पर स्पष्ट है। **सैयदेन** ने इस बात को और स्पष्ट करते हुये लिखा है कि- इस समय भारत में शिक्षा बहुत नाजुक पर रोचक अवस्था में से होकर गुजर रही है, यह स्वाभाविक है क्योंकि समग्र रूप में राष्ट्रीय जीवन भी जिसका शिक्षा भी अनिवार्य अंग है, ऐसी ही अवस्था में से होकर गुजर रहा है।

शिक्षा का प्रारूप समाज के स्वरूप को बदल देती है क्योंकि शिक्षा परिवर्तन का साधन है। समाज प्राचीनकाल से वर्तमान तक निरन्तर विकसित एवं परिवर्तित होता चला आ रहा है क्योंकि जैसे-जैसे शिक्षा का प्रचार-प्रसार होता गया। इसने समाज में व्यक्तियों के परिस्थिति , दृष्टिकोण , रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाजों पर असर डाला और इससे सम्पूर्ण समाज के स्वरुप में एक नया परिवर्तन आया। शिक्षा समाज के व्यक्तियों को इस योग्य बनाती है कि वह समाज में व्याप्त समस्याओं, कुरीतियों गलत परम्पराओं के प्रति सचेत होकर उसकी आलोचना करते है, और धीरे-धीरे समाज में परिवर्तन होता जाता

है। शिक्षा समाज के प्रति लोगों को जागरूक बनाते हुये उसमें प्रगति का आधार बनाती है। जैसे शिक्षा पूर्व में वर्ग विशेष का अधिकार थी जिससे कि समाज का रूप व स्तर अलग तरीके का या अत्यधिक धार्मिक कट्टरता, रूढिवादिता एवं भेदभाव या कालान्तर में शिक्षा समाज के सभी वर्गों के लिये अनिवार्य बनी जिससे कि स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक प्रगति एवं सुधार स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। डयूवी ने लिखा है कि- शिक्षा में अनिश्चितता और अल्पतम साधनों द्वारा सामाजिक और संस्थागत उद्देश्यों के साथ-साथ, समाज के कल्याण, प्रगति और सुधार में रूचि का दूषित होना पाया जाता है।

1.3.10. सामाजिक परिवर्तन के मुख्य उपकरण के रूप में शिक्षा

सामाजिक परिवर्तन के मुख्य उपकरण के रूप में शिक्षा को निम्नलिखित बिन्दुओं के अनुसार समझा जा सकता है –

- ✓ **शिक्षा का समाज में स्थान** वैंकटरायप्पा ने शिक्षा व समाज के सम्बंध को स्पष्ट करते हुये लिखा है- ''शिक्षा समाज के बालकों का समाजीकरण करके उसकी सेवा करती है। इसका उद्‌देश्य - युवकों को सामाजिक मूल्यों विश्वासों और समाज के प्रतिमानो को आत्मासात करने के लिये तैयार करना और उनको समाज की क्रियाओं में भाग लेने के योग्य बनाना है।'' शिक्षा व्यक्ति व समाज के लिये यह कार्य करती है।
- ✓ **शिक्षा - व्यक्ति व समाज की प्रक्रिया का आधार -** शिक्षा को चाहे व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया कहें या सामाजिक प्रक्रिया इन दोनों में वह व्यक्ति व समाज से सम्बंध स्थापित करती है। शिक्षा समाज को गतिशील बनाती है, और विकास का आधार प्रदान करती है।
- ✓ **समाज के व्यक्तियों का व्यक्तित्व विकास -** शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यक्तित्व के विकास से तात्पर्य शारीरिक, चारित्रिक, नैतिक और बौद्धिक गुणों के विकास के साथ सामाजिक गुणों का विकास होना। विकसित व्यक्तित्व का बाहुल्य समाज की प्रगति का आधार बनता है। व्यक्ति को निर्जीव मानकर समाज उसका उपयोग नहीं कर सकता।
- ✓ **संस्कृति व सभ्यता के हस्तांतरण की प्रक्रिया -** शिक्षा समाज की संस्कृति एवं सभ्यता के हस्तांतरण का आधार बनती है। शिक्षा के इस कार्य के विषय में ओटवे महोदय ने लिखा है कि - ''शिक्षा का कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को अपने तरूण और शक्तिशाली सदस्यों को प्रदान करना है। पर असल में यह उसके साधारण कार्यो में से एक है।'' शिक्षा के इस कार्य पर टायलर ने लिखा है कि ''संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान विश्वास, कला, नैतिकता, प्रथा तथा अन्य योग्यतायें और आदतें सम्मिलित होती है, जिनको मनुष्य समाज के सदस्य के रूप शिक्षा से प्राप्त करता है।'' महात्मा गांधी ने शिक्षा के इस कार्य की आवश्यकता एवं प्रशंसा करते हुये लिखा है - ''संस्कृति ही मानव जीवन की आधार शिला और मुख्य वस्तु है यह आपके आचरण और व्यक्तिगत व्यवहार की छोटी सी छोटी बातों में व्यक्त होनी चाहिये।''

- ✓ **शिक्षा और सामाजिक नियंत्रण -** शिक्षा समाज का स्वरूप बदलकर उस पर नियंत्रण भी करती है अभिप्राय यह है कि व्यक्ति का दृष्टिकोण एवं उसके क्रियाकलाप समाज को गतिशील रखते हैं। शिक्षा व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर उसके क्रियाकलापों में परिवर्तन कर समूह मन का निर्माण करती है और इससे अत्यव्यवस्था दूर कर उपयुक्त सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करती है।
- ✓ **शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया के अंग के रूप में -** रासे के के अनुसार - ‘‘शिक्षा एक आधारभूत सामाजिक कार्य और सामाजिक प्रक्रिया का अंग है।’’ ओटवे ने शिक्षा को सामाजिक विज्ञान का रूप देते हुये स्पष्ट किया है- ‘‘शिक्षा समाज में होने वाली क्रिया है और इसके उद्देश्य एवं विधियां उस समाज के स्वरूप के रूप के अनुरूप होती है, जिनमें इसकी क्रिया होती है।’’
- ✓ **भावी पीढ़ी के प्रशिक्षण-** में शिक्षा समाज को प्रशिक्षित भावी पीढी़ प्रदान करती है, जो कि समाज का भविष्य होते हैं। ब्राउन लिखते है कि- ‘‘शिक्षा व्यक्ति व समूह के व्यवहार में परिवर्तन लाती है, यह चैतन्य रूप में एक नियंत्रित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में और व्यक्ति द्वारा समूह में परिवर्तन किये जाते हैं। शिक्षा समाज को सभ्य एवं सुसंस्कृत पीढ़ी प्रदान करती है।’’
- ✓ **शिक्षा समाज की प्रगति का आधार -** शिक्षा समाज के लिये वह साधन है, जिसके द्वारा समाज के मनुष्यों के विचारों, आदर्शों, आदतों और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर समाज की प्रगति की जाती है। एलवुड ने स्पष्ट किया है - ‘‘शिक्षा वह साधन है जिसमें समाज सब प्रकार की महत्वपूर्ण सामाजिक प्रगति की आशा कर सकता है।’’
- ✓ **समाज में परिर्वतन का आधार -** समाज का स्वरूप एवं प्रस्थिति में निरन्तर बदलाव की ओर अग्रसर होता है, और यह आवश्यक भी नही है, कि यह व्यक्ति और समाज के लिये हितकर हो इसमें शिक्षा इस बदलाव एवं व्यक्ति व समाज के मध्य सम्बधं स्थापित करते हुये सामंजस्य बैठाती है। एलवुड ने स्पष्ट किया है- ‘‘समाज का सर्वोत्तम परिवर्तन मानव के स्वभाव में परिवर्तन कर किया जा सकता है और ऐसा करने की सर्वोत्तम विधि शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।’’
- ✓ **शिक्षा के द्वारा समाज की स्थिरता -** शिक्षा समाज के मानव संसाधन को सुसंस्कृत बनाकर अपने व समाज के लिये उपयोग बनाती है। ओर्शिया ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुये कहा है कि ‘‘समाज की शिक्षा व्यवस्था व्यक्तियों का मानसिक, व्यावसायिक, राजनीतिक और कलात्मक विकास करके न केवल समाज के अधोपतन की रक्षा करती है, वरन उसको स्थिरता भी प्रदान करती है।’’

- ✓ **सामाजिक दोषो के सुधार का आधार -** शिक्षा में नैतिकता चारित्रिक एवं दार्शनिक पक्ष की प्रधानता होती है और शिक्षा अपनी व्यवस्था में भावी पीढ़ी को समाज में व्याप्त दोषों को इंगित कर उनमें सुधार हेतु समझ एवं मार्ग प्रदान करती है।
- ✓ **समाज की सदस्यता की तैयारी का आधार -** शिक्षा व्यक्ति को अपने व समाज के लिये उपयोगी बनाती है, प्रारम्भ में बालक परिवार का सदस्य होता है और उन्हें सामाजिक कर्तव्यों एवं नागरिकता के गुणों को विकसित कर उन्हें समाज के भावी सदस्य के रूप में तैयार करती है।

1.3.11. सारांश

आधुनिकीकरण एक विशेष प्रकार का सामाजिक परिवर्तन है जिसमें परम्परागत समाज, नए युग की नई चुनौतियों का उत्तर देने के लिए, आचरण के नए प्रतिमानों के विकास की ओर उन्मुख होता है।

भारतीय संविधान में अनेकों ऐसे उपबन्ध हैं जो प्राचीनता से नाता तोड़ कर आधुनिक विकास की ओर प्रवृत्त करते हैं। उदाहरणस्वरूप मौलिक अधिकारों की रूढ़ि एवं प्रथाओं पर अभिभाविता, अस्पृश्यता की समाप्ति, धर्म, प्रजाति, जाति एवं लिंग के आधार पर भेदभाव का निषेध, मानवों में बेगार एवं दुर्व्यापार पर रोक, धार्मिक अभ्यासों पर निर्बन्धन आदि। मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक तत्व आधुनिकता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

शिक्षा एक प्रगतिशील समाज के निर्माण में नींव कि तरह कार्य करती हैं। यह एक तरफ आधुनिकता के दरवाजे खोलती हैं लेकिन समाज को अपनी जड़ों से भी आबद्ध करती है।

सामाजिक परिवर्तन के एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में शिक्षा बालक के समाजीकरण कि प्रक्रिया से प्रारंभ होने से लेकर व्यक्ति के सामाजिक समायोजन तक की प्रक्रिया में प्रभावशाली साधन के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करता हैं।

1.3.12. अपना आकलन स्वयं करे (अभ्यास प्रश्न)

1. सामाजिक परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ?
2. सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण अवधारणाओं कि चर्चा कीजिये।
3. शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन में क्या संबंध हैं ?
4. शिक्षा किस प्रकार समाज के विकास में हस्तक्षेप करती है।

1.3.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

- रूहेला, एस.पी. (2014), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स; आगरा
- श्री निवास, एम.एन. (2004), आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन; नई दिल्ली
- शुक्ल, सुरेश चन्द्र एवं कृष्ण कुमार (2007) शिक्षा का समाजशास्त्रीय सन्दर्भ; ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
- ओड़, एल. के, (2004), शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि; राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
- सास्वत, अनुपम (2009) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार; संजय पब्लिकेशन्स, आगरा
- मुखर्जी एवं अग्रवाल (2006) सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन, भारतीय पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
- सिंह, जे.पी., (2010) सामाजिक परिवर्तन स्वरूप एवं सिद्धांत; शिल्पी पब्लिकेशन्स, दिल्ली

खंड – 2 शिक्षा एवं वैश्वीकरण

इकाई-1पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

2.1.0. उद्देश्य

2.1.1. प्रस्तावना

2.1.2. पश्चिमीकरण

2.1.3. आधुनिकीकरण

2.1.4. पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा

2.1.5. पाठसार/ सारांश

2.1.6. कठिन शब्दावली

2.1.7. अभ्यास- प्रश्न/ बोध- प्रश्न

2.1.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1.0. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. पश्चिमीकरण से अवगत हो सकेंगे।
2. आधुनिकीकरण से अवगत हो सकेंगे।
3. शिक्षा से अवगत हो सकेंगे।
4. पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा से अवगत हो सकेंगे।
5. पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा अंतर अनुषांगिक संबंध को समझ सकेंगे।
6. शिक्षा एवं शिक्षा संस्थानों की भूमिका को समझ सकेंगे।

2.1.1. प्रस्तावना

परिवर्तन व्यक्ति एवं समाज का महत्वपूर्ण अंग है। पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, शिक्षा, शासनप्रनाली आदि परिवर्तन के विभिन्न रुप है। व्यक्ति एवं समाज में बदलाव लाने में पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, शिक्षा, शासनप्रनाली आदि की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। आधुनिक तंत्रज्ञान के कारण समाज में बदलाव की गति एवं दिशा बदल गई। प्रगत देशों की मनोवृत्ती, दृष्टिकोण, मूल्यों आदि का स्वीकार अप्रगत देशों ने किया। विकसित समाज का अनुसरण करके अविकसित समाज ने अपने वर्तमान स्थिति में हेतुपूर्ण बदलाव किया। शाशन व्यवस्था एवं शिक्षा की पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका है।

2.1.2. पश्चिमीकरण (Westernization)

पश्चिमी राष्ट्रों की सामाजिक संरचना, मूल्य एवं सांस्कृतिक व्यवस्था द्वारा पुर्वीय राष्ट्रों की सामाजिक संरचना, मूल्य एवं सांस्कृतिक व्यवस्था पर हुए प्रभाव के उपरांत पुर्वीय राष्ट्रों में होनेवाली सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को पश्चिमीकरण कहा जाता है। अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि पश्चिमी देशों की सामाजिक संरचना, मूल्य एवं सांस्कृतिक व्यवस्था का प्रभाव भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान, ब्रम्हदेश आदि पुर्वीय देशों की सामाजिक संरचना, मूल्य एवं सांस्कृतिक व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है अथवा डाला जाता है। पश्चिमी देशों के अनुसार पुर्वीय देश अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में बदलाव करते है, जिससे सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया गतिमान होती है जो पश्चिमीकरण कहा जाता है। औद्योगिकीकरण, पूंजीवाद, वैज्ञानिकता, व्यक्तिवाद, लौकिकीकरण आदि तत्वों का प्रभाव पुर्वीय देशों पर पड़ता है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को पुर्वीय राष्ट्र रोक नहीं सकते है या उसके प्रभाव से विलग नहीं रह सकते।

पश्चिमीकरण का अर्थ (Meaning of Westernization) :

"पश्चिम के विकसित राष्ट्रों का पुर्वीय विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों पर पड़नेवाले प्रभाव की प्रक्रिया पश्चिमीकरण कहलाती है।"

प्रो. श्रीनिवास के अनुसार, "पश्चिमीकरण एक तटस्थ पद है - इसके साथ भला या बुरा का विचार अनिवार्य रुप से बंधा हुआ नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ की हम यह नहीं कह सकते कि पश्चिमीकरण एक अच्छा परिवर्तन या बुरा है।"

पश्चिमीकरण के लक्षण एवं विशेषताएँ (Charecteristics of Westernization) :

पश्चिमीकरण के निम्नांकित लक्षण एवं विशेषताएँ होती है -

1. तटस्थता

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया से होने वाले परिवर्तन नैतिक दृष्टीसे अच्छे या बुरे है यह स्पष्ट करना पश्चिमीकरण की प्रकिया में सम्मिलित नहीं होता है। नैतिक रूपसे यह तटस्थ अवधारणा है।

2. व्यापकता

धर्म, समाज, जाती, राजनीती, मूल्य, आदर्श, श्रद्धा, विश्वास, खान-पान, आचार-विचार, रहन-सहन, शिक्षा, साहित्य आदि भौतिक एवं अभौतिक स्थितियों में बदलाव पश्चिमीकरण की प्रक्रिया की सहायता से होता है। तात्पर्य, भौतिक एवं अभौतिक स्थिति को समाहित करनेवाली व्यापक अवधारणा है।

3. वैज्ञानिकता

नैतिक दृष्टी से यह तटस्थ अवधारणा होने के कारण इसे वैज्ञानिक अवधारणा कहा जाता है। पश्चिमीकरण के द्वारा घटित बदलाव का वस्तुनिष्ठ एवं विश्वसनीय विश्लेषण किया जा सकता है।

4. जटिलता एवं बहुस्तरीयता

मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर पश्चिमीकरण का प्रभाव हुआ है। साथ ही जीवन के कुछ क्षेत्र अधिक प्रभावित हुए है तो कुछ क्षेत्र कम प्रभावित हुए है। समाज के कुछ लोगोने भौतिक क्षेत्र को स्वीकृत किया है तो कुछ लोगोने अभौतिक क्षेत्रों को स्वीकृत किया है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव समाज के सभी क्षेत्र एवं भौगोलिक क्षेत्र पर समान रुपसे नहीं पड़ा है। अर्थात यह एक जटिल एवं बहुस्तरीय प्रक्रिया है।

5. चेतन एवं अचेतनता

भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण प्रक्रिया का प्रभाव चेतन एवं अचेतन रुप में पड़ा है। पश्चिमीकरण प्रक्रिया के तहत होने वाले कुछ बदलाव को चेतन मन से स्वीकृत किया है तो कुछ बदलाव को अचेतन मन से स्वीकृत किया है। सामाजिक सुधार, औद्योगिकीकरण, शिक्षा, वैज्ञानिकता का स्वीकार चेतन पश्चिमीकरण प्रक्रिया है, तो खान-पान, रहन-सहन, पोशाख आदि अचेतन पश्चिमीकरण प्रक्रिया का परिपाक है।

6. पारूप की वैभिन्यता

आझादी के पूर्व भारतीय समाज अंग्रेज, पोर्तुगाली एवं फ्रेंच समाज के संपर्क में आया। पश्चिमीकरण के संदर्भ में अंग्रजी समाज, पोर्तुगाली समाज, फ्रेंच समाज आदि प्रारुप माने जाते है। उक्त प्रारुपो में कुछ तत्व समान तो कुछ तत्व असमान पाए जाते है। यही पश्चिमीकरण की प्रारुपता की विभिन्नता है। ब्रिटिश प्रारुप के अधिकतम तत्व भारतीय समाज के पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में पाए जाते है।

पश्चिमीकरण एवं शिक्षा

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ ब्रिटिश शाशन काल में हुआ। भारत की आझादी के उपरांत भी पश्चिमीकरण की प्रक्रिया निरंतर चलती रही। सामाजिक संस्था, मूल्य, विचार, सामाजिक संरचना आदि में परिवर्तन होता है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में पश्चिमी देशों के लोगो के पोशाख, खान-पान आचार-विचार, साहित्य, विज्ञान-तकनीकी, शिक्षा, मूल्यों आदि का स्वीकार किया जाता है। राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संपर्क के कारण पश्चिमीकरण की प्रक्रिया गतिमान होती है। भारत की पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में इंग्लैंड, फ्रांस, पोर्तुगाल आदि पश्चिमी देशों का अधिक प्रभाव दिखता है। पश्चिमीकरण का एक सकारात्मक बदलाव सामाजिक सुधार में हुआ। जाती प्रथा की कट्टरता, विवाह, स्त्रियों की स्थिति आदि में सुधार हुआ। वैज्ञानिकता, शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता का उदय, सामाजिक एवं राजनैतिक नेतृत्व का विकास आदि पश्चिमीकरण प्रक्रिया का सकारात्मक प्रतिफल माना जा सकता है। पश्चिमीकरण के कारण जातीय भेदभाव का उन्मूलन करके

समानता मूल्यों का स्वीकार किया गया है। आंतरजातीय विवाह को मान्यता, बालविवाह पर प्रतिबंध, पुनर्विवाह की मान्यता, विवाह विस्छेद को मान्यता आदि बदलाव आए है। पश्चिमीकरण का प्रभाव परिवार की घटती सदस्य संख्या एवं संयुक्तता पर भी हुआ। स्त्रियों के कार्यक्षेत्र में वृद्धि होने लगी। सती प्रथा, बालविवाह, देवदासी प्रथा, छुआछुत, मानव बलि प्रथा, पर्दा पद्धति, कर्मकांड, अंधविश्वास आदि बुराईयों का प्रतिरोध होने लगा। सामाजिक एवं धार्मिक सुधारवादी आंदोलन के कारण समाज में आमूलचूल परिवर्तन होने लगा। विभिन्न शैक्षिक संस्थाओ का उदय एवं विकास हुआ। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण आधुनिक एवं सुधारवादी समाज के निर्माण का प्रारंभ हुआ। विभिन्न जाती, धर्म, पंथ, भाषा एवं क्षेत्र की विलगता को भुलाकर राष्ट्रभक्ति एवं राजनैतिक जागृति होने लगी। पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य भी अछुता नहीं रहा। पश्चिमीकरण के द्वारा प्रभावित शिक्षा के द्वारा स्वतंत्रता, उदारवाद, विज्ञानवाद, समानता, धर्मनिरपेक्षता आदि के आधार पर विचारों, आदर्शो एवं मूल्यों में बदलाव आया। पश्चिमीकरण का प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में भी दिखने लगा। परंपरागत एवं कुटीर उद्योग की जगह विशाल उद्योग ने लेना प्रारंभ किया। संचार साधनों के कारण राष्ट्रिय एवं अंतरराष्ट्रिय व्यापार में वृद्धि हुई। पश्चिमीकरण का सबसे अधिक सकारात्मक प्रभाव मानवी मूल्यों का विकास माना जा सकता है।

2.1.3. आधुनिकीकरण

आज के वर्तमान युग में हर व्यक्ति, समूह, समाज एवं संस्था आधुनिकता की और बढ़ रहे है। समाज के अधिकांश लोग शिक्षित होकर आधुनिक जीवन शैलीपर बल दे रहे है। समाज के अधिकांश व्यक्तियोंने आधुनिक व्यवहार प्रणालियों को अपने जीवन में अंगीकृत किया है। वर्तमान समाज ने तीव्र गति से आधुनिकीकरण का स्वीकार किया है। आधुनिकीकरण सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन से आये बदलाव का रुप है। आधुनिक सामाजिक मूल्यों तथा संरचनाओं को प्रसारित करने का प्रयास आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में किया जाता है। आधुनिकीकरण अपने भीतर उन लोगों की गतिविधियों और उत्पादन को समाहित करता है जो एक उभरते संपूर्ण औद्योगीकृत विश्व की नवीन आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों में पुराने होते जा रहे कला, वास्तुकला, साहित्य, धार्मिक विश्वास, सामाजिक संगठन और दैनिक जीवन के पारंपरिक रूपों को नवीन आधुनिक शैली में परिवर्तित कर रहे थे। औद्योगिक क्रांति से आये सभी बदलाव व उन्नति का प्रयोग कोई समाज करे तो वह आधुनिक समाज की श्रेणी में आएगा। आधुनिकीकरण अपनी व्यापक परिभाषा में, आधुनिक सोच, चरित्र, प्रथा है। वर्तमान सामाजिक संदर्भ में विभिन्न विचारकों के दृष्टिकोणसे आधुनिकीकरण का अर्थ समझने का प्रयास करते है।

आधुनिकीकरण का अर्थ (Meaning of Modernization) –

विभिन्न विचारकों ने आधुनिकीकरण का अर्थ स्पष्ट किया है जो निम्नवत है -

"औद्योगिकीकरण के साथ आने वाले सभी संरचनात्मक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को आधुनिकीकरण (Modernization) कहते है।"

- **लिण्डसे एवं बीच**

"आधुनिकीकरण मूलत: एक प्रक्रिया है, एक गति या बहाव है, जो परंपरागत या अपरंपरागत व्यवस्था से एक विशेष प्रकार की तकनीकी और उससे संबंधित सामाजिक संरचना, मूल्यों के झुकाव, अभिप्रेरणाओं और प्रतिमानों तक चलने वाला होता है।"

- **श्यामाचरण दुबे**

"आधुनिकीकरण का अर्थ उन संस्थाओं, प्रक्रियाओं और दृष्टिकोणों से है जो पिछली दो शताब्दियों में मुख्यत: पश्चिम में विकसित हुई है और जिनका पश्चिम के देशों द्वारा अनुकरण किया गया है।"

- **वाल डी. रस्ट**

"आधुनिकीकरण का अर्थ है- निरंतर तथा परिवर्तन करने वाली एक सामाजिक व्यवस्था और तकनीकी रुप से विकसित विश्व में रह पाने के लिए आवश्यक कुशलताओं का ज्ञान का होना।"

- **मुर, स्पेंगलर एवं शिल्स**

"आधुनिकीकरण एक क्रांतिकारी परिवर्तन है जो एक परंपरागत समाज को पश्चिम के विकसित, आर्थिक रुप से समृध्द और अपेक्षाकृत राजनैतिक रुप से आधिक स्थायी देशों की तकनीकी और उससे संबंध सामाजिक संगठन के स्वरुप में परिवर्तित कर देता है।"

- **विलियम बी. मुर**

"The country is more developed industrially only shows, to the less developed, the image of its own future."

- **Karl Marks**

"आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें परंपरागत ग्रामीण धार्मिक रुढ़िवादी समाज का रुपांतरण एक धर्म निरपेक्ष आधुनिक औद्योगिक नगरीय समाज में होता है।"

- ब्रिटानिका इनसाइक्लोपीडिया

"Modernzation is the current term for an old process the process of social change wherby less developed societies acquire charecteristics common to developed societies"

- इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ द सोशल सायन्सेस

आधुनिकीकरण के लक्षण एवं विशेषताएँ (Charecteristics of Modernization) :

भारत के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. श्यामाचरण दुबे के अनुसार आधुनिकता (Modernity) अथवा आधुनिक जीवन (व्यक्ति व समाज) की निम्नांकित विशेषताएँ होती है।

2 परानुभूति (Empathy)

3 मानसिक गत्यात्मकता (Psychic Mobility)

4 अधिक भाग लेना (High Partcipation)

5 लक्ष्यों की स्पष्टता (Interest Articulation)

6 लक्ष्यों का एकत्रीकरण (Interest Aggregation)

7 संस्थात्मक राजनैतिक प्रतियोगिता (Institutioalized Poltical Competation)

8 उपलब्धि अभिप्रेरणा (Achievement Motivation)

9 तर्कपूर्ण उद्देश्य और उनको पाने के साधनों का आकलन (Rational ends-means calculation)

10 धन, कार्य, बचत, जोखिम उठाने संबंधी नए दृष्टिकोण (New attitudes to wealth, work, saving and risk taking)

11 परिवर्तन की वांछनीयता और संभावना में विश्वास (Faith in the desirability and posibility of change)

12 सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक अनुशासन (Social, Economic and Poltical Descipline)

13 दूरस्थ व उच्च संतुष्टियों की पूर्ति को ज्ञान में रखते हुए निकटवर्ती या तुरंत की संतुष्टियों को टाल देने की क्षमता (Capacity to put off immediate and short-term satifaction for higher satisfactionin longer run)

14 उच्चस्तरीय प्रौद्योगिकी (Higher lavel of Technology)

15 उच्चस्तरीय व जटिल व्यवसायों वाली संस्थाएँ (Higher lavel complex institution)

16 सार्वजनिक शिक्षा, अंग्रेजी शिक्षा और पूर्व विकसित उच्चस्तरीय शिक्षा (Mass schooling and well developed higher education)

17 परिवर्तित नए संबंध (Changing new relations)

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया (Process of Modernization) :

कुछ विचारकों के अनुसार आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बदलाव की प्रक्रिया है। क्योंकि परिवर्तन की वांछित दिशा ही आधुनिकीकरण द्वारा निश्चित होती है। सामाजिक संरचना में बदलाव यह आधुनिकीकरण का प्रतीक माना जाता है। आधुनिकीकरण के आरंभ में परंपरागत प्रथा, परंपरा, मान्यता, संस्था, आदर्श आदि के प्रति असंतोष या विरोध किया जाता है। नई व्यवस्था, आदर्श, संस्था, विचारधारा, आहार-विहार, खान-पान आदि के प्रति आकर्षण बढ़ता है। नई व्यवस्था के प्रति आम

स्वीकृति बढ़ने लगती है। समाज में नए कार्य की प्रेरणा विकसित होती है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में समाज आशावादी बनता है। व्यक्ति भूतकाल में न रहकर वर्तमान के सहारे उज्वल भाविष्य हासिल करने की और बढ़ता है। समाज की विविध संस्थाओ एवं व्यवस्थाओं में परिवर्तन लाता है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, बौद्धिक आदि पहलुओं में आमूलचूल बदलाव लाता है। अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, बुआबाजी, व्रत-वैकल्य, अनिष्ट प्रथा आदि का त्याग कर विज्ञान प्रौद्योगिकी का स्वीकार करता है। समाज कृषि व्यवसाय से उद्योग एवं सेवा क्षेत्र की ओर बढ़ता है। सामाजिक गतिशीलता, उद्यमशिलता, शहरीकरण, पश्चिमीकरण का प्रचलन बढ़ता है। अंतरराष्ट्रिय सदभाव, मानवतावाद, विश्व कल्याण की भावना, न्याय, स्वतंत्रता, समानता आदि मूल्यों का आकर्षण बढ़ता है।

आधुनिकीकरण का स्वरुप एवं प्रकृति (Nature of Modernzation) :

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में समाज तकनीकी की ओर सन्मुख होता है एवं वैज्ञानिकता को प्रोत्साहित करता है। सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन की यह प्रक्रिया है। ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी आदि में बुनियादी बदलाव होता है। समाज भौतिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की ओर तेजीसे बढ़ता है। योगेंद्र सिंह का मत है कि समाज में जितनी तकनीकी उन्नति हो जाये व चाहे जितना भी स्वचालन हो जाये पर यदि किसी भी समाज का दृष्टिकोण वैज्ञानिक व धर्म निरपेक्ष ना हुआ और उसमें अपेक्षित संवेगों की कमी रही तब वह समाज आधुनिक नहीं माना जायेगा। आधुनिकीकरण में सामाजिक संरचना, मूल्यों की उन्मुखता, अनुप्रेरणाओं एवं संस्कृति में अपेक्षित बदलाव लाती है। समाज को प्रगति की ओर ले जाता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया समाज की संस्कृति को भी बदलाव की लपेट में लेती है, किसी भी पारंपरिक समाज के लिए यह प्रक्रिया चुनौतीपूर्ण होती है, संस्कृति में बदलाव उपसंस्कृति, पलट-संस्कृति, संस्कृति विलंबन जैसी स्थिति उत्पन्न करता है। आधुनिक समाज वैज्ञानिक एवं तकनीकी खोजों का अपने जीवन में उपयोग करता है। प्राकृतिक संपदा का पर्याप्त उपयोग आधुनिक समाज करता है।

आधुनिकीकरण का अर्थ पश्चिमीकरण एवं औद्योगीकरण कतई नहीं हो सकता। किन्तु पश्चिमीकरण एवं औद्योगीकरण सहायक हो सकता। औद्योगिकीकरण आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को दिशा एवं गति प्रदान करता है। औद्योगिकीकरण द्वारा किया गया आर्थिक विकास आधुनिकीकरण नहीं हो सकता। कृषि, शिक्षा एवं मनोरंजन आदि क्षेत्र में परिवर्तन लाता है। एतएव आधुनिकिकरण के द्वारा समाज में संपन्नता, प्रगतिशीलता, क्षमता एवं उद्योगशिलता को बढ़ावा देता है। आधुनिकीकरण प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से वैज्ञानिकता, ज्ञान, तर्क, तकनीकी पर आधारित रहता है। वैश्वीकरण की गति बढ़ने में आधुनिकीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए हागवेल्ट ने कहा है कि आधुनिकीकरण ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बढाया है।

समाजशास्त्री योगेंद्र सिंह के अनुसार आधुनिकरण की प्रक्रिया का स्वरुप एवं प्रकृति निम्नलिखित है-

- आधुनिकरण तर्कसंगत बुद्धिपरक संस्कृति संरचना पर सन्निकट होता है।
- वह द्योतक होता है तर्कसंगत आवृति का एवं वृहद् दृष्टिकोण का।
- आधुनिक चरित्र यदि संवेग पर प्रतिक्रिया देता है तब वह पराभुनूतिपरक संवेग होतें हैं न की संकुचनशील सोच युक्त संवेग।
- आधुनिकरण का मूल वैज्ञानिक प्रकृति व वैज्ञानिक दृष्टिकोण में है।
- इसका धनात्मक संबंध है समाज में वैज्ञानिक प्रकृति, तकनीकी कौशल व तकनीकी संसाधनों के प्रसारण से जितना ज्यादा तकनीकी कौशल, संसाधन व वैज्ञानिक प्रगति समाज में होगी उतना ज़्यादा आधुनिकरण उक्त समाज में होगा।
- जिस प्रकार संस्कृति उत्क्रांत होती है उस प्रकार आधुनिकरण का भी उत्क्रांत होता है व आधुनिकीकरण देश, काल एवं परिस्थिति के विषयांतर परिवर्तित होता व विकसित होता है।

आधुनिकीकरण एक जटिल प्रक्रिया है। विभिन्न विद्वानों के मतानुसार आधुनिकीकरण में एक से अधिक पहलू समाहित होते है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में मूल्य, अभिवृत्ति, मनोवृत्ती, दृष्टिकोण आदि में बदलाव होता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में समाज व्यवस्था में आतंरिक बदलाव होता है। समाज जीवन में वैज्ञानिक ज्ञान का प्रयोग किया जाता है। उद्योग में यंत्रो का उपयोग मनुष्य की तुलना में बढ़ता है। कृषि क्षेत्र में व्यापारी दृष्टिकोण को बढ़ावा मिलता है। समाज जीवन में धर्मनिरपेक्षता के तत्वों का स्वीकार किया जाता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में ग्रामीण समाज का शहरी समाज में स्थानांतरण होता है। आधुनिकीकरण का प्रभाव परिवार पर होता है। विभक्त परिवार का प्रचलन बढ़ता है। समाज एवं राष्ट्रिय जीवन में लोकशाही मूल्यों को स्वीकृत किया जाता है। स्वातंत्र्य, समता, न्याय, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि मूल्यों का स्वीकार किया जाता है। संचार माध्यम, प्रसार माध्यम के कारण समाज संपर्क बढ़ता है। जनसंख्या नियंत्रण के प्रयास किये जाते है। आधुनिक समाज का अनुसरण किया जाता है।

आधुनिकीकरण के अर्थ भिन्न-भिन्न संदर्भों में भिन्न हो जाते हैं, लेकिन वे सब मिलकर विकास और परिवर्तन की एक दिशा, स्थिति को मूर्त करते हैं। अक्सर आधुनिकीकरण को स्तरीय शिक्षा, प्रजातंत्र व धर्मनिरपेक्षता जैसे विचारादर्श, राष्ट्रवाद, कुशल नेतृत्व और नियामक शासन से जोड़कर देखा जाता है और माना जाता है कि वृत्यात्मक तब्दीली और मूल्य-पद्धति में परिवर्तन आधुनिक समाज, अर्थव्यवस्था और राज्य के निर्माण की पूर्व शर्त है। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप औद्योगीकरण के साथ ही इस अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होता है, परिणामस्वरूप समाज व्यवस्था बदलती है और उसके समानान्तर मूल्य व्यवस्था और जीवन-दर्शन में संक्रांति आ जाती है। तात्कालिक और ऊपरी दृष्टि से यह केवल एक आर्थिक प्रक्रिया नज़र आती है, लेकिन अपने गहन एवं संश्लिष्ट अर्थों में यह जीवन की अंतर्बाह्य संरचना के परिवर्तन की प्रक्रिया है। गाँवों का शहरीकरण या गाँव का शहर में स्थानांतरण सिर्फ ऊपरी रहन-सहन का नहीं, वरन् सारे आचार-विचार, दृष्टि और अनुभूति का परिवर्तन हो जाता है। इस दृष्टि से शहरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण अन्योन्याश्रित माने गए हैं।

अर्थशास्त्रियों के लिए आधुनिकीकरण का अर्थ है: मनुष्य द्वारा तकनीकी ज्ञान का प्रयोग। 'हाथ के स्थान पर मशीन द्वारा वह प्राकृतिक साधनों का उपयोग कर उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति करता है।' समाजशास्त्रियों या सामाजिक नृतत्वशास्त्रियों के लिए आधुनिकीकरण अवकलन की प्रक्रिया -प्रोसेस ऑफ डिफ्रेन्शियेशन है जो आधुनिक समाज का लक्षण कहा जाता है। उन्होंने उन पद्धतियों की खोज की जो नयी सामाजिक संरचना के उदय और नयी ज़िम्मेदारियों को वहन कर सकने में सक्रिय होती है। नये पेशों और धंदो का उदय नयी और संश्लिष्ट शिक्षा द्वारा सामाजिक संरचना में अवकलन या नये समाज के उदय की प्रक्रिया को ही वे आधुनिकीकरण की प्रक्रिया कहते हैं। राजनीतिशास्त्री आधुनिकीकरण की चर्चा करते हुए उन प्रणालियों का ज़िक्र करते हैं जिनके द्वारा शासन, परिवर्तन और नवीनीकरण की अपनी सामर्थ्य में वृद्धि करता है ताकि उसकी नीतियाँ, सामाजिक कल्याण के हित में हो। इस प्रसंग में प्रजातंत्र को आधुनिक शासन प्रणाली कहा जाता है।

सामाजिक एवं भौतिक घटनाओं का तार्किक विश्लेषण कार्यकारणसंबंध के आधार पर स्वीकार करना बौद्धिक दृष्टी से आधुनिकीकरण है। सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, नव सामाजिक मूल्यों का स्वीकार, परिवार की संरचना में बदलाव, विवाह पद्धति में बदलाव आदि सामाजिक दृष्टी से आधुनिकीकरण है। सत्ता का विकेंद्रीकरण, स्वतंत्रता, लोकतंत्र का विकास, अधिकार एवं कर्तव्य के जागरुकता आदि राजनैतिक आधुनिकीकरण है। सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का विकास सांस्कृतिक क्षेत्र का आधुनिकीकरण है। पाश्चात्य विज्ञान एवं साहित्य की शिक्षा प्रदान करना शिक्षा क्षेत्र का आधुनिकीकरण है।

तात्पर्य, तार्किक विश्लेषण कार्यकारणसंबंध के आधार पर स्वीकार करना, सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि, नव सामाजिक मूल्यों का स्वीकार, परिवार की संरचना में बदलाव, विवाह पद्धति में बदलाव, सत्ता का विकेंद्रीकरण, स्वतंत्रता, लोकतंत्र का विकास, अधिकार एवं कर्तव्य के जागरुकता, सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का विकास, पाश्चात्य विज्ञान एवं साहित्य की शिक्षा प्रदान करना आदि आधुनिकीकरण में सम्मिलित है।

आधुनिकीकरण एवं शिक्षा के आयाम (Aspects of Education and Modernzation) :

यह स्पष्ट है की समाज को आधुनिक बनाने में एक आधारभुत एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा आधुनिकीकरण कराती है एवं स्वयं भी आधुनिक बनती है। आधुनिकीकरण यह शिक्षा और समाज की व्यवस्थाओं के अंत:क्रियाओं का प्रतिफल है। राष्ट्रिय शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार शिक्षा, आधुनिकीकरण एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के संबंध में आधारभूत तत्व निम्नांकित है-

1. **ज्ञान का विस्फोट -**

ज्ञान में दिन प्रतींदिन हो रही बढ़ोतरी के कारण ज्ञान का विस्तार हो रहा है। नावनविन शोध के कारण ज्ञान का प्रस्पोट हो रहा है। ज्ञान के विस्तार के कारण समाज के मूल्य, आदर्श, उपव्यवस्थाओं में परिवर्तन हो रहा है। यह परिवर्तन आधुनिकीकरण की ओर समाज को ले जा रहा है। शिक्षा में नवीनीकरण की

प्रक्रिया समाज में नवीनीकरण की प्रक्रिया को गतिमान करती है जिससे आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अधिक गतिमान होती है।

2. सामाजिक परिवर्तन में होनेवाली जल्दबाजी -

ज्ञान के प्रस्पोट के कारण समाज में परिवर्तन होता है। समाज की आकांक्षा एवं आवश्यकता के अनुसार शिक्षा को स्वयं में परिवर्तन करना अनिवार्य होता है। समाज की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा को भी जल्दी- जल्दी आधुनिक बनाना आवश्यक है। आधुनिक समाज की आवश्यकता एवं आकांक्षा के अनुसार शिक्षा नीतियों में बदलाव लाना जरुरी होता है। लोकतांत्रिक भारतीय समाज की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक आदि क्षेत्र की आवश्यकता की पूर्ति हेतु शिक्षा में नवीनीकरण का स्वीकार करना अनिवार्य है। अभिवृत्ति, अभिरुचि, तर्क क्षमता, जिज्ञासा, आदर्श मूल्य, नेतृत्व क्षमता, निर्णय क्षमता, आधुनिक शिक्षण- प्रशिक्षण आदि उद्देश्यों पर आधारित नवीनतम शिक्षा व्यवस्था का निर्माण करना आधुनिकीकरण के निर्माण के लिए आवश्यक है।

3. शीघ्र उन्नति की आवश्यकता -

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का आरंभ एवं पूर्ति के दरम्यान जो संक्रमणकाल होता है वह अधिक महत्वपूर्ण होता है। संक्रमणकाल में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करना आवश्यक है। संक्रमणकाल में पारंपारिकता नवीनीकरण पर हावी हो सकता है। राष्ट्रिय शिक्षा आयोग के अनुसार संक्रमणकालिन समस्याओं का समाधान के लिए गति से नवीनीकरण का क्रियान्वयन करना आवश्यक है।

आधुनिकीरण एवं भारतीय संविधान (Indian Constitution and Modernzation) :

भारतीय संविधान भारतीय आधुनिकीकरण का शुभारंभ है। भूतकालीन आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आदि क्षेत्र में परंपरागत व्यवस्था को नवीनीकरण के लिए दिशा एवं गति प्रदान की है। भारतीय संविधान का निर्माण आधुनिक भारत के निर्माण के लिए कीया गया है। भारतीय संविधान आधुनिकीकरण की आधारशिला है। भारतीय संविधान की उद्देशिका नवसमाज के निर्माण में नए मूल्यों के विकास का प्रारुप है। सार्वभौमत्व, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य, न्याय, स्वतंत्रता, समता, बंधुता आदि मूल्यों का स्वीकार भारतीय संविधान की द्वारा किया गया है। संविधान की उद्देशिका संविधान का आईना है। उद्देशिका में सम्मिलित मुल्योंपर संविधान का निर्माण किया गया। भारतीय संविधान आधुनिक भारतीय समाज को सार्वभौमत्व प्रदान करता है। आधुनिक समाज की संरचना समाजवादी तत्वों के आधारपर करना चाहता है। भारतीय समाज बहुधर्मीय, बहुभाषीय, बहुपंथीय, बहुक्षेत्रीय होने के कारण किसी एक पंथ या धर्म को विशेष स्थान न देकर सभी धर्मोको समानता प्रदान करता है। इस हेतु भारत को एक धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था के रुप में ढलना चाहता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का स्वीकार किया है। लोकतंत्र का स्वीकार करते हुए भारत ने राजेशाही, सरंजामशाही का त्याग कर दिया था। नव समाज के निर्माण के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समता, बंधुता आदि मूल्यों का स्वीकार किया गया है।

- **सार्वभौमत्व :**

1947 से पूर्व भारत ब्रिटिश शासन के अधीनस्थ था। ब्रिटिशों ने 150 वर्ष तक भारत पर शासन किया। भारतीय जनता का आंदोलन एवं वैश्विक परिस्थिति का परिणाम भारत को आझादी प्राप्त हुई। आझादी के उपरांत भारत सार्वभौम बना। यह नव समाज की निर्माण का प्रथम पायदान था। भारत का शासन अब भारत सरकार द्वारा किया जायेगा। भारतीय संविधान आधुनिक भारतीय समाज को सार्वभौमत्व प्रदान करता है। इससे आधुनिकीकरण को बढ़ावा मिला है।

- **समाजवादी :**

समाज के सभी वर्गों के लिए समान समाज व्यवस्था का निर्माण करना समाजवाद कहलाता है। समाज के अंतिम वर्ग की उन्नति का दायित्व शासन स्वीकारता है। यह नव समाज एवं आधुनिकीकरण में सहायक हुआ।

- **धर्मनिरपेक्ष :**

भारतीय समाज बहुधर्मीय, बहुभाषीय, बहुपंथीय, बहुक्षेत्रीय होने के कारण किसी एक पंथ या धर्म को विशेष स्थान न देकर सभी धर्मोको समानता प्रदान करता है। इस हेतु भारत को एक धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था के रुप में ढलना चाहता है। धर्म निरपेक्षता के तत्वों के स्वीकार के उपरांत धर्म से संबंधित अनेक बदलाव आये। जो नव समाज बनाने में एवं आधुनिकीकरण में सहायक बने।

- **लोकतंत्र :**

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का स्वीकार किया है। लोकतंत्र का स्वीकार करते हुए भारत ने राजेशाही, सरंजामशाही का त्याग कर दिया था। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र माना जाता है। धर्म, पंथ, जाति, वर्ग, क्षेत्र, जन्मस्थान, लिंग आदि के संदर्भ बदल गए। नव समाज में सभी के संदर्भ में समानता का प्रारंभ हुआ।

- **गणराज्य:**

आझादी के बाद भारत गणराज्य बना। ब्रिटिश हुकूमत की समाप्ति के उपरांत भारतीय जनता का शासन लोकतंत्र की माध्यम से आरंभ हुआ। भारतीय जनता विकास की ओर बढ़ने लगी। आधुनिक शिक्षा के कारण आधुनिकीकरण में बढ़ोत्तरी हुई।

- **न्याय:**

भारतीय संविधान ने समाज के सभी वर्गों के लिए समान न्याय तत्वों का स्वीकार किया। धर्म, पंथ, जाति, वर्ग, क्षेत्र, जन्मस्थान, लिंग आदि का भेद समाप्त करने का ऐलान किया। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय प्रधान करने का विश्वास भारतीय संविधान द्वारा प्राप्त हुआ। न्यायालय के सामने सभी समान है।

- **स्वतंत्रता:**

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारतीय समाज को विकास की स्वतंत्रता प्राप्त हुई। 150 वर्षो की गुलामी ख़त्म हुई। विचार की अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रदान की गई। यह आधुनिकीकरण के लिए महत्वपूर्ण है।

- **समता:**

धर्म, पंथ, जाति, वर्ग, क्षेत्र, जन्मस्थान, लिंग आदि का भेद समाप्त कर समता प्रस्थापित करने की व्यवस्था की है। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक क्षेत्र में भेदभाव को ख़त्म कर दिया। प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान की गई। आधुनिकीकरण के निर्माण में समता अधिक महत्वपूर्ण है।

- **बंधुता:**

धर्म, पंथ, जाति, वर्ग, क्षेत्र, जन्मस्थान, लिंग आदि का भेद अमान्य किया गया। सभी नागरिकों में बंधुता की भावना का प्रसार- प्रचार का मूल्य स्वीकार किया गया। व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता का स्वीकार किया गया। आधुनिक समाज की नई व्यवस्था में बंधुता का मूल्य महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

- **मौलिक आधिकार :**

भारतीय संविधान के भाग 3 (धारा-12 से 35), राज्य के नीति निदेशक तत्व (धारा 36 से 51), भाग 4 क (धारा 51) में मूलभत अधिकार के संदर्भ में प्रावधान किया गया है। न्याय की समानता, सभी प्रकार के भेदभाव का अंत, अवसरों की समानता, विचार एवं अभिव्यक्ति स्वतंत्रता, व्यवसाय की स्वतंत्रता, मानव व्यापार पर प्रतिबंध, बाल मजदूरी पर प्रतिबंध, अल्पसंख्यको की शिक्षा एवं संस्कृति को संरक्षण आदि का प्रावधान भारतीय समाज के आधुनिकीकरण के लिए सहायक सिद्ध हुआ।

- **राज्य के नीति निदेशक तत्व:**

लोककल्यानकारी शासन व्यवस्था, समान न्याय एवं निशुल्क न्यायिक सहायता, सत्ता का विकेंद्रीकरण, शिक्षा का सार्वभौमिकरण, वंचित जाती- जनजाति के लिए विशेष प्रावधान, स्वास्थ्य योजनाओं की व्यवस्था, पर्यावरण संरक्षण, आंतरराष्ट्रिय शांति एवं सुरक्षा आदि राज्य के नीति निदेशक तत्व में सम्मीलित है। यह नवसमाज के निर्माण के लिए आधार बने।

- **मिश्र अर्थव्यवस्था:**

आधुनिक समाज की संरचना समाजवादी तत्वों के आधारपर करना चाहता है। विश्व में साम्यवाद एवं पूंजीवाद यह दो विचारधारा प्रचलित थी। अपने देश की परिस्थिति के अनुसार भारतीय राजनीतिज्ञों ने साम्यवाद एवं पूंजीवाद के उपयुक्त गुणों का स्वीकार किया। इस व्यवस्था को मिश्र अर्थव्यवस्था के नाम से जाना जाता है।

उक्त के आधार पर भारतीय समाज की अभिवृत्ति एवं मानसिकता का विकास आधुनिकीकरण के संदर्भ में किया गया।

आधुनिकीकरण में शिक्षा की भूमिका (Role of education in Modernzation) :

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में अनुकरण एवं अनुपालन की प्रक्रिया है। वास्तव में यह दृष्टिकोण में बदलाव लाने की पक्रिया होने के कारण आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय शिक्षा आयोग ने आधुनिकीकरण पर बहुत बल दिया था। शिक्षा आयोग के अनुसार भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षा कार्यक्रम में सुधार करना आवश्यक है। आधुनिक विश्व की चुनौतियों का सामना करने में शिक्षा को समर्थ बनाना होगा। राष्ट्र को आधुनिक बनाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका को समझते हुए 1986 में राजीव गांधी ने देश की नयी शिक्षा नीति का निर्माण करवाया। राष्ट्र को आधुनिक बनाने में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। समाजीकरण की प्रक्रिया में शिक्षा की अहम् भूमिका होती है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में निर्माण हुए बाधक तत्वों को दूर करने का कार्य शिक्षा द्वारा किया जा सकता है। राष्ट्र की आधुनिक विचारधारा का विकास शिक्षा की सहायता से होता है। राष्ट्रिय समस्या की तरफ देखने का नजरिया बदला सकते है। शिक्षा के द्वारा आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त बनाता है।

उद्योग, व्यापार, प्रबंधन, राजनीती, प्रशासन, शिक्षा, समाज आदि क्षेत्र में नेतृत्व का शिक्षा द्वारा निर्माण आधूनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करता है। आधुनिक बनने की प्रेरणा शिक्षा के द्वारा प्राप्त होती है। शिक्षा के द्वारा जिज्ञासा का निर्माण कर आधुनिकीकरण की ओर बढ़ाया जा सकता है। श्रद्धा, दृष्टिकोण, खान-पान, आचार-विचार. मूल्य, परंपरा आदि में बदलाव होते-होते आधुनिकीकरण होता है। वैज्ञानिक श्रद्धा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आधुनिक खान-पान, नव आचार-विचार, आधुनिक मूल्यों का स्वीकार किया जाता है। आधुनिकीकरण के लिए अनिवार्य जागृति, मानसिकता, अभिवृत्ति, कुशलता, प्रवृत्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास शिक्षा के द्वारा किया जाता है। शिक्षा के द्वारा आधुनिकीकरण के प्रति आस्था विकसित की जाती है जो आधुनिकीकरण के लिए महत्वपूर्ण है। आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक नई तकनीक, कौशल, प्रशिक्षण की व्यवस्था शिक्षा के द्वारा निर्माण की जाती है। नवाचारों का स्वीकार, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

प्रो. श्यामाचरण दुबे के अनुसार विकास के संदर्भ में संचार वाहन और शिक्षा के समाजीकरण, निगरानी, सामान्य सहमति का निर्माण, महत्वाकांक्षाओं को उभारना, ध्यान केंद्रीकरण, मानसिक क्षितिजों को प्रसारित करना, नये दृष्टिकोण और मूल्यों का निर्माण, नवाचारों में रुचि उत्पन्न करना, प्रयोगीकरण को प्रोत्साहित करना, शिक्षण कुशलताएँ आदि कार्य होते हैं। प्रो. दुबे के अनुसार, ''शिक्षा आधुनिक व्यक्तित्व (Modernizers) का ही निर्माण नहीं करती, बल्कि वह परंपरावादियों (Traditionalists) को भी बनाती है।''

आधुनिकीकरण के प्रभाव से शिक्षा का क्षेत्र अधिक प्रभावित हुआ है। वर्तमान में शिक्षा प्रदान करने के लिए आधुनिक तकनीकी साधनों एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। शैक्षिक कार्यक्रम एवं क्रियाकलापों में आधुनिक तकनीकी का प्रभावशाली उपयोग किया जा रहा है। आधुनिक तकनीक एवं नवनविन विधाओं के कारण वर्तमान में शिक्षक केंद्रित न रहकर विद्यार्थी केंद्रित बनी है। रेडियों,

टेलिव्हिजन, प्रोजेक्टर, टेपरिकार्डर, इंटरनेट आदि के बढ़ते उपयोग के कारण विद्यालय एवं कक्षा का वातावरण अधिगम सुलभ हुआ है। आधुनिक संचार साधनों के कारण शिक्षा में क्रांति का संचार किया है। सूचना एवं संचार तकनीकी के फलस्वरुप शिक्षा में अमुलचुल परिवर्तन आया है। आधुनिकीकरण को संभालने के लिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी तज्ञों का निर्माण करना शिक्षा का दाईत्व है।

आधुनिकीकरण करने में भारतीय शिक्षा की सफलताएँ :

भारतीय समाज का आधुनिकीकरण करने में शिक्षा व्यवस्था ने निम्नवत सफलताएँ हाशिल की है -

- शिक्षा संस्थानों के द्वारा देश का आधुनिकीकरण किया जा रहा है।
- भारत की IIT संस्थाओं में से अत्यंत कुशल और प्रगतिशील तकनीकी विशेषज्ञों को विकसित किया जा रहा है।
- भारत के विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ विदेशों में कुशलता से कार्य कर, धनार्जन तथा ख्याति प्राप्त कर रहे हैं।
- विभिन्न देशों के विद्यार्थीयों को संचार साधनों की सहायता से भारतीय शिक्षक एवं ट्यूटर उन्हे पढ़ा रहे हैं। यह भारतीय शिक्षा की आधुनिकता का एक उत्तम प्रमाण है।

आधुनिकीकरण के निर्माण में बाधाएँ (Obstacals in constrcation of Modernzation):

परंपरावादिता आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की मुख्य बाधा है। सामाजिक बदलाओं को समाज विरोधी बताते हुए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में बाधा निर्माण कर सकते है। आधुनिकीकरण में आनेवाली बाधाओं को प्रतिगामी शक्ति के रुप में देखा जाता है। कुछ समाजशास्त्रिय के अनुसार धर्म आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का बाधक तत्व मानते है। कुछ विद्वान चेतना के अभाव को प्रमुख बाधा मानते है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया परिवर्तन की प्रक्रिया है। किन्तु समाज में परिवर्तन सफल न होने हेतु प्रतिगामी शक्तियां कार्यरत होती है जो आधुनिककरण की प्रक्रिया की गति धीमी करती है। परंपरागत व्यवस्था से जकड़े हुए समाज की मनोवृत्ती आधुनिकीकरण दिशा को प्रभावित करती है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में निम्नांकित बाधाएँ आती है –

1. उदासीनता :

समाज के कुछ लोग आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को स्वीकारना ही नहीं चाहते। स्थायी व्यवस्थाओं में बदलाव लाने के प्रति उदासीन रहते है। सामाजिक परिवर्तन में एक वर्ग निष्क्रिय रहकर बाधाएँ उत्पन्न करता है। इस कारनवश आधुनिकीकरण की प्रक्रिया धीमी होती है।

2. नवीनता के प्रति संदेह :

समाज में होनेवाले परिवर्तन अपने हित में है या नहीं इसके प्रति उनके मन में संदेह रहता है। वह वर्ग आधुनिकीकरण के प्रति उदासीन तो नहीं रहता किन्तु यथास्थिति रखना चाहता है।

3. परंपराओं के प्रति मोह :

समाज का कुछ हिस्सा परंपरासे इतना जुड़ा रहता है की उसे परंपरा में बदलाव मान्य नहीं होता। समाज का वह हिस्सा उसी परंपरागत जीवन में खुश रहता है। वह आधुनिकीकरण में संम्मिलित नहीं होते।

4. अंधविश्वास :

परंपरागत अंधविश्वासों से जकड़े हुए वर्ग को सुधार एक संकट की समान लगता है। आधुनिकीकरण को वह एक संकट की रुप में देखते है। वह आधुनिकीकरण का स्वीकार नहीं करते।

5. ज्ञान का अभाव :

ज्ञान का अभाव यह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का सबसे बड़ा बाधक तत्व है। ज्ञान के अभाव के कारण सुधार का अस्वीकार करते है। नई व्यवस्था को अमान्य करते है। इस हेतु समाज में शिक्षा का सार्वभौमिकरण करना आवश्यक है।

6. निजी स्वार्थ :

जिन लोगो का पुरानी व्यवस्था से लाभ होता है वह लोग आधुनिकता का अस्वीकार करते है। नयापन का स्वीकार उनके हितमे न होने के कारण विरोध करते है। निजी स्वार्थ के कारण आधुनिकीकरण को क्रियान्वयन में बाधा निर्माण करते है।

7. आर्थिक अभाव :

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से नई तकनीक, कौशल, यंत्र, उपकरण, ज्ञान आदि का विकास होता है। किन्तु गरीबी के कारण उक्त नवाचारों का लाभ नहीं लिया जा सकता है। आर्थिक अभाव के कारण आधुनिकीकरण का प्रभावशाली ढंग से लाभ नहीं उठा सकते है। गरीबी-अज्ञान-गरीबी यह दृष्टचक्र को बाधित करना आवश्यक है।

8. भौगोलिक कारण :

भौगोलिक अथवा प्राकृतिक मर्यादा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण बाधा है। ज्ञान, कौशल, तंत्र, तकनीक आदि नवाचार के प्रचार एवं प्रसार में भौगोलिक मर्यादा आती है। दूरदराज के क्षेत्र में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण बाधा है। इस कारण आधुनिकीकरण की गति धीमी होती है।

9. दूरदृष्टि का अभाव :

अज्ञान के कारण समाज में दूरदृष्टि का अभाव दीखता है। समाज में आधुनिकीकरण के प्रति चेतना के अभाव के कारण प्रमुख बाधा है।

10. राजनैतिक अस्थिरता :

राष्ट्र की राजनैतिक अस्थिरता आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की प्रमुख बाधा है।

11. धर्म :

कुछ समाजशास्त्रिय के अनुसार धर्म आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का बाधक तत्व है।

12. चेतना का अभाव :

कुछ विद्वान चेतना के अभाव को प्रमुख बाधा मानते है।

13. परंपरागत मानसिकता :

समाज की परंपरागत मानसिकता नई व्यवस्था का अस्वीकार करती है। समाज की नई व्यवस्था का स्वीकार करना पारंपरिक समाज को संभव नहीं है।

14. प्रतिगामी शक्तियाँ :

निजी स्वार्थ, आर्थिक- सामाजिक स्थितियां, राजनैतिक अस्थिरता आदि आधुनिकीकरण की प्रतिगामी शक्तियां है।

समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरु होने के उपरांत गति धीमी तो हो सकती है किन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बंद नहीं हो सकती। शिक्षा का सशक्त माध्यम आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में आनेवाली बाधाओं को दूर करता है एवं उचित दिशा एवं गति प्रदान कर सकता है। आधुनिकीकरण शिक्षा का स्वाभाविक एवं प्रगतिशील कार्य है।

2.1.4. पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा

पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण एकसमान प्रकिया नहीं है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा प्रभाव डाला जाता है या पड़ता है, किन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पर विश्व की सभी आधुनिक राष्ट्रों का प्रभाव पड़ता है। जैसे- पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि पश्चिमी देशों का पुर्वीय देशों पर प्रभाव पड़ता है किन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में पश्चिमी देशों के साथ-साथ विश्व के सभी आधुनिक देशों का प्रभाव पड़ता है। जिसमे जपान, चायना, रशिया आदि पुर्वीय देश भी सामिल है। शिक्षा पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने साथ-साथ स्वयं शिक्षा भी प्रभावित होती है। आधुनिकीकरण से शिक्षा की निरंतर प्रगति होती है।

आधुनिकीकरण पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है। यह आधुनिक अभिवृत्ति एवं मानसिकता का परिणाम है। राष्ट्रिय शिक्षा आयोग के अनुसार भारतीय समाज जब तक शिक्षित नहीं बनता तब तक आधुनिक नहीं बन सकता। राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकता। आधुनिक समाज के निर्माण की चुनौतियों का स्वीकार नहीं कर सकता। बुद्धिजीवी वर्ग ही समाज में सकारात्मक बदलाव ला सकते है। आधुनिक विश्वविद्यालय का निर्माण एवं शिक्षा व्यवस्था आधुनिकीकरण को गति एवं दिशा प्रदान कर सकती है। राष्ट्रिय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार आधुनिकीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जाएगी और पुरानापन हटाया जायेगा।

2.1.5. पाठसार / सारांश :

प्रो. श्रीनिवास के अनुसार, "पश्चिमीकरण एक तटस्थ पद है - इसके साथ भला या बुरा का विचार अनिवार्य रुप से बंधा हुआ नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ की हम यह नहीं कह सकते कि पश्चिमीकरण एक अच्छा परिवर्तन या बुरा है।" सामाजिक संस्था, मूल्य, विचार, सामाजिक संरचना आदि में परिवर्तन होता है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया में पश्चिमी देशों के लोगो के पोशाख, खान-पान आचार-विचार, साहित्य, विज्ञान-तकनीकी, शिक्षा, मूल्यों आदि का स्वीकार किया जाता है। जाती प्रथा की कट्टरता, विवाह, स्त्रियों की स्थिति आदि में सुधार हुआ। वैज्ञानिकता, शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता का उदय, सामाजिक एवं राजनैतिक नेतृत्व का विकास आदि पश्चिमीकरण प्रक्रिया का सकारात्मक प्रतिफल माना जा सकता है। पश्चिमीकरण के कारण जातीय भेदभाव का उन्मूलन करके समानता मूल्यों का स्वीकार किया गया है। आंतरजातीय विवाह को मान्यता, बालविवाह पर प्रतिबंध, पुनर्विवाह की मान्यता, विवाह विस्छेद को मान्यता आदि बदलाव आए है। पश्चिमीकरण का प्रभाव परिवार की घटती सदस्य संख्या एवं संयुक्तता पर भी हुआ। स्त्रियों के कार्यक्षेत्र में वृद्धि होने लगी। सती प्रथा, बालविवाह, देवदासी प्रथा, छुआछुत, मानव बलि प्रथा, पर्दा पद्धति, कर्मकांड, अंधविश्वास आदि बुराईयों का प्रतिरोध होने लगा। पश्चिमीकरण के द्वारा प्रभावित शिक्षा के द्वारा स्वतंत्रता, उदारवाद, विज्ञानवाद, समानता, धर्मनिरपेक्षता आदि के आधार पर विचारों, आदर्शो एवं मूल्यों में बदलाव आया। पश्चिमीकरण का सबसे अधिक सकारात्मक प्रभाव मानवी मूल्यों का विकास माना जा सकता है।

समाज के मूल्यों, आदर्शों, विचारों, रीति-रिवाजों, जीवन-शैली आदि जीवन के विभिन्न आयामों को परिवर्तित कर वर्तमान स्वरुप के अनुसार विकसित करने की प्रक्रिया आधुनिकीकरण कहलाती है। पारंपारिक समाज को आधुनिक समाज में परिवर्तित करने की प्रक्रिया आधुनिकीकरण है। औद्योगिकीकरण, विज्ञान- प्रौद्योगिकी, नवीनीकरण आदि परिप्रेक्ष्य में आधुनिकीकरण को लिया जाता है। समाज के विभिन्न पहलुओं में आनेवाला नयापन आधुनिकीकरण कहलाता है। आधुनिक शिक्षण मशीन का उपयोग, महिलाओं की शिक्षा, स्त्री जन्मदर में वृद्धि, छुआछुत का अंत आदि आधुनिकीकरण के उदाहरण है। तात्पर्य जीवन के विभिन्न अंगो में आनेवाले बदलाव को आधुनिकीकरण कहा जा सकता है।

2.1.6. कठिन शब्दावली :

पश्चिमीकरण -

प्रो. श्रीनिवास के अनुसार, "पश्चिमीकरण एक तटस्थ पद है - इसके साथ भला या बुरा का विचार अनिवार्य रुप से बंधा हुआ नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ की हम यह नहीं कह सकते कि पश्चिमीकरण एक अच्छा परिवर्तन या बुरा है।"

"पश्चिम के विकसित राष्ट्रों का पुर्वीय विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों पर पड़नेवाले प्रभाव की प्रक्रिया पश्चिमीकरण कहलाती है।"

आधुनिकीकरण -

"औद्योगिकीकरण के साथ आने वाले सभी संरचनात्मक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को आधुनिकीकरण (Modernization) कहते है।"

- **लिण्डसे एवं बीच**

"आधुनिकीकरण मूलत: एक प्रक्रिया है, एक गति या बहाव है, जो परम्परागत या अपरम्परागत व्यवस्था से एक विशेष प्रकार की तकनीकी और उससे सम्बंधित सामाजिक संरचना, मूल्यों के झुकाव, अभिप्रेरणाओं और प्रतिमानों तक चलने वाला होता है।"

- **श्यामाचरण दुबे**

"आधुनिकीकरण का अर्थ उन संस्थाओं, प्रक्रियाओं और दृष्टिकोणों से है जो पिछली दो शताब्दियों में मुख्यतया पश्चिम में विकसित हुई है और जिनका पश्चिम के देशों द्वारा अनुकरण किया गया है।"

- **वाल डी. रस्ट**

"आधुनिकीकरण का अर्थ है - निरंतर तथा परिवर्तन करने वाली एक सामाजिक व्यवस्था और तकनीकी रुप से विकसित विश्व में रह पाने के लिए आवश्यक कुशलताओं का ज्ञान का होना।"

- **मुर, स्पेंगलर, शिल्स**

"आधुनिकीकरण एक क्रांतिकारी परिवर्तन है जो एक परंपरागत समाज को पश्चिम के विकसित, आर्थिक रुप से समृध्द और अपेक्षाकृत राजनैतिक रुप से आधिक स्थायी देशों की तकनीकी और उससे सम्बंध सामाजिक संगठन के स्वरुप में परिवर्तित कर देता है।"

- **विलियम बी. मुर**

"The country is more developed industrially only shows, to the less developed, the image of its own future."

- **Karl Marks**

"आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें परंपरागत ग्रामीण धार्मिक रूढ़िवादी समाज का रूपांतरण एक धर्म निरपेक्ष आधुनिक औद्योगिक नगरीय समाज में होता है।"

- ब्रिटानिका इनसाइक्लोपीडिया

"Modernzation is the current term for an old process the process of social change wherby less developed societies acquire charecteristics common to developed societies"

- इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ द सोशल सायन्सेस

2.1.7. अभ्यास-प्रश्न / बोध-प्रश्न :

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. पश्चिम के विकसित राष्ट्रों का पुर्वीय विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों पर पड़नेवाले प्रभाव की प्रक्रिया........... कहलाती है।

(क) पश्चिमीकरण

(ख) आधुनिकीकरण

(ग) औद्योगीकरण

(घ) वैश्वीकरण

2. तटस्थता, व्यापकता, वैज्ञानिकता, जटिलता एवं बहुस्तरीयता, चेतन एवं अचेतनता, पारूप की वैभिन्यता आदि ....प्रक्रिया के लक्षण है।

(क) पश्चिमीकरण

(ख) वैश्वीकरण

(ग) औद्योगीकरण

(घ) आधुनिकीकरण

3. ....वह प्रक्रिया है जिसमें परंपरागत ग्रामीण धार्मिक रुढ़िवादी समाज का रुपांतरण एक धर्म निरपेक्ष, आधुनिक, औद्योगिक, नगरीय समाज में होता है।

(क) औद्योगीकरण

(ख) आधुनिकीकरण

(ग) पश्चिमीकरण

(घ) वैश्वीकरण

4. परानुभूति, मानसिक गत्यात्मकता, लक्ष्यों का एकत्रीकरण, संस्थात्मक राजनैतिक प्रतियोगिता, उपलब्धि अभिप्रेरणा आदि ....प्रक्रिया के लक्षण है।

(क) पश्चिमीकरण

(ख) वैश्वीकरण

(ग) औद्योगीकरण

(घ) आधुनिकीकरण

5. भारतीय संविधान की उदेशिका में निम्न मूल्य सम्मिलित है।

(क) जागतिकीकरण

(ख) उदारीकरण

(ग) वैश्वीकरण

(घ) उपरोक्त सभी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पश्चिमीकरण से आप क्या समझते है।
2. पश्चिमीकरण के लक्षण एवं विशेषता बताईए।
3. पश्चिमीकरण एवं शिक्षा का संबंध स्पष्ट कीजिए।
4. पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण में अंतर बताईए।
5. आधुनिकीकरण का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
6. आधुनिकीकरण के लक्षण एवं विशेषता बताईए।
7. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया संक्षेप में बताईए।
8. आधुनिकीकरण एवं शिक्षा के विभिन्न आयाम स्पष्ट कीजिए।
9. आधुनिकीकरण एवं शिक्षा का संबंध स्पष्ट कीजिए।
10. "आधुनिकीकरण शिक्षा का स्वाभाविक एवं प्रगतिशील कार्य है।" - चर्चा कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पश्चिमीकरण को आधिक सकारात्मक बनाने में शिक्षा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
2. आधुनिकीकरण का अर्थ बताते हुए आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में आनेवाली बाधाओं का विवरण दीजिये।
3. आधुनिकीकरण पश्चिमीकरण से अधिक व्यापक संप्रत्यय है - स्पष्ट कीजिए।
4. नव समाज के निर्माण में आधुनिकीकरण की भूमिका महत्वपूर्ण है - चर्चा कीजिए।
5. आधुनिकीकरण का स्वरुप एवं प्रकृति बताते हुए आधुनिकीकरण को सफल बनाने में शिक्षा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
6. भारतीय संविधान को अभिप्रेत आधुनिकीकरण की विस्तार से चर्चा कीजिए।
7. पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण एवं शिक्षा का परस्पर संबंध स्पष्ट कीजिए।
8. भारतीय समाज को आधुनिक बनाने में शिक्षा की भूमिका विस्तार से स्पष्ट कीजिए।
9. आधुनिकीकरण की भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में चर्चा कीजिए।
10. समाज को आधुनिक बनाने में एक आदर्श नागरिक के रुप में आप क्या-क्या प्रयास करोगे ?

2.1.8. संदर्भ-ग्रंथ-सूची :

- ❖ किरण, चांद (2013). *शिक्षा: सामाजिक परिप्रेक्ष्य,* दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय.
- ❖ गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता,अलका (2015). *शिक्षा के समाजशास्त्रिय परिप्रेक्ष्य,* इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.
- ❖ तरुण, हरीवंश (2006*). मानक शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक समाजशास्त्र,* नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.
- ❖ दोषी, एस. एल. (2017). *आधुनिकता, उत्तर- आधुनिकता एवं नव- समाजशास्त्रिय सिद्धांत.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन.
- ❖ दुनाखे, अरविंद (2008). *भारतीय समाज, शिक्षक व शिक्षण,* पुणे: नित्य नूतन प्रकाशन.
- ❖ पारसनिस, न.रा. (2007). *शिक्षणाची तात्विक व समाजशास्त्रिय भूमिका,* पुणे:नित्य नूतन प्रकाशन.
- ❖ पाण्डेय, के.पी. (2011). *शिक्षा के सामाजिक आधार*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- ❖ मालवीय, राजीव, (2016). *शिक्षा के मूल सिद्धांत*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.
- ❖ माथुर,एस.एस. (2015).*शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रिय आधार*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
- ❖ रूहेला, एस.पी. (2015). *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रिय आधार*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
- ❖ लाल, रमन बिहारी (2006). *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजशास्त्रीय सिद्धांत*. मेरठ: रस्तोगी पब्लिकेशन.
- ❖ शुक्ला, के.के. एवं परिहार, ए.जे.एस. (2011). *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार*. मेरठ: आर.लाल. बुक डपो.
- ❖ BoixMansilla, V. (2005). *Assessing student work at disciplinary crossroads.Change*, January/February, 14-21.
- ❖ Beane, J. A. (1995). *Curriculum integration and the disciplines of knowledge*. Phi Delta Kappan,77(4), 616-622
- ❖ Foshay, A. W. (1970). *How fare the disciplines? Phi Delta Kappan.* 51(7), 349-352.
- ❖ Heckhausen, Heinz. *"Discipline and Interdisciplinarity."* Interdisciplinarity. Leo Apostel et al.,eds. OECD: Paris, 1972.

- Youngblood, Dawn, 2007. "*Interdisciplinary Studies and the Bridging Disciplines: A Matter ofProcess.*" Journal of Research Practice, v.3, i.2.
- http://www.eric.ed.gov/ERICWebPortal/contentdelivery/servlet/ERICServlet?accno=EJ800366.
- https://en.wikipedia.org/wiki/Outline_of_academic_disciplines#/media/File:Disciplines_mind_map.jpg

इकाई-2 धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

2.1.0. उद्देश्य

2.2.1. प्रस्तावना

2.2.2. धर्म

2.2.3. धर्म निरपेक्षता

2.2.4. धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा

2.2.5. पाठसार/ सारांश

2.2.6. कठिन शब्दावली

2.2.7. अभ्यास- प्रश्न/ बोध- प्रश्न

2.2.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.0. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. धर्म की संप्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
2. धर्मनिरपेक्षता की संप्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
3. शिक्षा की संप्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
4. धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा से अवगत हो सकेंगे।
5. धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा अंतर अनुषांगिक संबंध को समझ सकेंगे।

2.2.1. प्रस्तावना

प्राचीन काल में धर्मसत्ता का राजसत्ता पर प्रभाव था। धर्म एवं मानव के बिच अटूट संबंध प्राचीन काल से रहा है। धर्मसत्ता एवं राजसत्ता के संघर्ष से ही धर्मनिरपेक्षता का मूल्य विकसित हुआ है। भारतीय संविधान की उद्देश्य पत्रिका में धर्मनिरपेक्षता को स्थान दिया है। सामाजिक एवं राजकीय जीवन में सलोखा एवं राष्ट्रिय एकात्मता निर्माण करने के कारण किसी एक विशिष्ट समाज को राष्ट्रिय धर्म के रुप में मान्यता प्रदान नहीं की गई। किसी धर्म का अनादर करना नहीं बल्कि सभी धर्मो का आदर करना अपेक्षित है। सर्वधर्मसमभाव का दृष्टिकोण विकसित करना धर्मनिरपेक्षता का उद्देश्य है। भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है।

2.2.2. धर्म (Religion) :

मानव का ईश्वर से संबंध प्रस्थापित करने का माध्यम धर्म माना जाता है। सत्य, शिव, सुंदर ही ईश्वर है। धर्म से हम मानव के आध्यात्मिक जीवन को समझते है। जो प्राणि-मात्र को स्थायित्व एवं शक्ति प्रदान करता है उसे धर्म कहते है। धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धी' नामक धातु से हुई है। जिसका अर्थ 'धारण करना' होता है। अर्थात सबको धारण करने वाली अथवा सबको एक सूत्र में बंधने वाली व्यवस्था धर्म कहलाती है। सद्प्रवृत्ति, सर्वजन हिताय- सर्वजन सुखाय दृष्टिकोण, नैतिकता, आदर्श आचरण, मूल्य आदि को अपनाकर कार्य करता है वही धर्म कहलाता है। आंग्ल भाषा में धर्म शब्द के लिए 'रिलिजन' (Religion) शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'Religion' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Re'(रि) तथा 'Legere' (लिगर) से मिलकर हुई है। जिसका अर्थ फिर से बांधना या संबंध जोड़ना है। तात्पर्य, स्व जीवन, समाज, मान्यता, क्रियाकलापों, व्यवहार, मान्यता, जबाबदेही आदि से मानव को जोड़ता है।

धर्म का अर्थ (Meaning of Religion)

"यतोभुदय नि:श्रेयसिधि: स धर्म" अर्थात धर्म वह है जो मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति एवं कल्याण में सहायक हो।

- **महर्षि कणाद**

"व्यक्ति में अंतर्निहित आध्यत्मिक तथा दैवी शक्ति ही धर्म है।"

- **स्वामी विवेकानंद**

"धर्म एक सांस्कृतिक प्रतिकृति है जो अलौकिक अथवा असाधारण से उस प्रकार के संबंध रखता है, जैसे की उन विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा समझे जाते है जो की उसमे अलिप्त है।"

- **किलपैट्रिक**

धर्म के लक्षण एवं विशेषताएँ (Charecteristics of Religion) :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियानिग्रह:।
धी विद्या सत्यम क्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

भारतीय दर्शन में धर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान, विवेक, सत्य और अक्रोध यह धर्म के दस लक्षण बताये है।

धर्म का स्वरुप

धर्म का उपरी या बाह्य स्वरुप (Outer Form) एवं भीतरी या आतंरिक स्वरुप होता है। व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला आचरण आंतरिक एवं बाह्य व्यवहार की फलश्रुति होता है। आचार एवं विचार यह क्रमशः धर्म के आतंरिक एवं बाह्य स्वरुप है। आचार स्थुल प्रकृति का होता है और विचार सूक्ष्म प्रकृति का होता है। पूजापाठ, व्रत, उपासना, इश्वर की आराधना, रीतिरिवाज, कर्मकांड, तीर्थाटन, उत्सव-

त्यौहार आदि धर्म का बाह्य स्वरुप है। साधना, संयम, पवित्रता आदि हृदय को पवित्र बनाने वाले विचार धर्म का आतंरिक स्वरुप है। विश्व के सभी धर्म मानव कल्याण के लिए निर्माण हुए है। विश्व के विभिन्न धर्मो के उदय का कारण, आराध्य, दर्शन एवं दार्शनिक, धर्मग्रंथ, उपासना पद्धति, पूजापाठ की विधि, त्यौहार पर्व, तीर्थस्थान, प्रतीक, नियम आदि में भिन्नता होते हुए भी सभी धर्मों के आधारतत्व समान है। विश्व कल्यान, मानव कल्याण, सर्वजन हिताय- सर्वजन सुखाय यह मूलाधार है। अर्थात सभी धर्म के रास्ते अलग है किन्तु मंजिल एक ही है। अपने सर्वशक्तिमान दैवत को अल्लाह, वाहेगुरु, ईश्वर, अहर्त, ईसा, तथागत कहता है।

विभिन्न धर्मोका दर्शन

भारत में हिंदू, बौद्ध, जैन, शिख, इस्लाम, ईसाई आदि धर्म के अनुयायी है। सभी लोग अपने-अपने धर्म के अनुसार धर्म का पालन करते है। सभी धर्मो के विभिन्नता में एकात्मता है। विविध धर्मो का दर्शन निम्नवत है -

- **हिंदू धर्म -**

हिंदू धर्म प्राचीन सनातन धर्म है। वेद, उपनिषद, भगवतगीता, पुराण, मनुस्मृति आदि पर आधिष्टित है। ब्रम्ह, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, शंकर, हनुमान आदि तैतीस कोटि देवी- देवता है। इन देवी-देवताओं की उपासना की जाती है। भगवान निर्गुण एवं सगुन दोनों रुप में पुजा जाता है। जप-तप, पूजा- पाठ, व्रत, उपासना, इश्वर की आराधना, रीतिरिवाज, कर्मकांड, तीर्थाटन, भजन- पूजन, उत्सव-त्यौहार करते है। हिन्दू धर्म का पालन करने वाला आपने जीवन में गर्भाधान, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेद, विद्यारंभ, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन, विवाह तथा अंत्येष्टि आदि संस्कारों का पालन करता है। हिंदू धर्म में आहार-विहार, आचार-विचार, पवित्रता के संदर्भ में विशेष नियम है। हिंदू धर्म के लोगों को उन नियमों का पालन करना पड़ता है। तुलसी एवं बरगद का पेड़ पूज्यनीय माना जाता है। मोक्षप्राप्ति यह हिंदू धर्म के धार्मिक अधिष्ठानो का लक्ष्य होता है।

- **बौद्ध धर्म -**

भगवान बुद्ध को माननेवाले 'बौद्ध' कहलाते है। भगवान बुद्ध के विचारों पर आधारित त्रिपिटक तथा धम्मपद बौद्ध धर्म का मूल तत्वज्ञान है। महायान एवं हिनयान यह दो संप्रदाय प्रमुखतः से दीखते है। बौद्ध धर्मीय अपने जीवन में त्रिशरण, चार आर्यसत्य, पंचशील, आर्य अष्टांगिक मार्ग आदि का पालन करते है। प्रज्ञा, शिल, करुणा यह त्रिशरण है। दुःख, दुःख समुदाय, दुःख निरोध, दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद यह चार आर्यसत्य है। हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना, शराब एवं नशीले पदार्थ के सेवन का त्याग करना यह पंचशील है। सम्यक दृष्टी, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त, सम्यक अजीविक, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधी आदि आर्य अष्टांगिक मार्ग है। लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर, श्रावस्ती, राजगृह, वैशाली यह बौद्ध धर्मियों के धार्मिक स्थल

है। भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति, शिक्षा एवं मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान बौद्ध धर्म का रहा है।

- **जैन धर्म -**

भगवान महावीर जैन धर्म के संस्थापक माने जाते है। जैन धर्मीय लोग ईश्वर को मानते नहीं है। दिगंबर एवं श्वेताम्बर यह जैन धर्म के दो संप्रदाय है। दिगंबर संप्रदाय के अनुयायी नग्नता के पक्षधर है एवं शेताम्बर संप्रदाय के अनुयायी श्वेत वस्त्र परिधान करते है। जैन धर्मीय दशलक्षण पर्व एवं पर्युषण पर्व के रुप में आराधना करते है। क्षमा, नम्रता, सरलता, सफाई, सत्य, संयम, तप, त्याग, ममता तथा ब्रम्हचर्य आदि तत्वों का पालन अपने जीवन में करते है। आहिंसा मूल्य पर जैन धर्मीय अधिक बल देते है। पर्युषण पर्व के अंतिम दिन सभी उपवास रखते है, जिसे संवत्सरी के नाम से मनाया जाता है। रात्रि के भोजन का त्याग, पानी छानकर पीना, मांस, मछली, मदिरा, मधु आदि का त्याग, बड, पीपल, कटहल, पाकर, गुलर आदि का त्याग करना चाहिए। हिंसा, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि का त्याग करने पर बल दिया है। अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधू को प्रतिष्ठित माने जाते है। देव-दर्शन करना, पूजा-आराधना करना, स्वाध्याय करना आदि जैन धर्मीय आपना कर्तव्य मानते है। भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति, शिक्षा एवं मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान जैन धर्म का रहा है।

- **शिख धर्म -**

शिख धर्म को माननेवाले लोग 'शिख' कहलाते है। शिख का अर्थ शिष्य से है। गुरु-शिष्य की संबंध को प्राथमिकता देनेवाला यह धर्म है। नानकदेव, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव, हरगोविंद, हरराय, हरकृष्ण,तेगबहादुर, गोविन्दसिंह यह दस शिख धर्म के गुरु है। शिख धर्म के सभी गुरुओं ने शिख धर्म को मजबूती प्रदान की है। शिख धर्म का धर्मग्रंथ गुरुग्रंथसाहिब के प्रति शिखों को असीम श्रद्धा है। गुरुग्रंथसहिब का भक्तिभाव से पूजापाठ करते है। 'सतनाम वाह गुरू' का शिख धर्मीय जप करते है। केश, कंघा, कच्छा, कड़ा, कृपाण इस पांच कंकार को शिख धर्मीय पवित्र मानते है। शिख धर्म में सत श्री अकाल. गुरुनानक, ग्रंथसाहिब की पूजा गुरुद्वारा में की जाती है। यह एकेश्वरवादी धर्म है। मूर्तिपूजा अमान्य है। शिख धर्म के प्रथम गुरु नानक देव ने कर्मकांड का विरोध किया है। भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति, शिक्षा एवं मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान शिख धर्म का रहा है।

- **इस्लाम धर्म -**

अल्लाह तथा हजरत मुहम्मद पैगम्बर साहब को मामनेवाले 'मुस्लमान' एवं उनके धर्म को 'इस्लाम' कहते है। 'कुरान शरीफ' इस्लाम का पवित्र ग्रंथ है। इस्लाम धर्म समाज में अंतर्निहित अनिष्ठ प्रथाओं पर कड़ा प्रहार करता है। मानवजाति की एकता पर बल दिया जाता है। इस्लाम में एकेश्वर को मानते हुए मूर्तिपूजा अमान्य की है। ईमान, नमाज, रोजा, जकात, हज का इस्लाम धर्म में विशेष स्थान है। मुसलमानों का ईमान केवल अल्लाह के प्रति है। हजरत मुहम्मद उनके पैगंबर मने जाते है। मूर्तिपूजा इस्लाम में अमान्य है। मक्का-मदीना, अजमेर, दिल्ली, लखनऊ, इमामबाड़ा आदि पवित्र स्थल मने जाते है। अल्लाह से बंदगी करना नमाज कहलाता है। इस्लाम के अनुयायी दिन में पांच बार नमाज अदा करते है।

रमजान का महिना पवित्र माना जाता है। रमजान के दिनों में रोजा रखा जाता है। अंत में ईद की नमाज अदा की जाती है। जकात का अर्थ है कि अपनी आमदनी का ढाई फीसदी हिस्सा गरीबो, अनाथों, अस्पतालों में दान करना है। हज को जाना मुस्लिमों का महत्वपूर्ण उद्देश्य एवं कर्तव्य माना जाता है। मक्का-मदीना, दिल्ली की जामा मस्जिद, अजमेर का ख्वाजा नवाज साहब का दरगाह, लखनऊ का इमामबाड़ा आदि पवित्र स्थल है। भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति, शिक्षा एवं मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान इस्लाम धर्म का रहा है।

- **ईसाई धर्म -**

ईसा मसीहा को माननेवाले लोग 'ईसाई' कहलाते है। 'बाईबल' ईसाई का धर्मग्रंथ, 'गिरिजाघर' ईसाई का पवित्र पूजास्थल, 'क्रास' ईसाई का पवित्र चिन्ह माना जाता है। ईसाई धर्म एकेश्वरवादी एवं मूर्तिपूजा अमान्य है। ईसा के जन्म एवं मृत्यु के स्थान तीर्थस्थल मने जाते है। मानव प्रेम, दया, न्याय, मित्रता, सहानुभूति,परोपकार, क्षमा, दान, नम्रता आदि सदगुणों के विकास पर बल दिया जाता है। भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति, शिक्षा एवं मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान ईसाई धर्म का रहा है।

भारत में हिंदू, बौद्ध, जैन, शिख, इस्लाम, ईसाई आदि विविध धर्मो का दर्शन एवं शिक्षा का घनिष्ठ संबंध है। भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति, शिक्षा एवं मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान हिंदू, बौद्ध, जैन, शिख, इस्लाम, ईसाई आदि विविध धर्म का रहा है। आदर्श आचरण करने वाले व्यक्ति का आचरण समाजहित में ही रहता है। सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, ब्रम्हचर्य पालन, संयम, हिंसा न करना, अनावश्यक संग्रह आदि मूल्यं सभी धर्मोमे सम्मिलित है जो सर्वसामान्य व्यक्तियों के लिए व्यवहार में लाना संभव है। उक्त छोटी-छोटी चीजे व्यक्ति एवं समाज को जनकल्यानात्मक जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है। राष्ट्रिय एवं भावात्मक एकात्मता, अंतरराष्ट्रीय सदभाव, विश्वकल्याण के लिए संस्कारित मानव का विकास करना शिक्षा का प्रधान लक्ष्य है।

सर्वधर्म समभाव :

धर्म मानव कल्याण, नैतिकता, मूल्यों, जनकल्याण, समभाव की ओर समाज को प्रेरित करते है। विविध धर्मो के समान मुलभुत मान्यता, विश्वास, आदर्श, तत्व, मूल्य, नीति आदि की पुन: प्रतिस्थापना समाज को सर्वधर्म समभाव की ओर ले जाता है। विभिन्न धर्मो की व्यापकता, विशालता एवं सार्वभौमिकता में अंतरों के बावजूद मुलभुत मान्यता, नैतिक मूल्य, मानव कल्याण एवं जनकल्याण के तत्व आदि में समानता है। मुलभुत मान्यताएँ, वैचारिक प्रकृति, ईश्वर का स्मरण, प्रार्थना स्थल, प्रेषित, प्रतिक आदि की उपस्थिति दिखाई देती है। हिंदू, बौद्ध, जैन, शिख, इस्लाम, ईसाई आदि विविध धर्म में समाहित विभीन्न तत्व निम्नांकित है -

1. मानवीय मूल्यों की प्रधानता -

दान, दया, प्रेम, तप, सहयोग, शांति, सत्य, सहयोग, सहजीवन, क्षमा, भाईचारा, समानता, सहनशीलता, आदि मानवीय मूल्यों का मानव जाती का समग्र विकास संभव है। संसार के सभी धर्म

मानवीय मूल्यों का स्वीकार करते है। रामचरितमानस में विविध मानवीय मूल्यों पर बल दिया है। त्रिशरण, चार आर्यसत्य, पंचशील, आर्य अष्टांगिक मार्ग आदि में समाहित मानवीय मूल्यों का स्वीकार किया गया है। शिक्षा की माध्यम से मानवीय मूल्यों को प्रधानता देनी चाहिए।

2. केंद्रीय सत्ता की स्वीकार्यता -

सभी प्राक्रतिक एवं अलौकिक क्रियाकलापों के पीछे केंद्रीय सत्ता होने बात सभी धर्म स्वीकार करते है। हिंदू धर्मीय ईश्वरकों, बौद्ध धर्मीय भगवान बुद्धकों, इस्लाम धर्मीय अल्लाकों, ईसाई धर्म यशु ख्रिस्तकों केंद्रीय सत्ता के रुप में अपना आराध्य स्वीकार करते है।

3. एकात्मता की प्रकृति -

'जिओ और जीने दो' यह सभी धर्मों की शिक्षा है। सभी धर्म मानव एवं जनकल्याण की बात करते है। वर्तमान समय में सभी धर्मों ने वैश्विक रुप धारण किया है। विश्व के विभिन्न भूभागों में सभी धर्मीय खुशियाली से जीवन यापन कर रहें है। राष्ट्रिय एवं अंतरराष्ट्रिय स्तरों पर सदभावना, शांति, एकीकरण, विकास की भावना को बढ़ावा दे रहें है।

4. जीवन का अंतिम लक्ष्य -

विश्व के सभी धर्मो का अंतिम लक्ष्य समान है। हिंदू धर्म का मोक्ष, जैन धर्म का कैवल्य, बौद्ध धर्म का निर्वाण, इस्लाम धर्म नजात या फ़ना- फ- इल्लाह, ईसाई धर्म में सालवेशन यह अंतिम लक्ष्य है। अर्थात सभी धर्मो के अंतिम लक्ष्य समान है।

5. नैतिकता का प्रतिपादन -

विश्व के सभी धर्म नैतिकता एवं सदाचार का स्वीकार करते है। बौद्ध धर्म में पंचशील, ईसाई धर्म में शैलोपदेश आदि नैतिकता के पक्षधर है। हिंदू धर्म के संहिता, उपनिषदों में नैतिकता के अनेक सूत्र सम्मिलित है। कुरान शरीफ में अनेक जगह पर नैतिक तत्वों का जिक्र किया गया है।

अर्थात सभी धर्म मानव कल्याण की ही बात करते है। सामाजिक शिक्षा की माध्यम से सर्वधर्म समभाव की भावना विकसित करनी चाहिए।

धर्म एवं शिक्षा :

प्राचीन काल से धर्म एवं शिक्षा का सम्बंध रहा है। शिक्षा का मुख्य ध्येय आध्यात्मिक था। शिक्षा एवं धर्म व्यक्ति के भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन पर प्रभाव डालती है। मानव व्यवहार, आदर्श आदि में शिक्षा द्वारा बदलाव किया जा सकता है। धर्म एवं शिक्षा में घनिष्ठ संबंध होने के कारण धर्म को शिक्षा से अलग नहीं कर सकते। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीक विकास करना है। सर्वांगिक विकास में व्यक्तिगत एवं सामाजिक आचरण सुचारु रुपसे करना भी समाहित होता है। शिक्षा का लक्ष्य मानव जीवन का निरंतर विकास करना है। मनुष्य जीवन को प्रभावित करनेवाले विभिन्न कारकों में से धर्म यह एक महत्वपूर्ण कारक है। नीतिशास्त्र एवं धर्म के मूल सिद्धांतो की शिक्षा की सहायता से यह संभव है। अभिवृत्ति, अभिरुचि, मूल्य एवं दृष्टिकोण का आदर्श परिपोष विद्यार्थियों में किये जाना चाहिए।

"यतो अभुदय- निश्श्रेयस सिद्धि: स धर्म:"

अर्थात धर्म वहि है, जिससे व्यक्ति कि शारीरिक और अध्यात्मिक उन्नति हो।

स्वातंत्र प्राप्ति के उपरांत भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर दिया। अर्थात राष्ट्र किसी एक धर्म को स्वीकार न करते हुए सभी धर्मो को समान मानेगा। भारतीय संविधान द्वारा सभी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी धर्म का अनुसरण कर सकते है। किसी भी धर्म को मानने एवं उसके नुसार आचरण करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। साथ ही यह भी प्रावधान किया की, सरकारी सहायता से चलनेवाली विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाए। शिक्षा संस्थानों द्वारा आदर्श नागरिकता की शिक्षा देना आवश्यक है।

धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता:

आज के समाज में धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता अधिक है। विद्यापीठ आयोग ने किसी एक धर्म का पक्ष ना लेते हुए धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता जताई है। व्यक्तित्व निर्माण में धार्मिक शिक्षा का अधिक महत्त्व है। धार्मिक शिक्षा विद्यालयों में देने के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। पाश्चिमात्य राष्ट्रों ने भौतिकवाद एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का स्वीकार करते हुए धार्मिक शिक्षा का बहिष्कार प्रारंभिक काल में किया। किंतु वर्तमान में पाश्चिमात्य विद्वान धार्मिक शिक्षा पर बल देते हुए दिखते है। भारतीय नेताओं ने धार्मिक शिक्षा का अधिकांशत: पुरस्कार ही किया है। जिसमे सभी धर्मो में समाहित समान मुलभुत आदर्श तत्वों का अंतर्भाव शिक्षा में करने पर बल दिया है। मानसिक एवं आतंरिक शांति के लिए धार्मिक शिक्षा आवश्यक है। सर्वधर्म समभाव पर आधारित धार्मिक शिक्षा की वर्तमान समाज में अत्यंत आवश्यकता है। शाश्वत मानव जीवन के लिए सर्वधर्म समभाव पर आधारित धार्मिक शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है। भारत को वैश्विक महासत्ता बनाने में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहेगा। वैश्विक सत्ता बनाने में आदर्श नागरिकों की सहभागिता महत्वपूर्ण है जो नैतिक शिक्षा द्वारा ही संभव है।

धार्मिक शिक्षा का स्वरुप:

विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा देने पर सहमति बनने के उपरांत यह प्रश्न उठता है की धार्मिक शिक्षा का स्वरुप कैसा रहें? कुछ शिक्षाशास्त्रियों का यह मानना है कि धर्म सिखाया नहीं जाता वह अनुभव के द्वारा समझा जा सकता है। धार्मिक शिक्षा का स्वरुप निर्धारित करने से पूर्व हमें यह ध्यान में रखना है की विद्यालयों में विद्यालयों में विभिन्न धर्मो के विद्यार्थी प्रवेशित होते है। अपने विशिष्ट धर्मो में श्रद्धा रखनेवाले विद्यार्थियों के लिए किसी एक विशिष्ट धर्म की शिक्षा देना उचित नहीं है। हमें यह भी देखना है धार्मिक शिक्षा देते समय विद्यार्थियों के मन में अन्य धर्म के प्रति द्वेष निर्माण न हो। धार्मिक शिक्षा देते समय हमें सर्वधर्मसमभाव का दृष्टिकोण रखना आवश्यक है। अनेक विद्वानों का यह मत है कि सभी धर्मो के आदर्श मूलभूत तत्व, सभी धर्मो के विचारकों के आदर्श विचार, महान धर्म प्रवर्तकों के जीवन-चरित्र, समान आदर्श मूल्य आदि का समावेश धार्मिक शिक्षा में कराना उचित होगा।

विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा देने के संदर्भ में एक विचार प्रवाह यह है कि अन्य पाठ्यविषयों की भांति धार्मिक शिक्षा के लिए समय सारणी में स्वतंत्र कालांश रखना सही नहीं है। किन्तु विद्यालयों का समग्र वातावरण धार्मिक बनाना उच्च धार्मिक शिक्षा के लिए योग्य सिद्ध होगा। विद्यालय का वातावरण ऐसा बनाये कि विद्यार्थी अनुसरण कर सकें। कर्मी, शिक्षक, प्रधानाध्यापक आदि के आदर्श आचरण का अवलोकन कर धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा ग्रहण कर सकें। विद्यालयों मेंधार्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर आधारित विभिन्न गतिविधियों का आयोजन करना चाहिए। सभी धर्मो के आदर्श, मूल्य, नियम एवं तत्व आदि को व्यवहार में लाने के लिए प्रोत्साहित करनेवाली शिक्षा देना आवश्यक है। विद्यार्थियों अध्यात्मिक एवं नैतिक गुणों के प्रति आदर निर्माण करना चाहिए। विद्यालयों की दिनचर्या में सर्वधर्म प्रार्थना, मौन चिंतन, सामाजिक एवं धार्मिक सलोखा निर्माण करनेवाली गतिविधियाँ, धार्मिक एवं नैतिक विचारकों का विचारमंथन, महान पुरुषों की जीवनगाथा, आदर्श एवं प्रेरनादायी पुस्तक एवं वचनों का पठन आदि सम्मिलित होने चाहिए। जिससे विद्यार्थियों में सर्वधर्म के प्रति आदर निर्माण किया जाएगा। मानव का निर्माण करने वाली शिक्षा वास्तव में धार्मिक शिक्षा कहलाती है। क्योंकि आज के वर्तमान युग में मानव को मानव बनाना शिक्षा की महत्वपूर्ण चुनौती है।

विविध शिक्षा आयोग एवं समिति की परिप्रेक्ष्य में धर्म एवं शिक्षा :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं उपरांत गठित विविध शिक्षा आयोग एवं समितियों ने धर्म, धार्मिक शिक्षा, धर्मनिरपेक्षता पर अपने विचार प्रस्तुत किये है। भारतीय संविधान में 1976 के 42 वे संशोधन के अनुसार संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता का स्वीकार किया गया। धार्मिक शिक्षा का स्वरुप क्या होना चाहिए? क्या धार्मिक शिक्षा को नैतिक शिक्षा में परिवार्तित करना चाहिए? आदि प्रश्नों के उत्तर हमें विविध समिति एवं आयोग द्वारा सुझाओं से हमें मिलता है। धर्मनिरपेक्षता के क्रियान्वयन हेतु जो महत्वपूर्ण सुझाव दिए है वह निम्नांकित है-

- **वुड का घोषनापत्र (1854)**

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व 1854 में चार्ल्स वुड का घोषणापत्र प्रसिद्द हुआ। तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था तथा भविष्यकालीन पुनर्निर्माण के लिए कार्ययोजना प्रस्तुत करना समिति का कार्य था। चार्ल्स वुड के घोषनापत्र को भारत में अंग्रेजी शिक्षा के महाधिकार पत्र के रुप में जाना जाता है। चार्ल्स वुड महोदय ने धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में तटस्थ भूमिका स्वीकार की थी। धार्मिक शिक्षा देनेवाली शिक्षण संस्थानों की सहायता देना बंद किया।

- **हंटर आयोग (1882)**

धार्मिक शिक्षा संबंधी सरकार की तटस्थ भूमिका एवं शिक्षा में सरकार का हस्तक्षेप के कारण इंग्लंड एवं भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असंतोष निर्माण हुआ था। लार्ड रिपन उदारवादी विचारक था। गवर्नर जनरल के कार्यकारिणी के सदस्य सर विलियम हंटर की अध्यक्षता में 3 फरवरी 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया। जी हंटर आयोग के नाम से भी जाना जाता है। हंटर आयोग ने भी शिक्षा

को धर्म से अलग रखने के नीति का समर्थन किया। सभी धर्मो के मुख्य सिद्धांतो के आधार पर नैतिक शिक्षा देने की शिफरिश की।

- **विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1902)**

भारत में कलकत्ता, मुंबई, मद्रास में प्रथमत: विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। किन्तु विश्वविद्यालय के पुनर्गठन का करी प्रलंबित था। 27 जनवरी 1902 को सर थॉमस रिले की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया। भारतीय विश्वविद्यालय के पुनर्बलन एवं पुनर्प्रतिष्ठाण के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में पूर्व नीति का ही समर्थन किया है।

- **केंद्रीय सलाहगार समिति (1945- 46)**

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत गठित केन्द्रीय सलाहगार समिति ने धार्मिक शिक्षा को नैतिक शिक्षा के रुप में स्विकृत करते हुए विद्यालयों में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। साथ ही नैतिक शिक्षा देने की जबाबदेही विद्यालयों को सौंपी।

- **विश्वविद्यालय आयोग (1948- 49)**

उच्च शिक्षा में गुणवत्ता विकास के लिए कार्ययोजना प्रस्तुत करने हेतु स्वतंत्र प्राप्ति के उपरांत 4 नवंबर 1948 को डॉ.सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग (1948-49) का गठन हुआ। उन्होंने अध्यात्मिक जीवन को शिक्षा का अभिन्न अंग माना है। राधाकृष्णन जी के अनुसार धर्मनिरपेक्ष तात्पर्य अधार्मिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक होना है।

- **माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53)**

विश्वविद्यालय आयोग द्वारा भारत के उच्च शिक्षा का पर्याप्त विचार किया गया था किन्तु माध्यमिक शिक्षा के लिए आयोग की आवश्यकता महसूस हुई। माध्यमिक शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता केन्द्रीय शिक्षा सलाहगार परिषद ने जताई। 23 सितंबर 1952 को डॉ.ए.लक्ष्मण स्वामी मुदलियार की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया गया। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का स्वीकार किया।

- **धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा समिति(1959-60)**

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा विद्यालयों में देने पर 1959 में श्री प्रकाशजी की अध्यक्षता में गठित धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा समिति ने 1960 में प्रेषित अपने प्रतिवेदन में बल दिया है। समिति के प्रतिवेदन के अनुसार वर्तमान में धर्म पर कम होनेवाले विश्वास के कारण समाज को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड रहा है। **धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा समिति(1959-60) ने** निम्नांकित सुझाव दिए है-

i. जनशिक्षा के द्वारा परिवार से संबंधित समस्याओं को दूर करना चाहिए। मनोवैज्ञानिक दृष्टी से परिवार में समाहित विभिन्न दोषों को दूर करने की शिक्षा दी जाए।
ii. विद्यालयों की दिनचर्या शांत या मौन प्रार्थना से प्रारंभ करने का विद्यापीठ आयोग का सुझाव समितीने स्वीकृत किया है।

iii. सभी धर्मो के मूल सिद्धांतो एवं प्रवर्तकों की जीवनगाथा पर आधारित पुस्तकों का निर्माण शिक्षा के विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों के लिए किया जाए।

iv. सभी धर्मो के प्रति आदर, आदर्श आचरण एवं शिष्टाचार के गुणों को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षा देने पर विशेष बल दिया जाए।

v. शारीरिक शिक्षा अनिवार्य रुप से देना चाहिए।

vi. भाषा एवं सामाजिक विज्ञान के विषयों द्वारा नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देना चाहिए।

vii. सामूहिक गान, धर्म प्रवर्तकों की कहानियाँ, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा से संबंधित प्रदर्शनियाँ, शारीरिक शिक्षा, सेवा शिक्षा आदि स्वरुप में प्राथमिक स्तर पर शिक्षा देनी चाहिए।

viii. प्रात: कालीन सभा, सभी धर्मो के सिद्धांतो पर चर्चा, समाज सेवा आदि स्वरुप में माध्यमिक स्तर पर शिक्षा देनी चाहिए।

ix. विभिन्न धर्मो का सामान्य अध्ययन, विभिन्न धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन आदि स्वरुप में विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा देनी चाहिए।

- **भारतीय संविधान**

भारतीय संविधान की धारा 28 और 30 धार्मिक शिक्षा से संबंधित है। **भारतीय संविधान** में निम्नांकित सुझाव अंतर्निहित है-

i. सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। किन्तु विद्यार्थियों को अनिवार्य धार्मिक शिक्षा न देनेवाले विद्यालयों को अनुदान देते रहेगा।

ii. उक्त सुझावों के अनुसार ही सरकारी एवं निजी विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दी जाएगी।

iii. चरित्र निर्माण के लिए नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया जाएगा।

iv. धार्मिक शिक्षा उचित ढंग से देने के लिए अच्छे चरित्र के शिक्षकों का चयन शिक्षा संस्थानों में किये जाए।

v. धार्मिक सदभावना विकसित करनेवाली शैक्षिक विचारधारा निर्माण करनी चाहिए।

vi. अध्यात्मिक शिक्षा में देशप्रेम पर बल दिया जाए।

vii. शारीरिक शिक्षा एवं पाठ्यसहगामी क्रियाओं का शिक्षा में समावेश होना चाहिए।

viii. आदर्श शिक्षकों की द्वारा नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा दी जाए।

- **राष्ट्रिय शिक्षा आयोग (1964-66)**

आयोग के अनुसार राज्य को तटस्थ दृष्टिकोण को स्वीकृत किया एवं धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता जताई है। आयोग के अनुसार धार्मिक सहिष्णुता विकसित करने के लिए शिक्षा सर्वोत्तम साधन है। सभी धर्मो में समाहित समानताओं के आधार पर पाठ्यवस्तु का निर्माण होना चाहिए। डॉ. इकबाल के अनुसार, “आत्मा अपने विकास का अवसर भौतिक, प्राकृतिक तथा धर्मनिरपेक्ष जगत में पति है। इसीलिए जिसकी जड़ों में धर्मनिरपेक्ष है, वह पवित्र है।”

- **राष्ट्रिय शिक्षा नीति(1986)**

    i. राष्ट्रिय शिक्षा आयोग के अनुसार समाज में मूल्यों की गिरावट रोखने के लिए मूल्यों एवं आदर्शों की शिक्षा की आवश्यकता स्पष्ट की है।
    ii. धार्मिक उग्रवाद, हिंसा, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, कुरीतियाँ आदि को समाप्त करने में शिक्षा सहायक होती है।
    iii. सच्चाई, इमानदारी, सहनशीलता, न्याय, दया, क्षमा, शांति आदि के द्वारा शाश्वत मूल्यों का विकास कने में सहायक होती है।
    iv. संविधानिक मूल्यों (जैसे- धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, प्रजातंत्र) के अनुसार समाज को बनाना शिक्षा का उद्देश्य है।
    v. संवेदनशीलता, राष्ट्रिय एकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सुसंस्कृतता आदि का विकास शिक्षा द्वारा ही संभव है।
    vi. धर्म संस्कृति का अभिन्न अंग है एवं शिक्षा संस्कृति का वाहक है।
    vii. आदर्श नागरिकों का निर्माण शिक्षा द्वारा हो।
    viii. संस्कृत भाषा को धर्म के साथ जोड़ना अनुचित है।

मानव जीवन के उन्नति एवं प्रगति का संबंध शिक्षा से जुड़ा है। मानवतावादी दृष्टिकोण शिक्षा द्वारा प्रसारित करना चाहिए। याकूब मसीह के अनुसार मानवतावाद जातिविहीन, वर्गविहीन, शोषणमुक्त, सर्वहितपोषक, सर्वोदय का प्रतिक है। सर्वजनहिताय- सर्वजन सुखाय समाज का निर्माण धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का लक्ष्य है।

2.2.3. धर्मनिरपेक्षता (Secularism) :

जार्ज जैकब होलियॉक (1817-1906) को धर्म निरपेक्षतावाद का जनक कहा जाता है। जार्ज जैकब होलियॉक के अनुसार, सभी मानवों की हितरक्षा एवं स्थति में सुधार धर्म निरपेक्षतावाद से ही हो सकती है। धर्मनिरपेक्षता ईश्वर के अस्तित्व को मानता नहीं बल्कि ईश्वर का विरोध नहीं करता है। धर्मनिरपेक्षता में कट्टरता, हट्टवादिता को महत्त्व नहीं है। सभी धर्मो के प्रति तटस्थता रखने का समर्थन धर्म निरपेक्षतावाद करता है। यह एक मानवतावादी विचारधारा है। दैनदिन जीवन, शिक्षा, राजनीति, प्रशासन एवं कानून धर्म से पूरी तरह से स्वतंत्र मानता है। यह एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है जो स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर बनाकर सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रुप स्वीकृत किया गया। राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का स्वीकार किया गया। धर्मनिरपेक्षता तत्व को सामाजिक एवं दार्शनिक आधार है। धर्मनिरपेक्षता वैज्ञानिक मूल्यों पर अधिष्टित है। भारतीय शिक्षा का स्वरूप धर्मनिरपेक्ष बनाने पर बल दिया जाएगा। मानव कल्याण के लिए धर्मनिरपेक्ष शिक्षा सर्वाधिक फलदायी है। अंधविश्वास, अनिष्ट प्रथा-परंपरा, कुरीतियाँ आदि का उन्मूलन कर सभी धर्मो के मानवों का कल्याण

करना धर्मनिरपेक्ष शिक्षा का उद्देश्य है। सामाजिक शिक्षा धर्मनिरपेक्षता पर आधारित होनी चाहिए। भारतीय समाज ने धर्मनिरपेक्षता का स्वीकार करते समय किसी एक विशेष धर्म को विशेष स्थान नहीं दिया है, नहीं किसी धर्म का अनादर किया है। सभी धर्मो का समान आदर धर्मनिरपेक्षता का मूलाधार है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता का मूलाधार निधर्मिकरण नहीं बल्कि सभी धर्मो का समान आदर करना है। भारतीय संविधान सभी धर्मो को समान स्वतंत्रता प्रदान करता है। सर्वधर्म समभाव, मैत्रीभाव, सभी धर्मो का सहअस्तित्व,सहिष्णुता, निष्पक्षता आदि तत्व भारतीय धर्मनिरपेक्षता के मूलाधार है। महात्मा गांधीजी को सर्वधर्म समभाव आधारित धर्मनिरपेक्षता अपेक्षित थी एवं पंडित नेहरू को तर्कबुद्धि आधारित निरपेक्ष चिंतन तथा लौकिकता पर आधारित धर्मनिरपेक्षता आपेक्षित थी। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने के कारण धर्मनिरपेक्ष शिक्षा देना आवश्यक है।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ (Meaning of Secularism) :

धर्म विहीनता यह धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य नहीं है। बल्कि सभी धर्मो में सम्मिलित आदर्श विचार, मूल्य, तत्व का अपने जीवन में अंगीकृत करना है। धर्मनिरपेक्षता मानव के नैतिक, चारित्रिक विकास के लिए सर्वधर्म समभाव का दृष्टिकोण विकसित करता है। वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में धर्म निरपेक्षता यह महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। धर्मनिरपेक्षता को अंग्रेजी में 'सेक्युलरिज्म' (Secularism) कहा जाता है। 'सेक्युलरिज्म' (Secularism) शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'सेकुलम' (Seculme) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ वर्तमान संसार या कालिक जगत है। अर्थात धर्मनिरपेक्षतावादी पारलौकिकता जैसे- आत्मा, परमात्मा, अमरता आदि पर विश्वास नहीं रखते है किन्तु वर्तमान सांसारिक जीवन या लौकिकता जैसे- मानव प्रेम, सहयोग, सहजीवन, दया, क्षमा, शांति आदि मानवीय मूल्यों में विश्वास करते है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (रिकवरी ऑफ़ फेथ) के अनुसार, "धर्मनिरपेक्षता भारत की प्राचीन धार्मिक परंपरा है। यह व्यक्तिगत गुणों को समुदाय के सदस्यों के अधीन मानने के स्थान पर उनमे परस्पर सामंजस्य स्थापित करके धर्मपरायण व्यक्तियों में एकता अथवा सौदरः उत्पन्न करने का प्रयास करता है।"

"धर्मनिरपेक्षता वह विश्वास है जो राज्य, नैतिकता और शिक्षा को धर्म से स्वतंत्र रखता हो"

\- **चैम्बर्स शब्दकोश**

"धर्मनिरपेक्षता वह विश्वास है जो धर्म और धर्म के प्रसारक को राज्य की कार्योसे स्वतंत्र रखता हो"

\- **वेबस्टर शब्दकोश**

"धर्म निरपेक्षता, धार्मिकता को प्रश्रय नहीं देता है, अपितु उससे यह प्रतिध्वनित होता है कि राज्य किसी विशेष धर्म द्वारा शासित नहीं होगा। वस्तुतः धार्मिक सहिष्णुता एवं तटस्थता का दूसरा नाम धर्मनिरपेक्षता है।"

-डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

धर्मनिरपेक्षता के लक्षण एवं विशेषताएँ (Charecteristics of Secularism) :

- किसी विशेष धर्म का न तो समर्थन करना और न विरोध करना।
- व्यक्ति के प्राकृतिक एवं नैतिक विकास के लिए वर्तमान जीवन पर बल देना।
- परम्परावादी धर्म और अंधविश्वास का अस्वीकार करना।
- मानवाधिकार एवं वैज्ञानिकता को मानव विकास के लिए सर्वोत्तम मानना।
- सभी धर्मो का समान रुप से आदर करना।
- किसी धर्म विशेष को राज्य एवं संबंधित संस्थाओ द्वारा विशेष संरक्षण, विशेष सुविधा, प्राथमिकता प्रदान न करना।
- सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन में समानता प्रदान करना।
- सर्वधर्म समभाव, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सहिष्णुता, मानव धर्म का मानवीय एवं शाश्वत मूल्यों का स्वीकार करना।

धर्मनिरपेक्षता का स्वरुप (Nature of Secularism) :

भारत एक प्रजातंत्र राष्ट्र होने के कारण आदर्श नागरिकता की शिक्षा प्रदान करना आवश्यक है। भारतीय संविधान के अनुसार धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में सभी धर्मो को समान मान्यता प्रदान है। नागरिकों में धर्मनिरपेक्षता का भाव विकसित करना अत्यंत जरुरी है। शिक्षा द्वारा यह कार्य प्रभावशाली ढंग किया जा सकता है। ऐनी बेसेन्ट के अनुसार,मानवता की शिक्षा देकर विश्व में एकता की भावना विकसित की जा सकती है। सभी धर्मो अंतर्निहित मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाकर मानवता की ओर आकर्षित करने के लिए धर्म निरपेक्षवादी दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह किया है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार धर्मनिरपेक्षता को अध्यात्मवादी अथवा धर्मविरोधी समझना नितांत भ्रामक है।

भारतीय संविधान में 1976 के 42 वे संशोधन के अनुसार संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता का स्वीकार किया गया। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता एवं पंथनिरपेक्षता का अंगीकार किया है। भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत एवं सामूहिक रुप से किसी भी धर्म को अपनाने की स्वतंत्रता प्रदान करना ही धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है। भारतीय संविधान की धारा 15 एवं 16 धार्मिक भेदभाव अमान्य किया है। धारा 25 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के पालन की आझादी प्रदान करता है। धारा 23 के अनुसार राज्य द्वारा आर्थिक अनुदान प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में से धार्मिक शिक्षा की अनिवार्यता अमान्य की गई है। धारा 325, 350, 352 के अनुसार धर्म के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र की निर्मिती पर विरोध किया है। सारांश रूपसे कहा जा सकता है की भारतीय संविधान के विविध धाराओं में धर्मनिरपेक्षता के तत्व सम्मिलित है। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ, एक ऐसा राज्य जिसमे सभी धर्मो से समान बर्ताव करे। राज्य धर्म के संदर्भ में पूर्णत: तटस्थ रहेगा एवं किसी धर्म में हस्तक्षेप न करते हुए सभी धर्मों को समान संरक्षण प्रदान करेगा। राज्य के नीति निर्धारण में सभी धर्मो सभी धर्मो समान

महत्व देगा। राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा। संविधान की धारा25-28 में विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रदान की है। अर्थात भारतीय समाज को अपने धर्म में विश्वास एवं उपासना का स्वतंत्रता की अनुमति है।

धर्मनिरपेक्षता में शिक्षा की भूमिका (Role of education in Secularism:

वर्तमान में परलौकिक तत्वों पर मानव का विश्वास न रहकर भौतिकवाद पर विश्वास बढ़ रहा है। आत्मा, परमात्मा, अमरता आदि परलौकिक तत्वों पर विश्वास नहीं रहां है। किन्तु मानव कल्याण एवं जनकल्याण हेतु मानव प्रेम, सहयोग, सहजीवन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, दया, क्षमा, शांति आदि मानवीय मूल्यों में विश्वास रहना नितांत आवश्यक है। स्वतंत्रता के उपरांत धर्मनिरपेक्षता को भारतीय संविधान में सम्मिलित किया गया। भारतीय संविधान में अंतर्निहित मूल्यों का परिपोष करने के लिए शिक्षा की सुचारु व्यवस्था करना आवश्यक है। भारतीय संविधान के अनुसार सरकारी आनुदान वाले विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने पर पाबंदी लगाई है। किन्तु यदि कोई यदि कोई धार्मिक शिक्षा देने हेतु विद्यालय संचालित करना चाहता है तो उस विद्यालय को बिना किसी भेदभाव से सरकारी अनुदान दिया जायेगा।

धर्मनिरपेक्षता को सर्वधर्मसमभाव की दृष्टी से शिक्षा द्वारा प्रचलित करना है। उदारवादी, मानवतावादी, समन्वयवादी दृष्टिकोण से शिक्षा व्यवस्था को विकसित करना चाहिए। शिक्षा की माध्यम से नागरिकों को शिक्षा के माध्यम से नैतिक, चारित्रिक विकास पर बल देना चाहिए। शाश्वत जीवन को विकसित करने की शिक्षा हमें प्रदान करनी चाहिए। महापुरुषों का जीवन चरित्र, धर्मग्रंथ में सम्मिलित समान तत्व, सर्वधर्म समभाव के सिद्धांत, नैतिक मूल्यों का समावेश शिक्षा में करना आवश्यक है।

विभिन्न आयोग तथा समितियों ने सर्वधर्मसमभाव की दृष्टी से शिक्षा देनेपर बल दिया है। शिक्षाशास्त्री हुमायूँ कबीर का मानना है कि,वस्तुत: जब धर्म कट्टरता, अंधविश्वास के मकडजाल में फास जाता है तो संकुचित मनोवृत्ती उपजती है एवं लोगो में संघर्ष की उत्पत्ति होती है। एतिहासिक घटनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में धर्म एवं जाती से संबंधित हिंसा का प्रमाण अधिक है। ऐसी स्थिति में शिक्षा में धर्म के स्थान का विरोध करते है। बर्ट्रेंड रसेल के अनुसार धर्म की बातों को जनमानस बिना चिंतन-मनन के ग्रहण कर लेती है जिससे अंधविश्वास फैलता है।

धार्मिक शिक्षा का समर्थन करते हुए श्री अरविंद ने कहा है कि, चाहे धर्म की शिक्षा किसी रुप में स्पष्ट रुप से दी जाये या न दी जाए, किन्तु ईश्वर के लिए, मानवता के लिए, राष्ट्र के लिए तथा स्वयं के लिए, धर्म के सारतत्व को प्रत्येक शिक्षा संस्था का आदर्श बनाना चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत धर्म निरपेक्षता का स्वीकार किया है किन्तु धर्म निरपेक्षता के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाने में भारतीय शिक्षा व्यवस्था अपुरी पड़ी है। प्राचीन काल से दैदीप्यमान सांस्कृतिक धरोहर से प्रसिद्ध भारत भूमि को अपने पूर्व मक़ाम तक पहुचाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

सद्प्रवृत्तियां, मूल्यों, सदाचार, सहअस्तित्व, नैतिकता, चरित्र्यता, समाजशिलता, दया, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुभाव, वात्सल्य आदि मानव जीवन के लिए आवश्यक है। उक्त मूल्यों का समावेश

हमारे व्यवहार में रहना शाश्वत मानव जीवन के लिए आवश्यक है। यह शिक्षा के बिना असंभव है। धर्म में अधिष्ठित नैतिकता, मूल्य, चारित्रिक गुण आदि का समावेश पाठ्यक्रम करके विद्यार्थियों का सर्वांगिक विकास किया जा सकता है। संस्कृति धर्मसे जुडी होती है। संस्कृति का संस्करण, विकास एवं स्थानातरण शिक्षा के द्वारा ही संभव है। शिक्षा एवं धर्म का अत्यंत घनिष्ट संबंध है। लोकतांत्रिक मूल्यों का परिपोष शिक्षा की माध्यम किया जाता है। अभिनव धर्मो जैसे - बौद्ध धर्म द्वारा लोकतांत्रिक मूल्यों का स्वीकार किया है। धर्म द्वारा अपेक्षित आदर्श गुण मानव के जीवन में उतरने के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। सुधारवादी और विज्ञान पर आधारित धर्म एवं शिक्षा आधुनिक मानवी जीवन को सफल बना सकते है। धर्म एवं शिक्षा की माध्यम से विद्यार्थियों में शाश्वत मूल्यों का विकास किया जा सकता है। धर्म के अनुसार अपेक्षित जनकल्याणकरी नागरिक का निर्माण किया जा सकता है। शिक्षा की माध्यम से विद्यार्थियों में सदगुणों का विकास किया जा सकता है।

आधुनिक जीवन शैली का अनिष्ट परिणाम मानव पर हो रहा है। तनाव, चिंता, न्युनत्व, कुसमायोजन, शारीरिक एवं मानसिक रोग आदि का प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ पर हो रहा है। इससे मानवी जीवन एवं समाज जीवन प्रभावित हो रहा है। शाश्वत समाज जीवन के लिए शांतिमय पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की नितांत आवश्यकता है। ध्यान, योग, प्राणायाम, मौन, साधना, उपासना व्यक्ति को मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करता है। मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए सभी धर्मो में अंतरनिहित मुलभूत तत्व, आदर्श नियम, मूल्यों का समावेश शिक्षा में किया जाना चाहिए। हमारे भविष्यकालिक नागरिक सार्वभौमिक धर्मनिरपेक्ष बनने चाहिए। संकुचित मनोवृत्तियों पर बल देनेवाले विषयवस्तु को पाठ्यक्रम में संम्मिलित नहीं करना चाहिए। शिक्षा में पारस्पारिक विचार-विमर्श को स्थान देना चाहिए। पाठ्यसहगामी गतिविधियों में राष्ट्रिय उत्सव एवं सभी धर्मीय त्योहारों का आयोजन कराना चाहिए। जीवन मूल्यों, राष्ट्रिय एवं अंतरराष्ट्रीय सदभाव परक मूल्यों, मानवीय मूल्यों का विकास एवं संवर्धन शिक्षा की सहायता से किया जाना चाहिए। वसुधैंव कुटुम्बकम् की भावनाओं विकास करने में शिक्षा एक अदभुत शक्ति के रुप में कार्य कर सकती है।

नैतिक मूल्यों का विकास करना, मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास करना, सामाजिक आदर्शो का विकास करना, सामाजिक मूल्यों का विकास करना, संविधानिक मूल्यों का परिपोष करना, चारित्रिक गुणों का विकास करना, मानवाधिकार के प्रति जागरूकता निर्माण करना, विश्वकल्यान, लोककल्यान की भावना का विकास करना, वैश्विक शांति की भावना का विकास करना, आदर्श जीविकोपार्जन के लिए कौशल एवं प्रशिक्षण प्रदान करना, लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास करना, सर्वधर्म समभाव की भावना का विकास करना आदि उद्देश्यों पर आधारित शिक्षा होनी चाहिए।

प्रजातांत्रिक एवं धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में धार्मिक शिक्षा देना बहुत बड़ी चुनौती है। धर्म निरपेक्ष तत्वों का तंतोतंत पालन करते हुए धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है। अन्यथा जातीय तेढ, धार्मिक विद्वेष, मानसिक अंतर्द्वंद्व, धार्मिक घृणा, धार्मिक एवं जातीय अलगाव और नफरत, धार्मिक असहिष्णुता, धार्मिक कट्टरता, जातीय एवं धार्मिक दंगे आदि विध्वंसक क्रियाओं को बढ़ावा मिल सकता है। पाखंड, अंधविश्वास,

कुरीतियाँ, धार्मिक तेढ, जातीय विद्वेष बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करने वाली धार्मिक शिक्षा नहीं देनी चाहिए। आज के विद्यार्थी कल नागरिक होते है। इसलिए धार्मिक शिक्षा सोच समझकर एवं सावधानीपूर्वक देनी आवश्यक है।

शिक्षा की सहायता से धार्मिक समानता बनाये रखना आज के वर्तमान समाज की नितांत आवश्यकता है। शिक्षा की माध्यम से विद्यार्थियों में सर्वधर्म समभाव भावना की विकसित करना वर्तमान शिक्षा का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। धर्म संस्कृति का अभिन्न अंग है एवं शिक्षा संस्कृति की वाहिका है। इस हेतु शिक्षा पर आधिक जबाबदेही आती है। संविधानिक मूल्यों का परिपोष शिक्षा की सहायता से ही संभव है। धार्मिक सहिष्णुता के तत्वों का समावेश शिक्षा में होना आवश्यक है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि,

- धार्मिक शिक्षा सभी धर्मो के मुलतत्वों पर आधारित हो।
- धार्मिक शिक्षा देते समय समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
- विविध धर्म के संस्थापक, विचारक, महापुरुषों की जीवनियाँ पाठ्यक्रम में संम्मिलित करनी चाहिए।
- सभी धर्मो की सामान्य जानकारी विद्यार्थियों को देनी चाहिए।
- धर्मनिरपेक्ष शिक्षा में सभी धर्मो का आदर रखना सीखना चाहिए।
- विद्यालयों में किसीभी धर्म के अनुयायियों के साथ भेदभाव नहीं करना चाहिए।
- जाती,धर्म एवं क्षेत्र में अनिष्ट भावना निर्माण करनेवाला पाठ्यक्रम नहीं होना चाहिए।
- शिक्षा का सभी को स्वातंत्र्य रहना चाहिए।
- धार्मिक भावनाओं को ठेस ना पहुंचे यह हमें ध्यान में रखना है।
- धर्मनिरपेक्षता के मूल सिद्धांतो के आधार पर ही शिक्षा दी जानी चाहिए।
- धर्मनिरपेक्षता के लिए कार्य करनेवाले महान विभूतियों के कार्य एवं विचारो से अवगत कराना आवश्यक है।
- धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देने हेतु विद्यालयों का वातावरण निर्माण करना चाहिए।
- शारीरिक शिक्षा, पाठ्यसहगामी गतिविधियाँ, जनशिक्षा, विद्यालयोंकी दिनचर्या एवं वातावरण धर्मनिरपेक्षता को प्रोत्साहित करनेवाला बनाना आवश्यक है।
- मानव कल्याण एवं जनकल्याण शिक्षा का प्रधान उद्देश्य होना चाहिए।
- सद्प्रवृत्तियां, मूल्यों, सदाचार, सहअस्तित्व, नैतिकता, चरित्र्यता, समाजशिलता, दया, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, बंधुभाव, विवेकशीलता, वात्सल्य, मानव प्रेम, सहयोग, सहजीवन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, दया, क्षमा, शांति आदि मानवीय मूल्यों विकास शिक्षा से होना चाहिए।

- भारतीय संविधान में अंतर्निहित मूल्यों का परिपोष करना शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए।
- धर्मनिरपेक्षता को सर्वधर्मसमभाव की दृष्टी से शिक्षा द्वारा प्रचलित करना है।
- उदारवादी, मानवतावादी, समन्वयवादी दृष्टिकोण से शिक्षा व्यवस्था को विकसित करना चाहिए।
- शिक्षा की माध्यम से नागरिकों को शिक्षा के माध्यम से नैतिक, चारित्रिक विकास पर बल देना चाहिए।
- लोकतांत्रिक मूल्यों का परिपोष शिक्षा की माध्यम किया जाना चाहिए।
- ध्यान, योग, प्राणायाम, मौन, साधना, उपासना व्यक्ति को मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करती है, जिसका समावेश शिक्षा में होना चाहिए।

धर्मनिरपेक्षता निर्माण में भारतीय संविधान की भूमिका :

भारत जैसे विविध धर्मीय देश में किसी एक विशेष धर्म को विशेष स्थान देना उचित नहीं था। इस कारणवश भारतीय विद्वानों ने धर्म निरपेक्षता के मूल्यों का स्वीकार किया। भारतीय संविधान की विभिन्न धाराओं में धर्मनिरपेक्षता के तत्व संम्मिलित है। भारतीय समाज को धर्मनिरपेक्ष बनाने में भारतीय संविधान ने निम्नवत भूमिका हाशिल की है-

- भारतीय संविधान में 1976 के 42 वे संशोधन के अनुसार संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता का स्वीकार किया गया। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता एवं पंथनिरपेक्षता का अंगीकार किया है। भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत एवं सामूहिक रुप से किसी भी धर्म को अपनाने की स्वतंत्रता प्रदान करना ही धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है।
- भारतीय संविधान की धारा 15 एवं 16 धार्मिक भेदभाव अमान्य किया है।
- धारा 23 के अनुसार राज्य द्वारा आर्थिक अनुदान प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में से धार्मिक शिक्षा की अनिवार्यता अमान्य की गई है।
- धारा 25 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के पालन की आझादी प्रदान करता है। किसी भी धर्म को मानना, आचरण में लाना एवं प्रसार करना आदि की अनुमति होगी।
- संविधान की धारा 25-28 में विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रदान की है। अर्थात भारतीय समाज को अपने धर्म में विश्वास एवं उपासना का स्वतंत्रता की अनुमति है।
- धारा 28 के अनुसार सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। किन्तु विद्यार्थियों को अनिवार्य धार्मिक शिक्षा न देनेवाले विद्यालयों को राज्य अनुदान देते रहेगा। उक्त सुझावों के अनुसार ही सरकारी एवं निजी विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दी जाएगी।

- धारा 29(2) के अनुसार धर्म, वंश, जाति, भाषा के आधार पर राज्य द्वारा पोषित सहायता से वांछित नहीं किया जा सकता।
- धारा 30(1) के अनुसार धर्म एवं भाषा के आधार पर अल्पसंख्याक वर्गों को शिक्षा संस्थाओं का स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।
- धारा 30(2) के अनुसार भाषा, धर्म, अल्पसंख्यांक के आधार सहायता के संदर्भ में भेदभाव नहीं करेगा।
- भारतीय संविधान के अंतर्गत मुलभुत अधिकारों का पालन किया जायेगा।
- धारा 325, 350, 352 के अनुसार धर्म के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र की निर्मिती पर विरोध किया है।
- भारतीय उच्चतम न्यायालयों ने अनेक न्यायालयीन निकालों में धर्मनिरपेक्षता का पुरस्कार किया है।

सारांश रूपसे कहा जा सकता है की भारतीय संविधान के विविध धाराओं में धर्मनिरपेक्षता के तत्व सम्मिलित है। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ, एक ऐसा राज्य जिसमे सभी धर्मो से समान बर्ताव करे। राज्य धर्म के संदर्भ में पूर्णत: तटस्थ रहेगा एवं किसी धर्म में हस्तक्षेप न करते हुए सभी धर्मों को समान संरक्षण प्रदान करेगा। राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा एवं राज्य के नीति निर्धारण में सभी धर्मो को समान महत्व देगा।

2.2.4. धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा :

जो प्राणि-मात्र को स्थायित्व एवं शक्ति प्रदान करता है उसे धर्म कहते है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार व्यक्ति में अंतर्निहित आध्यत्मिक तथा दैवी शक्ति ही धर्म है। भारतीय दर्शन में धर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान, विवेक, सत्य और अक्रोध यह धर्म के दस लक्षण बताये है। धर्म एवं शिक्षा में घनिष्ठ संबंध होने के कारण धर्म को शिक्षा से अलग नहीं कर सकते। विद्यालयों की दिनचर्या में सर्वधर्म प्रार्थना, मौन चिंतन, सामाजिक एवं धार्मिक सलोखा निर्माण करनेवाली गतिविधियाँ, धार्मिक एवं नैतिक विचारकों का विचारमंथन, महान पुरुषों की जीवनगाथा, आदर्श एवं प्रेरनादायी पुस्तक एवं वचनों का पठन आदि सम्मिलित होने चाहिए।

नैतिक मूल्यों का विकास करना, मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास करना, सामाजिक आदर्शो का विकास करना, सामाजिक मूल्यों का विकास करना, संविधानिक मूल्यों का परिपोष करना, चारित्रिक गुणों का विकास करना, मानवाधिकार के प्रति जागरूकता निर्माण करना, विश्वकल्यान, लोककल्यान की भावना का विकास करना, वैश्विक शांति की भावना का विकास करना, आदर्श जीविकोपार्जन के लिए कौशल एवं प्रशिक्षण प्रदान करना, लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास करना, सर्वधर्म समभाव की भावना का विकास करना आदि उद्देश्यों पर आधारित शिक्षा होनी चाहिए।

2.2.5. पाठसार / सारांश :

धर्म एवं मानव के बिच अटूट संबंध प्राचीन काल से रहा है। धर्मसत्ता एवं राजसत्ता के संघर्ष से ही धर्मनिरपेक्षता का मूल्य विकसित हुआ है। धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धी' नामक धातु से हुई है। जिसका अर्थ 'धारण करना' होता है। अर्थात सबको धारण करने वाली अथवा सबको एक सूत्र में बंधने वाली व्यवस्था धर्म कहलाती है। सद्प्रवृत्ति, सर्वजनहिताय दृष्टिकोण, नैतिकता, आदर्श आचरण, मूल्य आदि को अपनाकर कार्य करता है वही धर्म कहलाता है। आचार एवं विचार यह क्रमशः धर्म के आतंरिक एवं बाह्य स्वरुप है। आचार स्थुल प्रकृति का होता है और विचार सूक्ष्म प्रकृति का होता है। विश्व कल्यान, मानव कल्याण, सर्वजन हिताय- सर्वजन सुखाय यह मूलाधार है। अर्थात सभी धर्म के रास्ते अलग है किन्तु मंजिल एक ही है। अपने सर्वशक्तिमान दैवत को अल्लाह, वाहेगुरु, ईश्वर, अहर्त, ईसा, तथागत कहता है। किन्तु सभी धर्म मानव कल्याण की ही बात करते है।

सामाजिक शिक्षा की माध्यम से सर्वधर्म समभाव की भावना विकसित करनी चाहिए। धर्म एवं शिक्षा में घनिष्ठ संबंध होने के कारण धर्म को शिक्षा से अलग नहीं कर सकते। विद्यालयों की दिनचर्या में सर्वधर्म प्रार्थना, मौन चिंतन, सामाजिक एवं धार्मिक सलोखा निर्माण करनेवाली गतिविधियाँ, धार्मिक एवं नैतिक विचारकों का विचारमंथन, महान पुरुषों की जीवनगाथा, आदर्श एवं प्रेरनादायी पुस्तक एवं वचनों का पठन आदि सम्मिलित होने चाहिए। जिससे विद्यार्थियों में सर्वधर्म के प्रति आदर निर्माण किया जाएगा। भारतीय संविधान में 1976 के 42 वे संशोधन के अनुसार संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता का स्वीकार किया गया। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता एवं पंथनिरपेक्षता का अंगीकार किया है। भारतीय धर्मनिरपेक्षता का मूलाधार निधर्मिकरण नहीं बल्कि सभी धर्मो का समान आदर करना है। भारतीय संविधान सभी धर्मो को समान स्वतंत्रता प्रदान करता है। सर्वधर्म समभाव, मैत्रीभाव, सभी धर्मो का सहअस्तित्व, सहिष्णुता, निष्पक्षता आदि तत्व भारतीय धर्मनिरपेक्षता के मूलाधार है। धर्मांध व्यक्ति अगर अन्य धर्मियों की घृणा करता है तो उसे धर्म निरपेक्षता की शिक्षा देना आवश्यक है। मानव को मानव बनाए रखने का कार्य धर्मनिरपेक्षता की सहायता से किया जा सकता है। मेरे धर्म के साथ-साथ अन्य धर्म का आदर, सन्मान करना धर्म निरपेक्षता के तत्व सिखाती है। धर्म निरपेक्षता के भाव का जन-जन में, मन-मन में, देश-देश में विकास करना शिक्षा का प्रधान दाईत्व है। इस उद्देश्य में शिक्षा सफल होती है, तभी शिक्षा विश्व शांति, मानव कल्याण, आंतरराष्ट्रीय सदभाव का विकास कर सकती है।

2.2.6. कठिन शब्दावली :

धर्म का अर्थ (Meaning of Religion) -

"यतोभुदय नि:श्रेयसिधि: स धर्म" अर्थात धर्म वह है जो मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति एवं कल्याण में सहायक हो।

- **महर्षि कणाद**

"व्यक्ति में अंतर्निहित आध्यत्मिक तथा दैवी शक्ति ही धर्म है।"

- **स्वामी विवेकानंद**

"धर्म एक सांस्कृतिक प्रतिकृति है जो अलौकिक अथवा असाधारण से उस प्रकार के संबंध रखता है, जैसे की उन विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा समझे जाते है जो की उसमे अलिप्त है।"

- **किलपैट्रिक**

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ (Meaning of Secularism) -

"धर्मनिरपेक्षता वह विश्वास है जो राज्य, नैतिकता और शिक्षा को धर्म से स्वतंत्र रखता हो"

- **चैम्बर्स शब्दकोश**

"धर्मनिरपेक्षता वह विश्वास है जो धर्म और धर्म के प्रसारक को राज्य की कार्योसे स्वतंत्र रखता हो"

- **वेबस्टर शब्दकोश**

"धर्म निरपेक्षता, धार्मिकता को प्रश्रय नहीं देता है, अपितु उससे यह प्रतिध्वनित होता है कि राज्य किसी विशेष धर्म द्वारा शासित नहीं होगा। वस्तुतः धार्मिक सहिष्णुता एवं तटस्थता का दूसरा नाम धर्मनिरपेक्षता है।"

- **डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन**

2.2.7. अभ्यास-प्रश्न / बोध-प्रश्न :

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारतीय दर्शन में धर्म के कितने लक्षण बताये गए है।

(क) 01

(ख) 10

(ग) 100

(घ) 1000

2. 'रिलिजन' (Religion) शब्द की व्युत्पत्ति किस भाषा से हुई ?

(क) स्पैनिश भाषा

(ख) लैटिन भाषा

(ग) फारसी भाषा

(घ) उर्दू भाषा

3. धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा समिति(1959-60) का गठन किसकी अध्यक्षता में हुआ ?

(क) डॉ. मुदलियार

(ख) डॉ. कोठारी

(ग) श्री प्रकाश

(घ) श्री यशपाल

4. धर्म निरपेक्षतावाद का जनक किसे कहा जाता है।

(क) कार्ल मार्क्स
(ख) श्री अरविद
(ग) महात्मा गांधी
(घ) जार्ज जैकब होलियॉक

5. भारतीय संविधान की उदेशिका में धर्मनिरपेक्षता का समावेश कब किया गया।

(क) 1976
(ख) 1947
(ग) 1950
(घ) 1986

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्म से आप क्या समझते है ?
2. धर्म का स्वरुप स्पष्ट कीजिए।
3. धर्म एवं शिक्षा के संबंध पर प्रकाश डालिए।
4. धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता स्पष्ट कीजिए।
5. सर्वधर्म समभाव की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।
6. धर्मनिरपेक्षता का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
7. धर्मनिरपेक्षता के लक्षण एवं विशेषता बताईए।
8. धर्मनिरपेक्षता का स्वरुप स्पष्ट कीजिए।
9. धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा के संबंध पर प्रकाश डालिए।
10. धर्मनिरपेक्षता में शिक्षा की भूमिका संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. विविध शिक्षा आयोग एवं समिति की परिप्रेक्ष्य में धर्म एवं शिक्षा की चर्चा कीजिए।
2. धर्मनिरपेक्षता को अधिक सकारात्मक बनाने में शिक्षा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
3. धर्मनिरपेक्षता धर्मसे अधिक व्यापक संप्रत्यय है - स्पष्ट कीजिए।
4. धर्मनिरपेक्षता का स्वरुप एवं प्रकृति बताते हुए धर्मनिरपेक्षता को सफल बनाने में शिक्षा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
5. धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा का परस्पर संबंध विस्तार से स्पष्ट कीजिए।
6. धर्मनिरपेक्षता की भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में चर्चा कीजिए।
7. समाज को धर्मनिरपेक्ष बनाने में एक आदर्श नागरिक के रुप में आप क्या-क्या प्रयास करोगे ?
8. धर्म, धर्मनिरपेक्षता एवं शिक्षा के संबंध में संविधानिक प्रावधानों का विवरण दीजिए।
9. "भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है" चर्चा कीजिए।

10. भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाने में शिक्षक एवं शिक्षा व्यवस्था की प्रमुख भूमिका स्पष्ट कीजिए।

2.2.8. संदर्भ-ग्रंथ-सूची :

- किरण, चांद (2013). *शिक्षा: सामाजिक परिप्रेक्ष्य,* दिल्ली, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.
- गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता अलका (2015). *शिक्षा के समाजशास्त्रिय परिप्रेक्ष्य,* इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन.
- गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता अलका (2015). *भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याये,* इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन.
- तरुण, हरीवंश, (2006), "मानक शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक समाजशास्त्र ", नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान।
- दुनाखे, अरविंद (2008). *भारतीय समाज, शिक्षक व शिक्षण,* पुणे, नित्य नूतन प्रकाशन.
- पारसनिस, न.रा. (2007). *शिक्षणाची तात्विक व समाजशास्त्रिय भूमिका,*पुणे, नित्य नूतन प्रकाशन.
- पाण्डेय, के.पी. (2011). *शिक्षा के सामाजिक आधार,* वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- मालवीय, राजीव, (2016), " शिक्षा के मूल सिद्धांत", इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
- माथुर,एस.एस. (2015). *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रिय आधार* , आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन.
- रूहेला, एस.पी. (2015). *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रिय आधार* , आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन.
- लाल, रमन बिहारी, (2006), "शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजशास्त्रीय सिद्धांत", मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन।
- शुक्ला, के.के, परिहार, ए.जे.एस (2011), "शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार "मेरठ, आर.लाल. बुक डपो।
- BoixMansilla, V. (2005). *Assessing student work at disciplinary crossroads.Change*, January/February, 14-21.
- Beane, J. A. (1995). *Curriculum integration and the disciplines of knowledge*. Phi Delta Kappan,77(4), 616-622

- Foshay, A. W. (1970). *How fare the disciplines? Phi Delta Kappan.* 51(7), 349-352.
- Heckhausen, Heinz. *"Discipline and Interdisciplinarity."* Interdisciplinarity. Leo Apostel et al.,eds. OECD: Paris, 1972.
- Youngblood, Dawn, 2007. "*Interdisciplinary Studies and the Bridging Disciplines: A Matter ofProcess.*" Journal of Research Practice, v.3, i.2.
- http://www.eric.ed.gov/ERICWebPortal/contentdelivery/servlet/ERICServlet?accno=EJ800366.
- https://en.wikipedia.org/wiki/Outline_of_academic_disciplines#/media/File:Disciplines_mind_map.jpg

इकाई-3 – मानवाधिकार एवं शिक्षा

इकाई की रुपरेखा

2.3.0. उद्देश्य

2.3.1. प्रस्तावना

2.3.2. मानवाधिकार का अर्थ

2.3.3. मानवाधिकार की व्यापकता

2.3.4. मानवाधिकार का क्षेत्र मानवाधिकारों के वर्ग –

2.3.5. मानवाधिकार सामाजिक :, संस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ

2.3.6. मानवाधिकार की आवश्यकता

2.3.7. मानवाधिकार का समकालीन परिदृश्य

2.3.8. प्रमुख नियम, अधिनियम

2.3.9. मानवाधिकार को सुनिश्चित करने में चुनौतियाँ

2.3.10. मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयास

2.3.11. अंतररास्तरीय मानवाधिकार संस्थाएं

2.3.12. मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा पत्र के मुख्य तत्व और विशेषता

2.3.13. नागरिक अधिकार कानून

2.3.14. भारतीय संविधान की भूमिका

2.3.15. मानवाधिकार आयोग

2.3.16. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना

2.3.17. सारांश

2.3.18. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.3.0. शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- मानवाधिकार के अर्थ ,व्यापकता एवं क्षेत्र को समझ सकेंगे।
- मानवाधिकार की आवश्यकता व समकालीन परिदृश्य को समझ सकेंगे।
- मानवाधिकार को सुनिश्चित करने में होने वाली चुनौतियों को समझ सकेंगे।
- मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयास के बारे में जान सकेंगे।
- मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा पत्र के मुख्य तत्व और विशेषता के बारे में जान सकेंगे।
- नागरिक अधिकार कानून से परिचित हो सकेंगे।

- मानवाधिकार के नीतिगत परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में भारतीय संविधान की भूमिका को जान सकेंगे।
- मानवाधिकार आयोगके बारे जान सकेंगे।

2.3.1. प्रस्तावना

मानवाधिकार एक प्राकृतिक चीज है इसलिए इसे समझना काफी सरल है। मानवाधिकार जितने सरल है उतना ही कठिन है इसको एक परिभाषा के दायरे में बाँधना। अधिकार शब्द को कई रूपों में परिभाषित करने का प्रयास किया गया है लेकिन एक तथ्य पर लगभग सभी विद्वान सहमत हैं कि अधिकार, कुछ करने या रखने की आजादी है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अधिकार विधि द्वारा मान्यता प्राप्त और विधि द्वारा संरक्षित होते हैं। सामान्य अधिकारों के बाद आती है अधिकारों की। ये विधिक अधिकार, किसी विशेष विधि के दायरे में आने वाले व्यक्ति को उस विधि द्वारा प्राप्त होते हैं। विधिक अधिकार, आत्योंतिक (सम्पूर्ण) नहीं होते हैं और ये विधि द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से सीमित होते हैं। इसी क्रम मे अलग चरण है मूल अधिकारों का मौलिक अधिकार वे हैं जो किसी नागरिक के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक होते हैं। इन्हीं अधिकारों को कहा जा सकता है कि मानवाधिकार, अधिकारों की पराकाष्ठा है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि मानवाधिकार वे अधिकार होते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव मात्र होने के नाते ही प्राप्त हो जाते हैं। भले ही उसकी राष्ट्रीयता, जाति, धर्म, लिंग, वर्ग आदि कुछ भी हो। (मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 में मानवाधिकारों को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि **''व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से संबंधित वे अधिकार मानवाधिकार कहलाते हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत हैं, अंतरराष्ट्रीय संधियों में उल्लिखित हैं अथवा भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं।''**मानवाधिकार सभी लोगों के लिए समान होते हैं। मानव समाज में प्रत्येक स्तर पर कई तरह के विभेद उपस्थित हैं। भाषा, रंग प्रजातीय स्तर और मानसिक स्तर पर मानव –मानव के बीच में भेद किया जाता है। इन सबके बावजूद कुछ अनिवार्यताएं सभी समाजों में समान रूप से पायी जाती हैं। ये अनिवार्यताएं ही मानवाधिकार हैं। ये अधिकार मानव को इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि वह मानव होता है।

अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करना और सामूहिक तथा प्रभावपूर्ण प्रयत्नों से आने वाली ख़बरों का उन्नमूलन करना, शांति भंग करने वाली चेष्टाओं को दबाना तथा न्याय और अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के आधार पर शांति पूर्ण साधनों से उन अंतरराष्ट्रीय विवादों और समस्याओं को सुलझाना जिससे शांति भंग होने की आशंका हो। सब राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना।

2.3.2. मानवाधिकार का अर्थ-

अधिकार शब्द का सामान्य भाषा में अर्थ है कि व्यक्ति कुछ मूलभूत तत्वों युक्त है। मानवाधिकारों को कानूनी, सामाजिक व नैतिक तीनों रूपों में परिभाषित करते का प्रयास विद्वानों ने किया है। आर.जे.विंसेट के मुताबिक-''मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के नाते

प्राप्त हैं। मानवाधिकारों का आधार मानव स्वभाव में निहित है।''मानवाधिकार को परिभाषित करते हुढ डेविड सेलबाई कहते हैं कि - ''मानवाधिकार विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त हैं क्योंकि वे स्वयं में मानवीय है, वे उत्पन्न नहीं किए जा सकते, खरीदे नहीं जा सकते और ये अधिकार संविदावादी प्रक्रियाओं से भी मुक्त होते हैं।'' इसी प्रकार ए.ए. सईद का कहना है कि –''मानव अधिकारों का संबंध व्यक्ति की गरिमा से है एवं आत्म सम्मान का भाव जो व्यक्तिगत पहचान को रेखांकित करता है तथा मानव समाज को आगे बढ़ाता हैं।'' उपरोक्त सभी परिभाषाओं का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इन परिभाषाओं में मुख्य रूप से तीन बातों पर जोर दिया गया है- मानव स्वभाव, मानव गरिमा एवं समाज का अस्तित्व। इस प्रकार कहा जा सकता है – कि मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य के जीवन, उसके अस्तित्व और व्यक्तित्व के विकास के लिए आनिवार्य हैं।

2.3.3. मानवाधिकार की व्यापकता –

आज चारों ओर मानवाधिकारों पर चर्चा हो रही है, इस विषय पर सेमिनार और सम्मेलन आयोजित किए जा रहे हैं। दरअसल जैसे–जैसे कोई समाज सभ्य और विकसित होता जाता है, अधिकार, कुछ करने या रखने की आजादी है और यह आजादी विधि द्वारा मान्यता प्राप्त व संरक्षित है। इसी प्रकार मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव मात्र होने के नाते प्राप्त होते हैं, भले ही उसका लिंग, राष्ट्रीयता, वर्ग धर्म आदि कुछ भी हो। आज हमें जो मानवाधिकार प्राप्त हैं, वे हमें एकदम से प्राप्त नहीं हो गए हैं वरन् इनकी प्रगति धीरे-धीरे,कदम-दर-कदम हुयी है। कहा जा सकता है कि मानवाधिकारों का इतिहास काफी पुराना है, बेहद लंबा है। प्रस्तुत अध्याय में हम मानवाधिकार के इतिहास की ही चर्चा करेंगे। यह सत्य है कि मानवाधिकार की अवधारणा बीसवीं सदी में अधिक लोकप्रिय हुयी लेकिन मानवाधिकारों का अस्तित्व तभी से है जब से मानव ने सभ्य होना सीखा। कुछ विद्वानों के मुताबिक मानवाधिकारों की जड़े प्राचीन यूनान एवं रोम तक जाती हैं जहां स्टाईल विद्वानों ने सबसे पहले मानवाधिकारों की व्याख्या करते हुए इसकी परिभाषा प्रतिपादित की। स्टाईल दार्शनिकों ने मानवाधिकारों को प्राकृतिक कानून के रूप में मान्यता दी थी। सुकरात और प्लेटो जैसे विद्वानों ने भी मानवाधिकारों पर अपने अमूल्य विचार व्यक्त किए थे जिस कारण उस समय मानवाधिकार से राजनैतिक आदर्शवाद भी जुड़ गया। धीरे-धीरे मान लिया गया कि प्रत्येक व्यक्ति के कुछ प्राकृतिक अधिकार होते हैं। चूंकि ये अधिकार प्राकृतिक होते हैं इसलिए माना जाता है कि ये राज्य (State) की स्थापना से पहले से ही अस्तित्व में हैं और इसलिए इन्हें राज्य से ऊपर माना जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद एक ऐसे संगठन की जरूरत महसूस की गयी जो दुनिया के विभिन्न देशों के बीच समन्वय का काम करे ताकि दुनिया को एक और विश्व युद्ध को सामना न करना पड़े। और इसी आवश्यकता के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी। राष्ट्र संघ की स्थापना से ही मानवाधिकार की अवधारणा काफी लोकप्रिय हो गयी और इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिल गयी। यह सत्य है कि राष्ट्र संघ की प्रस्तावना में मानवाधिकारों या प्राकृतिक अधिकारों का कहीं कोई जिक्र नहीं था लेकिन बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार के क्षेत्र में काफी काम किया। युद्ध के दौरान बंदी बनाये गए सैनिकों के मामलों में तो राष्ट्र संघ ने रेखांकित करने

योग्य कदम उठाए। उसने एक आचार–संहिता तैयार की ताकि युद्ध बंदियों के साथ कोई बुरा बर्ताव न कर सके। इसके अलावा राष्ट्र संघ की पहल पर अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की स्थापना हुयी और इसी के साथ श्रमिकों व बच्चों के अधिकारों को संरक्षित करने के प्रयास भी शुरू हो गए। हालांकि राष्ट्र संघ ने अपने छोटे से कार्यकाल में काफी उल्लेखनीय कार्य किए थे लेकिन फिर भी यह संघ अपने उद्देश्यों में पूरी तरह से सफल नहीं हो पाया। इसके बाद द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) आरंभ हुआ। इस विश्वयुद्ध की सामाप्ति के साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की स्थापना की गयी। इसके कुछ समय बाद ही 10 दिसंबर, 1948 को वैश्विक मानव अधिकार की घोषणा की गयी थी इसलिए इसी दिन को बाद में ‘मानव अधिकार दिवस’ के रूप में मनाया जाने लगा। धीरे-धीरे मानवाधिकारों की अवधारणा विस्तार पाती गयी और इसकी धारणा विकसित होती गयी। फिर राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व सामाजिक स्तरों पर एक मानवीय जीवन दर्शन का विकास होता गया। बाद के समय में विश्व की सरकारों से निम्नलिखित मानवाधिकारों की मांग की गयी :

1. संविधानवाद की मांग
2. प्रतिनिधि सरकार मांग
3. सार्विक मताधिकार
4. जन–शिक्षा
5. जनस्वास्थ्य
6. लोकतांत्रिक अधिकारों की मांग

अपने प्रगति की जांच करें –

मानवाधिकार का अर्थ एवं उसकी व्यापकता को स्पष्ट कीजिये।

2.3.4. मानवाधिकार का क्षेत्र – मानवाधिकारों के वर्ग

मानवाधिकारों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक, संवैधानिक और विधिक अधिकार आते हैं इसलिए विद्वानों ने इन्हें अपने–अपने तरीके से विभिन्न वर्गों में बांटने का प्रयास किया है। मानवाधिकारों को वर्गीकृत करने के दो प्रमुख आधार हैं- जीवन के विविध क्षेत्र और इन अधिकारों को बनाए रखने वाले कानून इस आधार पर मानवाधिकारों के प्रमुख वर्ग निम्न्लिखित हैं:

प्राकृतिक अधिकार -प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार हैं जो मानव स्वभाव में ही निहित हैं। स्व प्रज्ञा का अधिकार, मानसिक स्तर का अधिकार, जीवन का आधार आदि इसी श्रेणी में आते हैं। ये बेहद महत्वपूर्ण अधिकार होते हैं।

नैतिक अधिकार -नैतिक अधिकार निष्पक्षता और न्याय के सामान्य सिद्धांतों पर आधारित हैं। समाज में मानव इन अधिकारों को प्राप्त करने का आदर्श रखता है। सामाजिक व्यवस्था में ये अधिकार बहुत आवश्यक होते हैं।

मौलिक अधिकार – मौलिक अधिकार वे अधिकार हैं जिनके बिना मनुष्य का विकास नहीं हो सकता है। जैसे जीवन का अधिकार मानव जीवन का मूलभूत अधिकार है। इन अधिकारों की रक्षा करना प्रत्येक समाज का मूल कर्तव्य है। हमारे संविधान में प्रत्येक नागरिक को 6 मौलिक अधिकार दिए गए हैं।

कानूनी अधिकार -कानूनी अधिकार का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के कानून के समक्ष समान समझा जायेगा तथा साथ ही कानूनों का समान संरक्षण भी दिया जाना चाहिए। ये समय – समय पर प्रवर्तित किए गए हैं।

नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार -नागरिक और राजनीतिक अधिकार वे अधिकार हैं जिन्हें राज्य द्वारा स्वीकार किया जाता है।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार -प्रत्येक राज्य में अपनी परम्परा एवं सभ्यता के अनुसार इन अधिकारों को लागू किया जाता है। जैसे समाजवादी राज्यों में काम का अधिकार, समानता का अधिकार महत्वपूर्ण हैं तो दूसरी तरफ पूँजीवादी राज्यों में स्वतंत्रता का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार अधिक महत्तपूर्ण हैं। भारतीय संविधान के अध्याय चार के नीति निदेशक तत्व मनुष्य के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की मांग राज्य से करते हैं। यह निर्धारण करना कठिन है कि कौन सा अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है और कौन सा कम मानवा अधिकारों के संबंध में वैश्विक घोषणा पर मानव अधिकारों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

2.3.5. मानवाधिकार : सामाजिक ,सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ

आजादी से पहले भारत में मानवाधिकारों की स्थिति काफी खराब थी लेकिन आजदी के पहले से ही मानवाधिकारों की मांग उठने लगी थी। इतिहास के पन्ने पलटने पर पता चलता है कि भारत की संस्कृति पांच हजार साल से भी अधिक पुरानी है। इतिहास के इस लंबे काल खंड के दौरान भारत में मानवाधिकार एक परंपरा के रूप में जीवित रहा है। कुछ लोगों का तो कहना है कि मानव अधिकारों की उत्पत्ति कहीं न कहीं भारतीय संस्कृति व सभ्यता से ही हुयी है। इन लोगों का कहना है कि अंग्रेजी के 'राइट' के हिंदी पर्याय 'अधिकार' में कहीं अधिक अधिकार समाये हुए हैं अर्थात् 'अधिकार' अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि मानवाधिकारों की अवधारणा पूर्णत: पश्चिमी नहीं है अपितु इसमें कहीं न कहीं कुछ भारतीय भी सम्मिलित है।

भारत प्राचीन काल से ही एक धार्मिक देश रहा है और यहां धर्म को सदैव से ही सर्वाधिक महत्व दिया जाता रहा है। यह मानवाधिकरों का महत्व ही है कि भारतीय धर्म में भी मानवाधिकारों को पर्याप्त महत्व दिया गया है। कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता का धर्म की अवधारणा में ही व्यापक मानवीय सामाजिक व्यवस्था के रूप मे मानव अधिकारों का उल्लेख भी किया गया था। इस प्रकार पश्चिमी आधुनिक विचारधारा एवं प्राचीन भारतीय धर्म के रूप में मानव अधिकारों की संकल्पना की गयी थी। कहा जा सकता हैं कि मानवाधिकार की अवधारणा प्राचीन भारतीय सभ्यता में भी विचारणीय थी। उस समय हमारे यहां सनातन धर्म का प्रभाव था सनातन धर्म का विधान न केवल धार्मिक एवं नैतिक विचार था अपितु राजा के व्यवहारों, दण्ड विधानों को भी संतुलित करता था। प्राचीन भारतीय समाज में विधि के सक्षम समता व समानता का पालन का किया जाता था। यह अवधारणा भी मानवाधिकार से ही ओतप्रोत थी। और तो और प्राचीन भारत में युद्धकाल के दौरान भी प्राकृतिक मानव अधिकारों का पालन किया जाता था। उस समय शाम ढलते ही स्वत: ही युद्ध विराम हो जाता था और

फिर कोई किसी दुश्मन सैनिर हमला नहीं करता था। इसी प्रकार युद्ध बंदियों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाता था और उन्हें बेवजह तंग नहीं किया जाता था। प्रसिद्ध महाभारत का तो सूत्र वाक्य ही "मानव से बड़ा कुछ भी नहीं है" था। स्पष्ट है कि उस समय मौलिक मानवाधिकारों को काफी महत्व दिया जाता था। श्री भगवत गीता में भी मानव के लिए उसके कर्तव्यों को सर्वोपरि माना गया है। प्रकार जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थकर महावीर ने भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल दिया था। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य तो अपने मानवाधिकार संबंधी कार्यों के लिए दूर–दूर तक विख्यात थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधान मंत्री कौटिल्य ने अपने महाग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक विधानका निर्धारण किया था। उनका कहना था कि राजा, प्रज्ञा के हित के लिए ही होता है इसलिए राजा को सदैव प्रजा के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करना चाहिए। सम्राट अशोक का राजदर्शन भी मानवीय सिद्धांत पर आधारित था। वे दया, मानवता, करूणा और प्रेम पर बल देते हुए मानवाधिकारों के सच्चो पोषक के रूप में काम करते थे। यहां यह बताना प्रासंगिक होगा कि मानवाधिकारों का प्रश्न तभी उठता है जब किसी के अधिकारो का दमन होता है। जैसे-जैसे अत्याचार बढ़ते हैं वैसे-वैसे मानवाधिकारों की मांग भी जोर पकड़ने लगती है। प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था, वर्ण आधारित थी। पूरी सामाजिक संरचना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों में विभाजित थी। यहां निचले स्तर के वर्ण अर्थात् वैश्या एवं शुद्र पर लगातार अत्याचार किये जाते थे। इस सामाजिक व्यवस्था में अन्याय एवं शोषण का जोर था और इसलिए वहां मानवाधिकारों के पक्ष में भी आवाज थी। इसके बाद आया मध्यकाल हालांकि भारतीय इतिहास का मध्याकाल अपनी बर्बरता के लिए जाना जाता है लेकिन उस प्रतिकूल माहौल में मानवाधिकार किसी न किसी रूप में मौजूद थे। मुगल शासक अकबर और जहांगीर की न्यायाप्रियता तो दूर–दूर तक विख्यात थी। ये दोनों मुगल शासक प्रजा के मानवाधिकारों के प्रति काफी सजग रहते थे। सम्राट अकबर ने अपनी धार्मिक नीति 'दीन-ए-इलाही' के द्वारा प्रजा को धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। इसी प्रकार मध्यकाल का भक्ति –आंदोलन एक व्यापक मानवीय आंदोलन था। जिसमें सारा जोर मानवके प्राकृति अधिकारों पर था। भक्ति आंदोलन का एकमात्र उद्देश्य था सभी प्रकार के भेदभाव को भूल कर प्रेम एवं सहयोग करना। आधुनिक काल में आम जनता के मानवाधिकारों को नई ऊँचाईयां मिलीं। इस दौर में विभिन्न सामाजिक बुराईंयो जैसे बाल विवाह, सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, जाति प्रथा और अस्पृश्यता के खिलाफ जबरदस्त आंदोलन खड़ा किया गया। इस दौर के समाज सुधारकों में स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, राजा राम मोहन राय, ज्योतिबा फुले और नारायण गुरू जैसे लोग प्रमुख थे। इन सभी समाज सुधारकों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आम जनता को मानवाधिकार का पाठ पढ़ाया। भारतीय इतिहास के आधुनिक काल में देश विदेशी ताकत का गुलाम था और हमारे यहां स्वतंत्रता आंदोलन पूरे जोर- शोर से चल रहा था। आजादी की इस लड़ाई के दौरान सन् 1928 में 'नेहरू रिपोर्ट' प्रकाश में आयी जिसमें मानवाधिकारों की बात की गयी थी। इसके बाद कांग्रेस का अधिवेशन करांची में हुआ। अधिवंशन के बाद 'कराची प्रस्ताव' पारित किया गया जिसमें हिन्दुस्तानीयों के मानवाधिकारों की बात जोर-शोर से उठाया गया था।

आजादी के साथ ही शासन की बागडोर भारतीयों के हाथ में आ गयी और अंग्रेजी कानून को हटा कर भारतीय कानून लागू कर दिया गया। भारतीय संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ और हम एक गणतंत्र बन गए। भारतीय संविधान में भी मानवाधिकारों को पर्याप्त स्थान दिया गया था।

अपने प्रगति की जांच करें –
मानवाधिकार के क्षेत्र को स्पष्ट कीजिये।

2.3.6. मानवाधिकार की आवश्यकता-

मानवाधिकारों को सामान्यत: ऐसे अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जिनका उपभोग करने और जिनकी रक्षा की अपेक्षा रखने का हक प्रत्येक मनुष्य को है। अतीत में सभी समाजों और संस्कृतियों ने कुछ ऐसे अधिकारों और सिद्धांतों की अवधारणा का विकास किया है जिनका आदर करना आवश्यक समझा गया है और जिनमें से कुछ को सार्वजनीन माना गया है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता में एक गहरी मानवतावादी परंपरा और सहिष्णुता की परंपरा तथा विविधता तथा अनेक रूपता के प्रति आदर की परंपरा रही है। भारतीय दर्शन परंपरा ने सार्वजानिक बधुत्व और तमाम विश्व को एक परिवार के रूप में देखने (वसुधैव कुटुम्ब कम) की अवधारणाओं को स्पष्ट किया। ये अवधाणाएं अनेक धार्मिक और समाज सुधार आंदोलनों में भी प्रबलतापूर्वक प्रतिबिंबित हुई। इसी प्रकार के विचार अन्य संस्कृतियों और सभ्यताओं में भी विकसित हुए। मावतावाद यूरोप में पुनर्जागरण (रिनासा) और ज्ञानोदय (इनलाटेनमेंट) का मूलमंत्र कहा जा सकता है। उसने मनुष्य को सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित किया, उसके तात्विक सामर्थ्य और गरिमा पर जोर दिया, उसकी असीम सृजनात्मगक संभावना में गहन आस्था व्यक्त की और व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा व्यिक्त के अपरिहार्य अधिकारों की घोषणा की। मानवाधिकारों को मान्यता दिलाने की खातिर और राजनितिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दमन के खिलाफ तथा अन्याय और असमानता के विरोध में किए गए संघर्ष सभी मानव समाजों के इतिहास का अभिन्न अंग रहे हैं। मानव जाति का सदस्य होने के नाते प्रत्येक मनुष्य जिन अधिकारों का उपयोग करने का हकदार है, इतिहास में उनकी अवधारणा के विकास में ये संघर्ष हमेशा निर्णायक रहे हैं और अब भी हैं, खास तौर पर उन अधिकारों का वास्तविक उपभोग करने में। मानव अधिकारों की अवधारणा के विकास की प्रक्रिया में और अधिकारों के वास्तविक व्यवहार में आने में परस्पर विरोध पाए जाते रहे हैं। सार्वजनीन बंधत्व की अवधारणा से व्यवहार में सामाजिक दमन में कोई विशेष कमी नहीं हुई। यूरोपीय-पूर्व संस्कृतियों के विध्वंस, इंसानों की तिजारत और विश्व के कई भागों के उपानिवेशीकरण की शुरूआत का भी काल था। उन्नीसवीं सदी में उदित समाजवादी आंदोलन के साथ मानवाधिकारों की विकासशील अवधारणा में एक नया तत्व जुड़ गया। इस आंदोलन का जोर 'वर्ग–आधारित शासन' की समाप्ति तथा सामाजिक और आर्थिक समानता पर था। इसमें संदेह नहीं कि मानवाधिकारों की समकालीन अवधारणा तथा उसका सार्वजनीन स्वरूप एवं विश्वव्यापी स्वीकृति अतीत की समृद्ध विरासत पर आधारित है, परंतु उसे बीसवीं

सदी के विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ में देखना ही उचित होगा। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के लगभग पूरे दौर में हमें एक ओर तो विश्व के बहुत बड़े हिस्सों में औपनिवेशिक शासन का वर्चस्व, बहुत–से देशों में सर्वसत्तावादी सरकारों का उदय, तथा कुछ देशों में बर्बर और आक्रमक फासीवादी शासन व्यवस्थाओं की स्थापना देखने को मिलती है और है दूसरी ओर उपनिवेशों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों तथा अनेक देशों में लोकतंत्र एवं सामाजिक प्रगति की हलचलों के दर्शन होते हैं। बीसवीं सदी में ही मानव इतिहास के दो सबसे विनाशकारी युद्ध हुए, और पहले युद्ध के बाद जो बीस वर्षो की 'शांति का अंतराल पड़ा वह भी द्वितीय विश्व युद्ध की तैयारी का दौर भर था।'

अपने प्रगति की जांच करें –
मानवाधिकार की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिये।

2.3.7. मानवाधिकार का समकालीन परिदृश्य -

मानवाधिकारों की लम्बे समय से विकसित हो रही अवधारणा के अनुसार वर्तमान विश्व के संदर्भ में महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित हो रही है। इस अवधारणा में एक नया आयाम कुछ अन्तरालों पर महसूस किया जाने लगा और यह माना जाने लगा कि मानवाधिकारों की रक्षा केवल उन राज्यों की चिन्ता का विषय नहीं है, जहाँ पर इनका उल्लंघन होता हैं। अब तो पूरी दुनिया मे मानवाधिकारो के संरक्षण और प्रोत्साहन को सुनिश्चित करना सम्पूर्ण मानवता की चिन्ता का विषय बन गया हैं। मानवाधिकारों के लिए यह अंतरराष्ट्रीय चिन्ता हाल का विकास और संचार के विकास के साथ दुनिया के सिकुड़ने का परिणाम हैं।

मानवाधिकार सम्बन्धी दस्तावेजों के कई प्रावधानों को लेकर अनेक देशों को आपत्ति हैं। उदाहरण के लिए, सिविल और राजनैतिक अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय करार के अनुच्छे 1 में आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया हैं जिसके अनुसार सभी लोगों को अपने राजनैतिक स्तर का निर्णय करने का अधिकार हैं। सोवियत संघ में शामिल यूक्रेन, बेलारूस, कजाकिस्तान आदि इलाकों की जनता में सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक रूप से मूलभूत अंतर थे इसलिए लम्बे समय तक इन्हें बल प्रयोग से एकीकृत नहीं रखा जा सका और अंतत: सोवियत संघ में से अनेक स्वतंत्र राष्ट्र यूक्रेन, तुर्कमेनिया आदि अलग हुए। पाकिस्तान भी अपने हिस्से के रूप मे पूर्वी पाकिस्तान को सिर्फ राजनैतिक बल के आधार पर शामिल नहीं रख सका, क्योंकि दोनो हिस्सों में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक भिन्नता थी इसलिए अंतत: बंग्लांदेश के रूप में पूर्वी पाकिस्तान अलग हो गया। मार्क्सवाद ने मानवाधिकार की 'प्राकृतिक कानून' वाली धारणा को मानने से इन्कार किया है। पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन पर पूँजीपतियों द्वारा कब्जा कर लिया जाता हैं। व्यक्तिवादी अधिकार और कुछ नहीं हैं, बल्कि बुजुर्ग वर्ग अधिकारों की व्याख्या हैं। आर्थिक साधनों पर कुछ लोगों के अधिकार से बहुसंख्यक सर्व सर्वहारा के हितों की पूर्ति नहीं हो सकती।

2.3.8. प्रमुख नियम ,अधिनियम –

भारतीय संविधान तथा विभिन्न दण्ड संहिताओं में भी कई ऐसे नियम, विनियम, अधिनियम आदि बनाए गए हैं जिनकी सहायता से महिलाओं के हितों की रक्षा की जा सकती है। इसके अलावा अंग्रेजों के कारण महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार देखने को मिले, जैसे –सती प्रथा उन्मूलन अधिनियम, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, सिविल मैरिज अधिनियम, बाल-विवाह अवरोधक अधिनियम आदि। कुछ प्रमुख अधिनियम नीचे दिए गए हैं :

- भारतीय दण्ड संहिता, 1860
- हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम, 1956
- हिन्दु विवाह अधिनियम, 1956
- मुस्लिम विवाह –विच्छेद अधिनियम, 1939
- महिलाओं एवं लड़कियों के अधिनियम, 1956
- चलचित्र अधिनियम, 1952
- स्त्री अशिष्ट अधिनियम (प्रतिबंध), 1986
- मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961
- विशेष विवाह अधिनियम, 1954
- अपराधिक कानून यमअधिनि (संशोधन), 1986

अपने प्रगति की जांच करें- मानवाधिकार का समकालीन परिदृश्य एवं प्रमुख नियम, अधिनियम को बताइये।

2.3.9. मानवाधिकार को सुनिश्चित करने में चुनौतियाँ -

मानवाधिकार किसी भी सभ्य समाज की आधारशिला है। चाहे किसी भी प्रकार की शासन-व्यवस्था हो, मानवाधिकार प्रत्येक शासन व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो इसकी अनिवार्यता कुछ और बढ़ जाती है। यदि बृहत रूप से चिंतन मनन करें तो किसी भी समाज के विकास को, उस समाज के लोगों को उपलब्धि मानवाधिकारों की कसौटी पर कसा जा सकता है। यदि आम व्यक्ति को पर्याप्त मानवाधिका उपलब्ध हैं तो उस समाज विशेष को सभ्य, संस्कृत और विकसित कहा जा सकता है। यह मानवाधिकारों का महत्व ही है कि आज दुनियाभर के देशों में आम जनता को मानवाधिकारों से सुसज्जित किया जा रहा है। मानवाधिकार एक गतिशील अवधारणा है, जो समय के अनुरूप बदलती रहती है। पहले जो अधिकार उपलब्ध नहीं थे, उन्हें आजकल प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध हैं। आज दुनियाभर में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आंदोलन चल रहे हैं।

इनमें सबसे मुख्य है, राज्य द्वारा मानवाधिकार उल्लंघन के विरूद्ध गैर-सरकारी संगठनों द्वारा आंदोलन। चूंकि मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक हैं इसलिए प्रत्येक आदमी को इनके बारे में जानने और इनके प्रति जागरूक रहने की जरूरत है। और इसी पावन उद्देश्य से इस पुस्तक का प्रणयन किया गया है।

मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा की स्वीकृति के बाद से ही इस प्रश्न पर काफी विवाद उठते हैं कि कौन-से अधिकार अधिक महत्वपूर्ण हैं और–से कम कुछ राज्यों के प्रतिनिधि यह आग्रह करते रहे कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अपेक्षा नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है। उनके मन में विकास के अधिकार को स्वीकार करने के बारे में भी गंभीर संकोच थे, जिसका कारण यह था कि इन अधिकारों पर कारगार ढंग से अमल किए जाने पर विश्व की आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति के मौजूदा स्वरूप में बहुत उलट-फेर हो जाना आवश्यक हो जाएगा। परंतु कुछ अन्य देशों ने आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों एवं विकास के अधिकार पर जोर दिया। हम कह सकते हैं कि सभी मानवाधिकारों के आभिभाज्य मान लिए जाने के साथ ही, सिद्धांत इन विवादों का निपटारा हो गया है। 171 देशों और सैकड़ों गैर-सरकारी संस्थाओं के सम्मेलन के बाद जारी की गई घोषणा में स्पष्ट शब्दों में कहा गया कि "सभी मानवाधिकार सार्वजनीन, अभिभाज्य, अंतर्निभर और अंतर्सबद्ध हैं"। साथ ही स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा गया है कि नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक, सभी प्रकार के व्यक्तिगत अधिकारों तथा "राज्यों के अंतर्गत और राज्यों के समूह के अंतर्गत" सामूहिक अधिकारों का एक मात्र जमिन लोकतंत्र है।

2.3.10. मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयास

अमेरिका के संविधान में यद्यपि भारत और पूर्व सोवियत संघ के संविधानों की तरह नागरिकों के मूल अधिकारों को किसी अध्याय में लिपिबद्ध नहीं किया गया है, तथापि संविधान तथा अधिकार पत्र में ऐसी अनेक व्यवस्थाएँ हैं जिनमें नागरिकों के अधिकारों तथा उनकी स्वतंत्रता की रक्षा की व्यवस्था की गयी है।

मूल अमेरिकी संविधान में नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं थी। बाद में जेफरसन की इस धारणा से प्रभावित होकर कि अधिकार पत्र एक ऐसी चीज है जिसे लोगों को पृथ्वी पर प्रत्येक सरकार के विरुद्ध प्राप्त करने का अधिकार है और जिससे किसी न्यायोचित सरकार को इंकार नही करना चाहिए।

काँग्रेस ने 25 दिसम्बर 1789 को इस दृष्टि से 12 संशोधन प्रस्ताव राज्यों को अनुसमर्थन के लिए भेजे। इनमें से 10 संशोधनों को राज्यों का समर्थन प्राप्त हो गया और जिन्हें 1791 में लागू कर दिया। ये प्रथम दस संशोधन ही सामूहिक रूप से अधिकार-पत्र कहलाते हैं जिनमें नागरिक स्वतंत्रताओं का पर्याप्त विवरण मिलता है।

1. **कानूनी सहायता -** संविधान के छठे संशोधन में यह व्यवस्था है कि अभियुक्त अपनी रक्षा के लिए किसी वकील की सहायता ले सकता है। किसी अभियुक्त की आर्थिक स्थिति कमजोर हो तो उसे राज्य की ओर से सहायता प्रदान की जाती हैं।
2. **शीघ्र एवं खुले न्यायालय में सुनवाई -** संविधान के छठे संशोधन के अनुसार अभियुक्त को फौजदारी मामलों में शीघ्र एवं खुले न्यायालय में सुनवाई का अधिकार है।
3. **दोषारोपण के विरुद्ध -** संविधान के पाँचवें संशोधन में व्यवस्था है कि किसी अभियुक्त को फौजदारी मुकदमें में अपने विरुद्ध गवाही देने का बाध्य नहीं किया जा सकता है।
4. **जूरी द्वारा जाँच -** अमेरिकी संविधान नागरिकों को या अभियुक्त को यह अधिकार प्रदान करता है कि फौजदारी मामलों की वह जूरी द्वारा शीघ्र व् सार्वजनिक जाँच करवा सकता है और दीवानी मामलों में मुक़दमे की राशि 20 ,000 डॉलर हो तो वहाँ भी इस अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

पाँचवे गणराज्य के संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट कहा गया है कि फ्रांस के वासी 1789 ई. की घोषणा में परिभाषित और 1946 ई. के संविधान में सम्पुष्टित एवं संपूरित राष्ट्रीय संप्रभुता और मानव अधिकार के प्रति अपनी भक्ति की निश्चयपूर्वक घोषणा करते है।

इस प्रकार फ्रांस के पाँचवे गणराज्य में 1789 की मानव अधिकारों की घोषणा में परिभाषित किये गये अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं तथा 1946 जे चौथे गणराज्य के संविधान के अधिकारों को स्वीकारो किया गया है। इसके अतिरिक्त इस संविधान में मानव अधिकारों का संकेत मिलता है।

फ्रांस के नागरिकों को महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार प्रदान करते हैं लेकिन अधिकारों की इस व्यवस्था में कमी करने वाला यह तत्व यह है कि इन अधिकारों का उल्लेख संविधान के किसी अध्याय में नहीं किया गया है, इन अधिकारों का उल्लेख प्रस्तावना में किया गया है जो संवैधानिक शक्ति या कोई अन्य न्याय योज्य स्थिति (justiciable) प्राप्त नहीं हो सकती है।

प्रस्तावना स्वयं में न तो शासन की शक्ति का स्रोत होती है और न ही इसके माध्यम से शासन की शक्ति को वंचित किया जा सकता है अर्थात यदि शासन इन अधिकारों का उल्लंघन करता तो इनका रक्षक कोई नहीं है। नागरिक अधिकारों की रक्षा करना शासन का कर्त्तव्य है, उसे किसी कानूनी उपबंध का पालन करना अनिवार्य नही है।

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाएँ – संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 68 में उपबंध दिया गया है कि आर्थिक और सामाजिक परिषद, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में तथा मानवाधिकारों की अभिवृद्धि के लिए, आयोग और ऐसे अन्य आयोगों की स्थापना करेगी, जिनकी परिषद् के कार्यों के पालन के लिए आवश्यकता है। इसके अनुसरण में आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने सात आयोगों की स्थापना की है। यह है मानवाधिकार आयोग, सांख्यिकीय आयोग, नारकोटिक औषधि, अपराध निवारण और दंड न्याय आयोग।

अपने प्रगति की जांच कीजिये –

मानवाधिकार को सुनिश्चित करने में होने वाली चुनौतियों को समझाये।

मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयास की समीक्षा कीजिये।

2.3.11. मानवाधिकार के लिए अंतरराष्ट्रीय घोषणा पत्र

व्यक्ति के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु संयक्त राष्ट्र संघ काफी समय से प्रयासरत है। संयुक्त राष्ट्र संघ का मजबूती से विश्वास है कि यदि दुनिया, सामाजिक प्रगति स्वतंत्रता समानता शांति, आदि के साथ आगे बढे तो मानव की गरिमा और मानवाधिकारों की रक्षा आसानी से की जा सकती है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ समकालीन विश्व में मानवाधिकारों के लिए संघर्ष लोगों के लिए केन्द्रीय भूमिका अदा कर रहा है। अपनी एक घोषणा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने कहा था कि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपने यहाँ एक राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्था की स्थापना करनी चाहिए जो उस राष्ट्र विशेष में मानवाधिकारों के लिए कार्य करेगा। इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने सबसे पहली चर्चा सन 1996 में की थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सन 1996 की आर्थिक सामाजिक परिषद में मानवाधिकारों पर चर्चा की गई थी। सन 1960 के दशक में इस बारे में और विस्तार से चर्चा दुनियाभर में की गई थी।

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान फासीवादी शक्तियों के विरुद्ध युद्धरत देशों और उनके मित्र देशों के प्रतिनिधियो की कई बैठकें और सम्मलेन हुए। जनवरी 1942 से ये देश संयुक्त राष्ट्र कहलाने लगे। इन बैठकों और सम्मेलनों में युद्ध के संचालन के लिए सामूहिक रणनीतीयों और जिन लक्ष्यों के लिए वे लड़ रहे थे उनसे सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार-विमर्श और समझौते हुए। ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ और चीन के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन संयुक्त राज्य अमेरिका के डंबार्टन ओक्स नामक स्थान में हुआ, जिसका उद्देश्य एक शांति-रक्षक संस्था की योजना बनाना था, डंबारटन ओक्स में तैयार की गई योजना पर 25 अप्रैल 1945 को अमेरिका के ही सान फ्रांसिस्को नगर में आयोजित सम्मेलन में चर्चा हुई। इस सम्म्मेलन में 50 देशों प्रतिनिधि शामिल हुए, जिनमे भारत के प्रतिनिधि भी थे। 26 जून 1945 को सम्मेलन में शरीक सभी देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार पत्र पर हस्ताक्षर किये। इस अधिकार पत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन की व्यवस्था की गई है। यह अधिकार पत्र २४ अक्टूबर 1945 को लागू हो गया। इसमें फासीवाद बर्बरता के विरुद्ध युद्धरत देशों की जनता की आकांक्षाये प्रतिबिम्बित हुई और "मूल मानवाधिकारों" तथा "व्यक्ति की गरिमा" में आस्था का इजहार किया गया।

मानवाधिकारों की सार्वजनीन घोषणा कोई संधिया क़ानूनी समझौता, अथवा बंधनकारी वैधानिक दस्तावेज नहीं, बल्कि संकल्प और सिध्दांत की घोषणा थी। तथापि उसने कई देशों के संविधानो और वैधानिक प्रणालियों को प्रभावित किया।

उक्त घोषणा के बाद जैसा कि हम पहले कह चुके है, कई और घोषणाएँ की गई है। खास खास मसलों और विशिष्ट पहलुओं के बारे में मानवाधिकार विषयक सिध्दांत विस्तृत रूप में प्रस्तुत किए गए है। साथ

ही कई प्रसंविदाओ और अभिसमयों में भी ख़ास ख़ास पहलों के सम्बन्ध में विशिष्ट अधिकारों की विषद व्याख्याएँ की गई है। एक अर्थ में इन प्रसंविदाओ और अभिसमयो को अधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है। क्योंकि इन हस्ताक्षर करने वाले देशों ने इनका पालन करने की स्पष्ट सहमति दी हैं।

मानवाधिकारों की समकालीन अवधारणा के विकास के कतिपय पहलुओ का जिक्र करना उपयोगी होगा। इस विकासमन अवधारणा की चर्चा सामान्यत: मानवाधिकारों के तीन चरणों को ध्यान में रखकर की जाती है। प्रथम चरण के अधिकार वे थे जिनका सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्ति के नागरिक तथा राजनितिक अधिकारों से या "स्वतंत्रता अभिमुख" अधिकारों से था। इनका उद्धेश्य "सरकारों को व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप करने से अपने हाथ रोकने के लिए उनपर निषेधात्मक दायित्व" आरोपित करना था। वे अधिकार 19वीं सदी से आरंभ होने वाले सभी उदारवादी और लोकतान्त्रिक आंदोलनों के प्रमुख प्रयोजनों में से थे।

दूसरे चरण के अधिकार वे है, जिन्हें "सुरक्षा अभिमुख" कहा जा सकता है, और इनमे सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सुरक्षा की व्यवस्था है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रकृति सकरात्मक है, क्योंकि इनके कारण राज्यों के लिए लाजिमी हो जाता है कि वे इन अधिकारों का पालन सुनिश्चित करे, मानवाधिकारो की सार्वजनीन घोषणा उन सिद्धांतो के सम्बन्ध में एक एक इसी आम सहमति को प्रतिबिंबित करती है जो प्रथम तथा द्वितीय चरणों के अधिकारों का आधार है।

तृतीय चरण के मानवाधिकारो का उद्भव अपेक्षाकृत हाल में हुआ है। उनका विकास उन नए सरोकारों के उत्तर में हुआ है, जिनके सम्बन्ध में हाल के वर्षो में अंतरराष्ट्रीय आम सहमति पैदा हुई है। इनमे पर्यावरण सम्बन्धी, सांस्कृतिक तथा विकासात्मक अधिकारों का समावेश है। उनका सम्बन्ध व्यक्तियों की बजाय समूहों और जन – समाजो के अधिकारों से है, और इनमें आत्म –निर्णय का अधिकार, विकास का अधिकार, आदि शामिल है। इन अधिकारों के सम्बंध में अंतरराष्ट्रीय आम सहमती पैदा करने में विकासशील देशों ने प्रमुख भूमिका निभाई है। 1986 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अपने गई विकास के अधिकार की घोषणा इन अधिकारों का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है।

अपने प्रगति की जांच कीजिये- अंतररास्तरीय मानवाधिकार संस्थाएं कौन- कौन सी है? चर्चा कीजिये।

2.3.12. मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा पत्र के मुख्य तत्व और विशेषता -

50 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए, जिनमें भारत के प्रतिनिधि भी थे। 26 जून 1945 को सम्मलेन में शरीक सभी देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इस अधिकार-पत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन की व्यवस्था की गयी है। यह अधिकार –पत्र 24 अक्टूबर 1945 को लागू हो गया। इसमें फासीवादी बर्बरता के विरुद्ध युद्धरत देशों की जनता की आकांक्षाएं प्रतिबिंबित हुई और "मूल मानवाधिकारों'' तथा "व्यक्ति की गरिमा और महत्त्व" में आस्था का इजहार किया गया।

मुख्य तत्व-

1. मानव अधिकार कानून में भी पद सोपान क्रम है।
2. ऐसे कोई भी मानव अधिकार नहीं है जो व्यक्ति की उसके मानव अधिकारों से अलग करते हों।
3. संस्कृतियों और सभ्यताओं की भिन्नता, विश्वासों तथा परम्पराओं का अंतर तथा ऐतिहासिक और आकाँक्षाओं से जनित भिन्नताओं के कारण मानव अधिकारों के अर्थ तथा परिभाषाओं में अत्यधिक देखने को मिलता है।

विशेषता -

1. **सभी मूल अधिकार सभी को उपलब्ध नहीं-** भारतीय मूल अधिकारों की विशेषता यह है कि जहाँ कुछ अधिकार सभी व्यक्तियों को अर्थात नागरिकों और विदेशियों दोनों को उपलब्ध है वहाँ कुछ केवल भारतीयों को उपलब्ध है।
2. **आर्थिक स्वतंत्रता का आभाव-** मूल अधिकार भारत में राजनितिक लोकतंत्र की गारण्टी है आर्थिक लोकतंत्र की नहीं। ये नागरिकों को भाषण, अभिव्यक्ति, संघ, संगठन, भ्रमण आदि की स्वतंत्रताएँ प्रदान करते है, परन्तु सोवियत संघ के संविधान की भांति कार्य, विश्वास, आर्थिक, और सामाजिक सुरक्षा आदि को प्रदान नही करते है।
3. **निरपेक्षता का आभाव-** मूल अधिकार निरपेक्षअनुल्लंघनीय या अहरणीय नहीं। राज्य इन्हें , नैतिकता ,स्वास्थ्य ,व्यवस्था ,शांति ,सुरक्षा ,य हितराष्ट्री आदि के नाम पर मर्यादितप्रतिबंधित , या स्थगित कर सकता है। भारत में मूल अधिकार और मर्यादायें दोनों वाद योग्य है। संकटकाल में राष्ट्रपति प्राण और दैहिक स्वतंत्रता को छोड़कर उदघोषणा द्वारा नागरिकों को न्यायालय के संरक्षण से वंचित कर सकता है।
4. **परिवर्तनीय-** मूल अधिकार स्थायी नहीं। इन्हें परिवर्तित या समाप्त किया जा सकता है। ये वाद योग्य हैं परन्तु स्थायी नहीं। जब कभी न्यायालय के निर्णय कार्यपालिका की सामजिक और आर्थिक नीतियों के विरुद्ध गये हैं तब ही संवैधानिक संशोधनों का सहारा लेकर उन्हें प्रभावहीन बना दिया गया।
5. **अधिकारों का दोहरा स्वरुप-** मूल अधिकारों में जहाँ कुछ मूल अधिकारों निषेधज्ञायें हैं जो राज्य को कुछ कार्य करने से मना नही करती है वहाँ कुछ मूल अधिकार सकारात्मक आदेश हैं जो राज्य को कुछ कार्य करने के लिए कहते हैं। उदाहरणतः जहाँ राज्य का कोई कार्य नागरिकों को कानून के समक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण से वंचित नही कर सकता यहाँ वह कानून द्वारा पिछड़े हुए वर्गों अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष व्यवस्थाएं कर सकता है।
6. **वाद योग्य-** राज्य यदि किसी व्यक्ति को मूल अधिकारों से वंचित करता है तो वह न्यायालयों का संरक्षण प्राप्त कर सकता है तथा न्यायालय द्वारा उन्हें लागू कर सकता है। न्यायालय इस बात का निर्धारण करता है की मूल अधिकारों पर लगायी गयी मर्यादाएं उचित है या नहीं। यही मर्यादाएं उचित नहीं या वे संवैधानिक धाराओं का उल्लंघन करते है या वे अधिकार शक्ति का

अतिक्रमण करते है तो न्यायालय मर्यादाओं को अवैध घोषित कर सकता है। परन्तु न्याय की यह शक्ति विकास के क्रम में बाधा प्रस्तुत नहीं कर सकती।

7. **अस्पष्टता और अतिव्यापता** – मूल अधिकार विस्तृत होते हुए भी अस्पष्ट है। इनमे अतिव्यापता पायी जाती है जो अंततः भ्रांतियों और संसद तथा न्यायालय में संघर्ष को जन्म देती है। उदाहरतः संविधान में सार्वजानिक उद्देश्यों ,बेगार कठोर व्यवसाय ,मानव शरीर के व्यापर , -अल्पसंख्यक आदि शब्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित नही किया गया। मूल अधिकारों को बार यों में लिखा गया है। ये तत्व भ्रांतियों को भिन्न अध्या-बार लिखा गया है और कुछ को भिन्न उत्पन्न करते हैं। व्यापार को स्वतंत्रता पूंजी के केन्द्रीकरण को रोकने की व्यवस्था से मेल नही खाती।
8. **सिद्धान्त और व्यवहार में भिन्नता** – सिद्धांत रूप में नागरिकों के मूल अधिकार अत्यधिक प्रभावपूर्ण प्रतीत होते हैं परन्तु व्यवहार में उनपर लगाई गई मर्यादाओं ने उन्हें अवास्तविक बना दिया है। उदाहरणतः समानता के अधिकार में संरक्षित भेदभाव की व्यवस्था है, स्वतंत्रता के अधिकार में पी.डी.ए. भारत सुरक्षा अधिनियम और राष्ट्रीय सुरक्षा विद्यमान है, और निर्धनता शिक्षा के अधिकार को अवास्तविक बना देती है।

2.3.13. नागरिक अधिकार कानून

व्यक्ति के मनवाधिकारो के संरक्षण हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ काफी समय से प्रयासरत है। संयुक्त राष्ट्र संघ का मजबूती विश्वास है कि यदि दुनिया, सामाजिक प्रगति, स्वतंत्रता, समानता, शांति आदि के साथ आगे बढ़े तो मानव की गरिमा और मानवाधिकारो की रक्षा आसानी से की जा सकती है। आज सयुंक्त राष्ट्र संघ समकालीन विश्व में मानवाधिकारो के लिए संघर्षरत लोगो के लिए केन्द्रीय भूमिका अदा कर रहा है। अपनी एक घोषणा में संयुक्त राष्ट्र संघ ने कहा था कि प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अपने यहां एक राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्था की स्थापना करनी चाहिए जो उस राष्ट्र विशेष में मानवाधिकार के संरक्षण के लिए कार्य करेगा। इस सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ ने सबसे पहले चर्चा 1996 की थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सन 1996 की आर्थिक सामाजिक परिषद् में मानवाधिकारों पर चर्चा की गयी थी। सन 1960 के दशक में इस बारे में और भी विस्तार से चर्चा दुनिया में की गयी। इसके बाद सन 1978 में जेनेवा में अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों पर एक सम्मलेन हुआ।

1789 में फ्रांसिसी क्रांति हुई। उस साल 14 जुलाई को पेरिस की जनता द्वारा राज्य कारागार बास्तील का ध्वंस निरकुंश तंत्र और फ्रांस की पुरानी राज्य-व्यवस्था के अंत का सूचक था। जून 1789 से ही फ्रांस की राष्ट्रीय सभा की बैठके आरम्भ हो गयी थी। उसने फ्रांस के लिए तैयार किये जाने वाले नए संविधान की प्रस्तावना के रूप में 26 अगस्त 1789 को मानव और नागरिक के अधिकारों की घोषणा अंगीकार की। इस घोषणा का प्रभाव सचमुच अंतरराष्ट्रीय था। उससे युरोप के लगभग सभी देशों को और मध्य और दक्षिण अमेरिका और बाद में एशिया तथा अफ्रीका के देशों के क्रन्तिकारी एवं लोकतान्त्रिक आंदोलनों को प्रेरणा मिली।

मानवाधिकार मोटे रूप में नैतिक और वैध हो सकते है। नैतिक अधिकार वे होते है जो व्यक्तियों की नैतिकता पर आधारित होते है। इन अधिकारों को राज्य के नियमों का अनुमोदन प्राप्त नही होता है और इसलिए इसका उल्लंघन भी वैधानिक रूप से दंडनीय नही माना जाता है। इनका पालन व्यक्ति अपने अन्तः करन अथवा स्वाभाविक प्रेरणा से करता है।

नैतिक अधिकारों के विपरीत वैध अधिकार वे होते है जो राज्य के कानूनों के मान्य तथा रक्षित होते है और लोकतान्त्रिक राज्यों में सामान्यतया इन अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्राप्त होता है। वैध अधिकारों में नागरिक और राजनैतिक दोनों प्रकार के अधिकार सम्मिलित होते है। व्यक्तियों को इनका अनिवार्य से पालन करना पड़ता है। इनका उल्लंघन करने पर राज्य द्वारा व्यक्ति को दण्डित किया जा सकता है।

भारतीय संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को सात मूल अधिकार प्रदान किये गये थे, किन्तु 44 वे संविधानिक (1979) द्वारा संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया है। अब संपत्ति का अधिकार केवल एक क़ानूनी-अधिकार के रूप में है।

इस प्रकार अब भारतीय नागरिकों को निम्नलिखित 6 मूल अधिकार प्राप्त है। –

1. समानता का अधिकार
2. स्वतंत्रता का अधिकार
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार
4. धार्मिक का स्वतंत्रता का अधिकार
5. संस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

अपने प्रगति की जांच कीजिये- मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा पत्र के मुख्य तत्व और विशेषताओं पर चर्चा कीजिये। नागरिक अधिकार कानून से आप क्या समझते हैं?

2.3.14. भारतीय संविधान की भूमिका -

प्रासंगिक तौर पर आज मानवाधिकार की अवधारणा पर विचार किया जा रहा है जबकि प्राचीन काल से ही इस विषय पर आवाज उठती आ रही है। प्रत्येक मानव, प्राणी होने के अधिकारों का हकदार है क्योंकि यह अधिकार उसे मानव के रूप में जन्म लेने के अधार पर मिले है। इस पर प्राचीन यूनान में अरस्तु ने अपनी पुस्तक "न्याय के सिद्धांत" में चर्चा की थी।रोम में सिसरो ने 'जुस नेचुरल' का सिद्धांत दिया था। भारत में भी महाभारत जैसे ग्रन्थों में इस विषय पर उल्लेख किया गाया था। मध्यकाल के कैथोलिक धर्म ने इन अधिकारों को अन्य अधिकारों से ऊपर माना। उस काल में न्यायपूर्ण रूप से इन

अधिकारों की रक्षा भी की जाती थी। ठीक इसे प्रकार आधुनिक काल में पुनर्जागरण के दौर के बाद प्राक्रतिक न्याय और प्राकृतिक अधिकारों की स्थापना हुई। प्राकृतिक न्याय के अनुसार वे ही अधिकार माने जाने योग्य है, जो तर्क संगती रखते है। मिल्टन ने प्राकृतिक स्वतंत्रता की बात कही तो जॉन लॉक ने सभी लोगों के लिए सामान अधिकारों की बात कही।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है की मानवाधिकार से व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत है, जो किसी उच्च सत्ता अथवा संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तरराष्ट्रीय संविदाओ में सन्निहित है। मानवाधिकारों के सम्बन्ध में भारतीय परंपरा को देखे तो स्पष्ट होता है कि पुरातन समय से हमारे यहाँ मानवाधिकारों के संरक्षण और संवर्धन हेतु सभी प्रकार की आवश्यक व्यवस्थाएं की गई है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गई मानवाधिकार की विश्व घोषणा की प्रथम पंक्ति है- "मानव अधिकारों की मान्यता एवं सम्मान संसार में स्वतंत्रता, शक्ति एवं न्याय की स्थापना करना है।" चूँकि मानव परिवार के सभी सदस्यों की जन्मजात गरिमा और सम्मान में अविच्छिन अधिकार की स्वीकृति ही विश्व में शांति, न्याय और स्वमतंत्रता की बुनियाद है।

आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों का प्रमुख उद्देश्य राज्य का बहुमुखी विकास करना है।यह तभी संभव है जब की उस राज्य के प्रत्येक नागरिक को ऐसे अधिकारों से संपन्न बनाया जाए ताकि वह स्वतंत्रतापूर्वक एवं निर्बाध रूप से अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास कर सके एवं राज्य की प्रगति में सहायक बन सके। इस प्रकार अधिकार राज्य की महती आवश्यकता बन जाते है।

लोस्की का कथन है कि अधिकार किसी भी लोकतान्त्रिक राज्य की आधार शिला है। यह वे गुण है जिनके द्वारा राज्य की शक्ति के प्रयोग ने नैतिकता का समावेश होता है। यह अधिकार प्रकृति है राज्य की शक्ति के प्रयोग में नैतिकता का समावेश होता है। यह अधिकार प्राकृतिक है क्योंकि आदर्श एवं सुखमय जीवन के लिए नितांत आवश्यकता है। स्पष्ट है कि बिना अधिकारों के लोकतंत्र में व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

1. मानवाधिकारों से सम्बंधित किसी भी विषय में सरकार को सिफारिश, सुझाव एवं सूचना देना।
2. राष्ट्रीय कानूनों एवं प्रथाओं को अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार प्रतिमान के अनुसार विकसित करना।
3. मानव अधिकारों के बारे में जनता को शिक्षित एवं जागरूक बनाना।
4. अंतरराष्ट्रीय उपायों को सूचनात्मक सहयोग देना।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ, क्षेत्री संघों एवं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोगों को उनके कार्य में सहयोग देना।

मानवाधिकार की अवधारणा को सर्वजनीनता समकालीन इतिहास, जिसे वास्तव में समकालीन इतिहास के रूप में देखा जा सकता है के स्वरूप का प्रतिबिम्ब है। इस इतिहास की विशिष्टता है इस जागरूकता का उदय कि मानव जाति के "सभी सदस्य विश्व समुदाय से अनिवार्य रूप से जुड़े हुए है" और यह मान्यता कि विश्व की नियाती में विश्व के सभी मनुष्यों की बराबर की भागीदारी है। इसके लिए मुख्य

कारक है: विश्व स्तर पर साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का ढह जाना, आधुनिक युग की शुरुआत से यूरोप द्वारा पूरे विश्व पर बनाये गए प्रभुत्व का अंत होना, और तीसरी दुनिया के नाम से जाने जाने वाले देशों का एक प्रभावशाली शक्ति के रूप में उदय होना।

2.3.15. मानवाधिकार आयोग -

भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का एक लम्बा इतिहास है। आधुनिक काल में भारत में मानवाधिकारों के लिए संघर्ष आजादी से काफी पहले ही प्रारंभ हो गया था। तत्कालीन समय में कांग्रेस पार्टी ने आम भारतीयों के मानवाधिकारों के लिए काफी संघर्ष किया और इस सम्बन्ध में कई प्रस्ताव सरकार को सौंपे गए। भारत को अंग्रेजो की दासता से मुक्ति मिली तो लोगों ने मानवाधिकारों के लिए कई मांगें सरकार के सामने रख दी तदुपरांत सरकार ने आम जनता के मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए कानून में कई प्रावधान किये। धीरे धीरे मानवाधिकारों की स्थिति सुधरने लगी लेकिन 1975 के आस पास भारत में मानवाधिकरों को गहरा धक्का लगा। सन् 1975 से 1977 तक देश भर में लगे राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान लोगों के मानवाधिकारों का बुरी तरह हनन किया गया।

यदि हम इतिहास के पन्ने पलटें तो पता चलता है कि 1920 के दशक में पंडित नेहरु और उनके सहयोगियों द्वारा नागरिक स्वतंत्रता संघ को गठित किया गया। इस संगठन ने आम लोगों के मानवाधिकारों के लिए संघर्ष किया और लोगों की बात सरकार के सामने रखी। इसके कुछ समय बाद मद्रास में भी ऐसे संगठनो की स्थापना की गई जिसके नागरिकों को स्वतंत्रता संगठन कहा गया तदुपरांत आन्ध्र प्रदेश में आन्ध्र नागरिक स्वतंत्रता समीति की स्थापना की गई। धीरे-धीरे भारत के दूसरे राज्यों में भी मानवाधिकार संगठनों की स्थापना होने लगी। बाद के वर्षों में 1983 में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने सरकार से एक राष्ट्रीय एकाकी मानवाधिकारवादी आयोग की स्थापना करने की सिफारिश की। इस सम्मलेन में यही मांग की गई कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना जल्द से जल्द की जाए।

अपने प्रगति की जांच कीजिये –
भारतीय संविधान की भूमिका को समझाये।
मानवाधिकार आयोग को स्पष्ट कीजिये।

2.3.16. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना -

महायुद्ध काल में एक नवीन अंतरराष्ट्रीय संस्था की स्थापना की दिशा में अनेक कदम उठाये गये जो निम्नलिखित है –

- 14 अगस्त 1941- संयुक्त राज्य अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक ऐसी अंतरराष्ट्रीय की संस्था का अनुभव किया जो विश्व के नागरिकों की मूलभूत 4 स्वतंत्रताएँ (भाषा और विचार की स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता और भय से स्वतंत्रता प्रदान कर सके) प्रदान कर

सके। इसके तुरन्त बाद राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमंत्री चर्चिल ने संयुक्त घोषणा पत्र निकला जो अटलांटिक घोषणा पत्र (atlantic charter) के नाम से विख्यात है। इस घोषणा पत्र में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि संसार के प्रत्येक राष्ट्र को आत्मनिर्णय का अधिकार होना चाहिए। प्रत्येक राष्ट्र का ये अधिकार भी मान लिया गया की साम्राज्यवादी देशों की महत्वकांक्षा से उसकी रक्षा होनी चाहिए। उनको आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की उचित सुविधाए प्रधान होनी चाहिए।

- 1 जनवरी 1942-26 राष्ट्रों ने धुरी शक्तियों को पराजित करने और अटलांटिक चार्टर के स्वीकार करने की प्रतिज्ञा की। इस घोषणा में 'संयुक्त राष्ट्रों' शब्द का पहली बार प्रयोग हुआ बाद में 21 और राष्ट्रों ने भी घोषणा से सहमति प्रकट की। अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना के सम्बन्ध में यह घोषणा की गयी कि विश्व शांति और सुरक्षा बनाये रखने हेतु एक अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना की जाये। इस सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया की यह संगठन सभा शांति के इच्छुक राज्यों की संप्रभुता को समान रूप से स्वीकार करने वाले सिद्धांतो पर आधारित हो सभी छोटे-बड़े राष्ट्र समान रूप से इसके सदस्य बन सके और शांति तथा सुरक्षा स्थापित करने के अतिरिक्त युद्धोपरांत शस्त्रों के नियंत्रण के बारे में यह सामान्य समझौता सम्पन्न कराये।
- रूस के प्रतिनिधि एस. बी. क्राईलोब ने लिखा कि मास्को संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म स्थान बन गया क्योंकि यह मास्को ही था जहाँ पर अंतरराष्ट्रीय संगठन की स्थापना की घोषणा की गयी तथा उस पर हस्ताक्षर किये गये।
- 24 अक्टूबर 1945- चीन, फ्रांस, सोवियत संघ, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और बहुत से दुसरे हस्ताक्षरकर्ता, राष्ट्रों ने चार्टर का अनुसमर्थन कर दिया। इस तारीख को संयुक्त राष्ट्र संघ विधिवत रूप से अस्तित्व में आ गया और इसलिए यह दिन (24 अक्टूबर) विश्व में 'संयुक्त राष्ट्र दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

2.3.17. सारांश

आधुनिक काल में भारत में मानवाधिकारों के लिए संघर्ष आजादी से काफी पहले ही प्रारंभ हो गया था। तत्कालीन समय में कांग्रेस पार्टी ने आम भारतीयों के मानवाधिकारों के लिए काफी संघर्ष किया और इस सम्बन्ध में कई प्रस्ताव सरकार को सौंपे गए। भारत को अंग्रेजो की दासता से मुक्ति मिली तो लोगों ने मानवाधिकारों के लिए कई मांगें सरकार के सामने रख दी तदुपरांत सरकार ने आम जनता के मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए कानून में कई प्रावधान किये। अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करना और सामूहिक तथा प्रभावपूर्ण प्रयत्नों से आने वाली ख़बरों का उन्नमूलन करना, शांति भंग करने वाली चेष्टाओ को दबाना तथा न्याय और अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के आधार पर शांति पूर्ण साधनों से उन अंतरराष्ट्रीय विवादों और समस्याओ को सुलझना जिससे शांति भंग होने की आशंका हो। सब राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना।

2.3.19. संदर्भ ग्रंथ सूची

- आचार्य, नंद किशोर, (2003), मानवाधिकार के तकाजे, बिकानेर; वाग्देवी प्रकाशन.
- शर्मा, सुभाष, (2009). भारत में मानवाधिकार, नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट.
- उपाध्याय, जय जय राम. (1999). मानव अधिकार इलाहाबाद : सेन्ट्रल लॉ एजेंसी.
- मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान (2009). मानवाधिकार : एक परिचय, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन.

खंड 03 भारतीय समाज में शिक्षा

इकाई–1 भारतीय शिक्षा व्यवस्था की विकास यात्रा

इकाई की रूपरेखा

3.1.0. उद्देश्य

3.1.1. प्रस्तावना

3.1.2. वैदिक काल की शिक्षा प्रणाली

3.1.2.1 वैदिक काल की शिक्षा की विशेषताएं

3.1.2.1.1 उपनयन संस्कार

3.1.2.1.2 शिक्षा संस्थाएं

3.1.2.1.3 छात्रगण

3.1.2.1.4 वेशभूषा

3.1.2.2 वैदिक कालीन शिक्षा की कमियाँ

3.1.2.3 वैदिक कालीन शिक्षा की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपादेयता

3.1.3. बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था

3.1.3..1 बौद्धकालीन शिक्षा की विशेषताएं

3.1.3..2 बौद्धकालीन शिक्षा की कमियाँ

3.1.3..3 बौद्धकालीन शिक्षा की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपादेयता

3.1.4. मुस्लिम काल में शिक्षा व्यवस्था

3.1.4..1 मुस्लिम काल में शिक्षा व्यवस्था

3.1.4..2 मुस्लिम काल की शिक्षा की कमियाँ

3.1.4..3 मुस्लिम शिक्षा की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपादेयता

3.1.5. ब्रिटिश शासन में शिक्षा व्यवस्था

3.1.5..1 ब्रिटिश शासन के पूवार्द्ध में शिक्षा व्‍यवस्था

3.1.5..2 ब्रिटिश शासन के उत्तरार्द्ध में शिक्षा व्यवस्था

3.1.5..3 ब्रिटिश शिक्षा की विशेषताएं

3.1.5..4 ब्रिटिश शिक्षा की कमियाँ

3.1.6. स्वतंत्रता पश्चात शिक्षा व्यवस्था

3.1.6.1 भारतीय संविधान में शिक्षा

3.1.6.2 प्रमुख शिक्षा आयोग

3.1.6.3 प्रमुख शिक्षा समितियाँ

3.1.6.4 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968

3.1.6.5 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

3.1.6.6 संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992

3.1.6.7 राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली

3.1.6.8 शिक्षा की संरचना

3.1.7. सारांश

3.1.8. बोध प्रश्न

3.1.9. सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.1.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- भारतीय शिक्षा व्यवस्था का इतिहासिक वर्गीकरण कर सकेगें।
- वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था की विशेषताएं बता सकेगें।
- वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था की कमियों को समझ पायेगें।
- वैदिक कालीन शिक्षा की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में उपादेयता को समझ पायेगें।
- बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था की विशेषताएं एवं कमियों को जान पायेगें।
- बौद्ध कालीन शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में उपादेयता को समझ पायेगें।
- मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था उसकी विशेषताएं एवं कमियों को समझ पायेगें।
- मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में उपादेयता को समझ सकेगें।
- ब्रिटिश काल के उत्तरार्ध एवं पूर्वार्द्ध की शिक्षा व्यवस्था को समझ पायेगें।
- ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था की विशेषताओं एवं कमियों को समझ पायेगें।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की शिक्षा व्यवस्था को समझ सकेगें।
- भारतीय संविधान में शिक्षा के स्थान को समझ सकेगें।
- प्रमुख शिक्षा आयोग शिक्षा नीतियों को समझ सकेगें।
- राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को समझ सकेगें।
- शिक्षा की संरचना को समझ सकेगें।

3.1.1. प्रस्तावना

इतिहास मनुष्य को अतीत की वास्तविकताओं की उपलब्धियों तथा क्रिया-कलापों का एक सार्थक चित्रण है। इतिहास बीते गए समय के सामाजिक धार्मिक राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक सांस्कृतिक औद्योगिक आदि पक्षों का संजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। इसलिए भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समझने के लिए हमें उसकी समस्याओं के हल खोजने के लिए हमे भारतीय शिक्षा व्यवस्था के इतिहास का अध्ययन करना आवश्यक होगा। विभिन्न कालो में शिक्षा व्यवस्था के बदलते स्वरूप को समझना पड़ेगा। अतीत में हुई गलतियों से सीख लेकर नवीन अच्छा करने का प्रयास करेगें। अध्यापकगण, अभिभावक प्रशासक गण, नियोजन करने वाले तथा नीति निर्धारक अपने अपने स्तर पर शैक्षिक योजना बनाते समय तथा उनका क्रियान्वयन करते समय एवं शैक्षिक समस्याओं के समाधान खोजते समय शिक्षा के इतिहास से हल खोज सकते है।

भारतीय शिक्षा की विकास यात्रा को मुख्य रूप से पाँच काल खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। 1. वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था 2. बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था 3. मध्यकालीन या मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था 4. ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था 5. स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा व्यवस्था इस इकाई में हम इन विभिन्न कालों की शिक्षा व्यवस्था को समझेगे इन कालो की शिक्षा व्यवस्था की क्या विशेषताएं थी उसको समझने का प्रयास करेगें साथ ही साथ हम यह भी जानने का प्रयास करेगें कि इस काल की शासन व्यवस्था की क्या-क्या कमियां थी। इन विभिन्न कालो की शिक्षा व्यवस्था की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में क्या उपादेयता है इसको भी समझने का प्रयास करेगें। स्वतंत्रता के पश्चात् कौन-कौन से शिक्षा आयोग एवं शिक्षा नीतियों बनी उनके बारे में भी आप अध्ययन करेगें भारतीय संविधान में शिक्षा को आप क्या स्थान दिया गया है इसको जानने का प्रयास करेगें। आप भारतीय शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षा की संरचना को भी समझ सकेगें।

3.1.2. वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली या व्यवस्था

प्राचीन भारतीय शिक्षा का प्रारंभ वेदों से माना जाता है वेद का अर्थ होता है जानना या ज्ञान प्राप्त करना वेद अर्थात् जिन से ज्ञान प्राप्त किया जाता है। 600 ईसा पूर्व से पहले के कल को वेदिक कल कहतें हैं। वेदों में सांसरिक, व्यवहारिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में मानव के लिए आवश्यक समस्त ज्ञान संग्रहित है। इनमें आचार विचार तथा जीवन दर्शन के साथ-साथ इतिहास, भूगोल,विज्ञान आदि विषयों का भी वर्णन है। वेद उस समय के विश्व कोष थे। वेद व्यास ने वेदों को चार भागों में विभक्त किया में चार भाग है ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद। सबसे पुराना वेद ऋग्वेद है, ऋग्वेद में हिंदुओं के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन सभ्यता का वर्णन है, सामवेद एक गायन पुस्तिका है, मंत्रो एवं श्लोको को सस्वर दुहाराना ही इसका मुख्य लक्ष्य है। यजुर्वेद को एक प्रार्थना पुस्तक है इसमें मत्रों प्रार्थनाओं तथा यन्त्रों की संस्कार विधियों का वर्णन है। इसमें ज्यामिति, पशुओं की शरीर रचना, जीवविज्ञान, खगोल विज्ञान आदि की जानकारी भी है। अथर्ववेद में विभिन्न रोगों के उपचार हेतु काम में आनेवाली जड़ी बूटियों का वर्णन

है, इसके साथ साथ इसमें नक्षत्र विज्ञान, गृहविज्ञान अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र की भी जानकारी मिलती है। वेदो के अतिरिक्त ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों को भी वैदिक साहित्य में सम्मिलित किया है। ब्राह्मण ग्रंथों में वैदिक कर्मकाण्ड का वर्णन है जबकि आरण्यक तथा उपनिषदों में दार्शनिक तथा आध्यात्मिक समस्याओं की चर्चा मिलती है। इस समय की यज्ञशाला आधुनिक काल की प्रयोगशाला के समान होती थी जिसमें ऋर्षि अपने शिष्यों के साथ विभिन्न प्रकार के प्रायोगिक क्रियाकलाप करते थे। इसी काल में गुरुकुल आधारित शिक्षा प्रणाली का आरंभ हुआ।

3.1.2.1 वैदिक काल की शिक्षा की विशेषताएं

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं थी –

- वैदिक काल में शिक्षा लक्ष्य छात्रों की शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास इस तरह से करना था जिससे मोक्ष प्राप्त हो सके।
  वैदिक शिक्षा में छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाता था। उन्हें नैतिक, चरित्र,पवित्रता,धर्मिकता,व्यक्तित्व,सामाजिक कुशलता संस्कृति के संरक्षण जीविकोपार्जन की शिक्षा दी जाती थी।
- वैदिक काल में उपनयन संस्कार के साथ शिक्षा प्रारंभ की जाती थी जिसका अर्थ होता था बालक को शिक्षा के लिए अध्यापक के पास ले जाना। इस अवसर पर ब्राह्मणों को गायत्री मंत्र क्षत्रियों को त्रिष्तुप मंत्र तथा वैश्यों को जगती मंत्र का पाठ कराया जाता था। उपनयन संस्कार के पश्चात् ही उसे ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश मिलता था ओर वह ब्रह्मचारी कहलाता था। इसे बालक का दूसरा जन्म माना जाता था जिसके बाद उसका आध्यात्मिक जीवन प्रांरभ होता था। उपनयन गम्भीर संयमित व अनुशासित जीवन व्यतीत करने का संकल्प होता था। उपनयन संस्कार न कराने वाले बालकों का सामाजिक बहिष्कार किया जाता था इससे मालूम पड़ता है कि वैदिक युग में शिक्षा का कितना महत्व था।
- इस काल में बालक की प्रथम अनौपचारिक शिक्षा घर पर होती थी, इसके बाद की शिक्षा गुरुकुल अथवा आश्रम में होती थी बालक को आश्रम में ही रहकर पढ़ना पड़ता था वहाँ उनके खान-पान रहने कपड़े आदि की व्यवस्था होती थी ये आश्रम नगर से दूर एकान्त में होते थे। गुरु पत्नी माता की तरह शिष्यों की देखभाल करती थी इस काल में मिथिला, काशी, काँची, कैकप ,उज्जैन, प्रयाग तन्जौर,मालखंड आदि नगर शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थे।
- गुरुकुल में प्रवेश केवल सदाचार तथा योग्यता के आधार पर होता था। छात्र सामान्य: गुरुकुल में 12 वर्ष तक अध्ययन करते थे। प्रत्येक वेद के अध्ययन में 12 वर्ष लगते थे। एक वेद अध्ययन करने वाले को स्नातक, दो वेद का अध्ययन करने वाले को वस्तु तीन वेद का अध्ययन करने वाले को रुद्र तथा चार वेद का अध्ययन करने वाले को आदित्य कहते थे।

- वैदिक काल में गुरुकलों में रहने वाले छात्रों की वेष भूषा निश्चित थी। शरीर के ऊपरी भाग पर मृगचर्म का तथा निश्चले हिस्से में वस्त्र का प्रयोग करते थे। तथा यद्योपवीत (जनेऊ) पहनते थे। उनके हाथ में एक डंडा होता था।
- गुरुकुल में छात्र ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच आदि नित्यकर्मों से निवृत होकर, हवन, अध्ययन, पूजा, आश्रम कार्य ,मिक्षाटन, संध्या आदि कार्य करते थे।
- वेद तथा उनकी समीक्षायें ही वैदिक काल में पाठ्यक्रम का मुख्य अंग थी। इसके अतिरिक्त, धर्म, दर्शन, वेद, वेदांग नीतिशास्त्र, जीव, आत्मा परमात्मा जैसे विषय प्रमुख थे। इसके अतिरिकत, यज्ञ, अन्य संस्कार विधियाँ, इतिहास, ज्योतिष गणित, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भूगर्म विद्या, भौतिक शास्त्र कृषि, चिकित्सा आदि विषय पढ़ाये जाते थे। इस समय शिक्षा का माध्यम संस्कृत था। वर्ण के हिसाब से विषय पढ़ाये जाते थे।
- इस समय, व्याख्यान विधि सबसे अधिक प्रचलित थी, इसके अतिरिक्त, प्रश्नोत्तर, कथा, सस्वर पाठ, अन्योक्ति, व्याख्यान वाद-विवाद, क्रियात्मक विधियों का प्रयोग पढ़ाने में किया जाता था इस काल की प्रमुख विधियाँ तय तथा श्रुति थी।
- वैदिक काल में औपचारिक परीक्षायें सामान्यत: नहीं होती थी छात्रों का दैनिक मूल्यांकन होता था ओर उसकी गलती को तुरन्त सुधारा जाता था। जब तक उसमें आवश्यक सुधार नहीं हो जाता था तब तक वह आगे नहीं बड़ता था। जब शिक्षक यह समझ लेता था कि छात्र ने आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लिया है तब छात्र का उस विषय का अध्ययन समाप्त हो जाता था। छात्र विद्वानों की सभा, अथवा राजदरबार में शास्त्रार्थ के द्वारा अपने ज्ञान को प्रमाणित करता था।
- वैदिक काल में गुरु शिष्य के बीच अत्यन्त मधुर एवं आध्यात्मिक संबंध होते थे। गुरुकुल में पारिवारिक वातावरण होता था। गुरु-शिष्य में पिता-पुत्र जैसे स्नेही संबंध था।
- वेदिक काल में नारी शिक्षा को पर्याप्त महत्व दिया गया था, उनके अध्ययन की पूर्ण व्यवस्था थी। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश से पहले तक लड़कियाँ अध्ययन करती थी।
- अध्यापन कार्य के पश्चात् छात्र घर लौटते थे घर आने के पहले उनका समावर्तन संस्कार होता था इसमें शिष्य गुरु को गुरु दक्षिणा देते थे। और गुरु उन्हें अन्तिम उपदेश देते थे,आगे के जीवन के कर्तव्यों का स्मरण कराते थे, इस उपदेश को समावर्तन उपदेश कहते थे। जिससे आज हम दीक्षान्त समारोह कहते है।
- इस काल में दण्ड की आवश्यकता नहीं होती थी। इस काल में शारीरिक दण्ड पुर्णत: निषेध था। आवश्यकता पढ़ने पर गुरु छात्र की शुद्धि के लिए उद्दालक व्रत का पालन करने का दण्ड देते थे।

- आश्रम में भोजन वस्त्र आवास नि:शुल्क उपलब्ध था, छात्र, भिक्षाटन, पशुपालन, कृषि आदि से आश्रम के लिए घन संग्रह करते थे, राजा, व्यापारी, एवं समृद्ध लोग आश्रम को धन, भूमि, पशु, अन्न आदि दान करते थे। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था चलती थी।

3.1.2.2 वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था की कमियाँ

- वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था में धर्म को अत्याधिक महत्व दिया गया था।
- वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में स्त्रियों की शिक्षा की उपेक्षा होने लगी थी। गुरु कुलों में लड़कियों की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी।
- वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था में शुद्र को हेय दृष्टि से देखा जाता था उनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था इस काल में नहीं थी।
- इस काल में संस्कृत में शिक्षा देने से लोक भाषाओं की उपेक्षा हुई।
- वेदिक काल के उत्तरार्द्ध में शिक्षा धर्म पर आश्रित हो जाने के कारण नवीन विचारों को स्वीकारना वंद कर दिया इस कारण रूढ़िवाद तथा अंधविश्वासों को बढ़ावा मिला।
- सांसारिक जीवन की शिक्षा की उपेक्षा इस काल में आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया।
- शारीरिक श्रम का महत्व इस शिक्षा व्यवस्था में कम था।
- नवीन धर्मों के प्रति भी इस काल में उचित दृष्टि नहीं थी।

उपरोक्त दोषों के फलस्वरूप वैदिक कालीन शिक्षा समाज की तत्कालीन आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों की दृष्टि के अनुकूल सिद्ध न हो सकी तथा धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर होने लगी।

3.1.2.3 वैदिक कालीन शिक्षा की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपदेयता

वैदिक शिक्षा के आदर्शों जैसे श्रद्धा, भक्ति, सेना, आदर, आत्मअनुशासन, सादा जीवन उच्च विचार, ब्रह्मधर्म, नैतिक बल, इत्यादि का अनुसरण करके वर्तमान समाज की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था की जा सकती है। वैदिक काल की शिक्षा में जब तक छात्र एक पाठ को सीख नहीं लेता था तब तक उसे नया पाठ नहीं पढ़ाया जाता था इस का उपयोग वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कर सकते है इसके साथ-साथ हम आधुनिक शिक्षा प्रणाली में वैदिक शिक्षा के निम्नलिखित बिन्दुओं को समाहित कर सकते है जैसे आदर्शवदिता, स्वअनुशासन, गुरु शिष्य संबंध, शान्तिपूर्ण महौल, शिक्षण विधि, अध्ययन विषय, सरल जीवन, समावर्तन उपदेश,

3.1.3. बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था

वैदिक शिक्षा व्यवस्था में धीरे-धीरे धर्म का प्रभाव अत्याधिक बढ़ जाने एवं कर्मकांड जुड़ जाने से शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार हो गया अन्य जातियों की उपेक्षा होने लगी जिससे जन साधारण परेशान होने लगा था। ऐसी परिस्थिति में आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व (563-483 ईसा पूर्व) गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म की स्थापना की थी।

व्यापक परिप्रेक्ष्य में बौद्ध धर्म को हिंदु धर्म का विकसित रूप माना जा सकता है। बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के लिए बौद्ध मठों एवं विहारों की स्थापना की गई पहले इन मठों में सिर्फ बौद्धो को धर्म की शिक्षा दी जाती थी परन्तु बाद में इसमें सभी धर्मों के छात्रों को शिक्षा दी जाने लगी,बौद्ध शिक्षा काफी सीमा तक वैदिक शिक्षा के समान थी।

इसी समावधि में जैन धर्म के चौवीसवें तीर्थकर महावीर स्वामी (597 से 527 ई. पू.) ने जैन धर्म की शिक्षा पर विशेष कार्य किया। जैन धर्म शिक्षा का उद्देश्य सम्यक ज्ञान सम्यक दर्शन, व सम्यक चरित्र के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करना था। जैन धर्म, अहिंसा, सत्य, आचार, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह पर विशेष जोर देता है। जैन विचारकों एवं धर्मवलम्बियों के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में बहुत सक्रिय भूमिका अदा न करने के कारण एवं बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव व उसको प्राप्त राज्य आश्रय के कारण,जैन धर्म शिक्षा के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण दीर्घकालीन छाप नहीं छोड़ सका।

बौद्ध काल में शिक्षा के कई केन्द्र विकसित हुए उसे से मुख्य तक्षशिला, नालन्दा, वल्लभी, विक्रमशिला,मिथिला,काशी,ओदन्तपुरी, नवद्वीप और काची प्रमुख है। बौद्ध शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जीवन में निर्वाण प्राप्त करने का उपाय जानना था। बौद्ध धर्म में निजी आचरणों पर जोर दिया जाता था जबकि हिन्दु धर्म में संस्कारों तथा ज्ञान पर,बौद्ध धर्म की शिक्षा में पाठ्यक्रम वेदों तक सीमित नहीं था तथा शिक्षक को ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं था। यह शिक्षा व्यवस्था सभी वर्णों के लिए थी। नालन्दा विहार (425 ई. से 1205 ई. तक) बौद्ध कालीन शिक्षा का गौरव कहा जाता है।

3.1.3.1 बौद्ध कालीन शिक्षा की विशेषताएं –

बौद्ध कालीन शिक्षा के उद्देश्य निम्न लिखित थे –

- नैतिक चरित्र का निर्माण करना
- बौद्ध धर्म का प्रसार करना
- व्यक्तित्व का विकास करना
- जीवन के लिये तैयार करना
- अष्टांग मार्ग का अनुसरण करना

- **प्रव्रज्या संस्कार** – शिक्षा प्राप्त करने के लिए बालकों का मठों में प्रवेश हेतु प्रव्रज्या संस्कार होता था। इसका शाब्दिक अर्थ है शिक्षा हेतु घर से बाहर जाना। यह वैदिक काल के उपनयन संस्कार जैसा

ही था। छात्र को मठ में ही रहना पड़ता था जति का कोई बंधन नहीं था यह 8 वर्ष की उम्र में किया जाता था।

- इस काल में छात्रों की दिनचर्या अत्यन्त कठिन थी। छात्रों को कठोर नियमों का पालन करना होता था। छात्रों (सामनेर) को 10 नियमों का पालन करना होता था 12 वर्ष तक शिक्षा
- इस काल की शिक्षा संस्थाओं को बौद्ध संघ बौद्ध मठ या बौद्ध संघाराम कहते थे। ये नगरों के कोलाहल से दूर होते थे।
- इस समय की शिक्षा में बौद्ध धर्म की प्रधानता थी। अधिकांश छात्र धर्म शास्त्रों का अध्ययन करते थे। इस के अलावा इस काल में साहित्य, दर्शन, कला, व्यापार, कृषि,सैनिक शिक्षा आदि की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा को दो भागो में विभाजित किया गया था प्रारम्भिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा में पढ़ना लिखना तथा साधारण गणित सिखाया जाता था। उच्च शिक्षा के अन्तर्गत धर्म, दर्शन, इतिहास भाषा-साहित्य गणित,ज्योतिष, आयुर्वेद,शिल्पकला आदि का अध्ययन कराया जाता था।
- बौद्ध काल में शिक्षण विधियाँ वैदिक कालीन शिक्षण विधियों के समान थी। शिक्षण कार्य मौखिक होता था, प्रश्नोत्तर, वादविवाद,देशाटन आदि के द्वारा छात्र ज्ञान ग्रहण करते थे। प्राकृत एवं पाली भाषा शिक्षण के माध्यम थे। व्याख्यान व्याख्या एवं चर्चा तीन विधियों का प्रयोग किया जाता था। कुछ विषयों में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग किया जाता था।
- इस काल में अध्यापक छात्र के बीच संबंध अत्यन्त मधुर थे। अध्यापक उनका सम्पूर्ण ध्यान रखते थे तथा उनके सर्वांगीण विकास के लिए प्रयासरत रहते थे, छात्र अध्यापकों की सेवा करते थे।
- बौद्ध मठ के नियमों व अनुशासन का पालन छात्रों के लिए आवश्यक था। ऐसा न करने पर उसे मठ से निष्कासित कर दिया जाता था। गलती करने पर विद्धत सभा में अपने गलत आचरण त्रुटियों को रखना पड़ता था।
- बौद्धकालीन शिक्षा के प्रारम्भिक काल में नारी शिक्षा लगभग उपेक्षित थी परन्तु बाद में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को भिक्षुणी के रूप में मठों में प्रवेश की अनुमति दी। वह पुरुष भिक्षुओं से अलग रहती थी। कही कही उनके लिए पृथ्क मठों की स्थापना की गई थी। बौद्ध काल में नारी शिक्षा के उच्च वर्ग की महिलाओं के लिए थी।
- बौद्ध मठ में 12 वर्ष की शिक्षा के पश्चात् उपसम्पदा संस्कार होता था जो वेदिक काल के समावर्तन संस्कार जैसा था। इस संस्कार के पश्चात् सामनेर (विद्यार्थी) पूर्ण भिक्षु बन जाता था। गृहस्थ आश्रम में जाने वाले छात्रों का उपसम्पदा संस्कार नहीं होता था।
- शिक्षा के लिए आय के साधन नहीं थे जो वैदिक कालीन शिक्षा में थे। मठों को निरन्तर वित्तीय सहायता मिलती रहे इसकी व्यवस्था की गई थी। राजकीय सहायता पहले से अधिक बड़ा दी गई

थी। शासन का संरक्षण प्राप्त था। राजस्व, धर्मस्व, उपहार, दान, समाज द्वारा सहायता भिक्षा तथा शुल्क आय के प्रमुख साधन थे।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था ने जीवन में पवित्रता एवं सात्विकता पर बल दिया। समाज में भेदभाव को समाप्त किया सभी जाति स्त्री पुरुषों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की। जीवन में संयम तथा अनुशासन लाने का प्रयास किया बौद्धकालीन शिक्षा धार्मिक आध्यात्मिक के साथ-साथ सांसारिक भी थी। इस शिक्षा में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का उपयोग किया जाता था। किन्तु कुछ वर्षों पश्चात् मठों में अवांछित बाते होने लगी। जीवन बनावटी तथा आडम्बरयुक्त बनने लगा और धीरे-धीरे बौद्ध धर्म भारत से उठ गया।

3.1.3.2 बौद्ध कालीन शिक्षा की कमियाँ

बौद्ध शिक्षा का जन्म वैदिक कालीन शिक्षा की कमियों को दूर करने के लिए आरंभ हुई थी इसलिए इसमें वैदिक काल की शिक्षा व्यवस्था की कमियाँ तो नहीं थी परन्तु यह मूल रूप में वैदिक कालीन शिक्षा के समान ही थी। परन्तु यह पूर्णत: दोष रहित नहीं थी इसमें भी बहुत सी कमियाँ थी जो निम्नानुसार है -

- बौद्ध शिक्षा धर्म से जुड़ी होने के कारण इसमें शिक्षक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। इस शिक्षा में बौद्ध धर्म के विचारों के बाहर किसी बात की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। शिक्षा द्वारा जनसामान्य को कट्टर बौद्ध-धर्मालम्बी बनाने का प्रयास किया जाता था।
- बौद्ध शिक्षा धर्म पर आधारित होने के कारण इसमें केवल आध्यात्मिक विकास पर बल दिया जाता था। इसमें सांसरिक शिक्षा पर कम बल दिया था।
- बौद्ध धर्म में पहले स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था नहीं थी परन्तु बाद में स्त्रियों को मठों में शिक्षा हेतु प्रवेश दिया गया। परन्तु बौद्ध काल में सम्पन्न कुलीन उच्च वर्ग की महिलाओं के लिए ही शिक्षा की व्यवस्था थी।
- बौद्ध शिक्षा में हस्त कार्यों तथा शारीरिक श्रम पर ध्यान नहीं दिया गया परिणाम स्वरूप हस्त कार्यों एवं श्रम के प्रति आदर की भावना समाप्त हो गई।
- बौद्ध कालीन शिक्षा में समय के साथ-साथ मठो में भिक्षु एवं भिक्षुणियों के परस्पर सम्पर्क से व्यविचार आरंभ हो गया जो बौद्ध धर्म पतन का मुख्य कारण था। इस वातावरण ने बौद्ध शिक्षा को बड़ा आघात पहुँचाया।
- अहिंसा में विश्वास रखने के कारण बौद्ध काल में अस्त्र-वस्त्र निर्माण सैनिक प्रशिक्षण पर कोई ध्यान नहीं दिया गया परिणाम स्वरूप देश सैनिक दृष्टि से कमजोर हो गया।

उपरोक्त कमियों के कारण बौद्ध धर्म का पतन हो गया और बौद्ध मठों एवं विहारों में दी जाने वाली शिक्षा धीरे-धीरे कम होने लगी।

3.1.3.3 बौद्ध कालीन शिक्षा की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपादेयता

बौद्ध शिक्षा से नैतिक चरित्र का विकास व्यक्तित्व का विकास जीविका की तैयारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भी प्रासंगिक है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली 'दस सिक्खा परानि' अर्थात दस पद आज भी पूर्णतया उपयोगी तथा सार्थक है इन दस आदेशों का छात्रों के द्वारा यदि पालन किया जायेगा तो वर्तमान समय के साम्प्रादायिक, वातावरण, भष्ट आचरण, मादक पदार्थों का प्रचलन, झूठ बोलना, दूसरों की निन्दा करना, आदि का स्वत: ही निर्वारण हो जायेगा। बौद्ध काल में प्रचलित छात्र-अध्यापक संबंधों को यदि पुनर्जीवित किया जाये तो वर्तमान शिक्षा संस्थाओं में दिन-प्रतिदिन होने वाली हड़ताल बन्द उपद्रव अध्यापकों के साथ अभ्रदता छात्र दंगे आदि स्वत: ही बंद हो जायेगे।

बौद्ध कालीन शिक्षा की निम्नलिखित विशेषताएं आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सम्मलित की जा सकती है –

1. शिक्षा संस्थाओं का प्रजातन्त्रिक संगठन
2. छात्रों तथा अध्यापकों का सरल जीवन
3. शान्ति एवं अंहिसा का अनुसरण
4. जन सामान्य की शिक्षा
5. आत्म निरीक्षण की स्वदोष अनुभूति

3.1.4. मुस्लिम काल में शिक्षा व्यवस्था

मुस्लिम काल 12 वीं शताब्दी से 18 वीं शताब्दी तक रहा मुस्लिम काल में शिक्षा का प्रसार उपयोग मुस्लिम धर्म के प्रचार-प्रसार में किया। इसकाल के सभी वंशों में शिक्षा के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति थी। अपने धर्म एवं प्रसार के लिए कई शासकों ने वैदिक संस्थाओं गुरुकुल मठ, विहारों को नष्ट कर उनके स्थान पर मकतब व मदरसों की स्थापना की। कुतुबद्दीन अल्तमश रजिया नसीरूद्धीन व वलवन ने अपने-अपने शासन काल में अनेकों मकतब मदरसों की स्थापना की जिसमें मुस्लिम धर्म की शिक्षा दी जाती थी। जलालुद्दीन एक उदार शासक था उसने सभी प्रकार की शिक्षा को प्रोत्साहित किया।

तुगलक वंश में फिरोज तुगलक के समय शिक्षा का प्रसार तेजी से हुआ। उसने 30 से अधिक मदरसों की स्थापना की उसने मुस्लिम शिक्षा के साथ साथ व्यवसायिक शिक्षा को भी विकसित किया। मुगल काल में मुस्लिम शिक्षा के एक नये युग की शुरूवात हुई। बाबर ने शिक्षा संबंधी कई नई योजना बनाई तथा हुमायुं ने दिल्ली में एक विशाल पुस्तकालय बनवाया। अकबर के समय इस्लामी शिक्षा के विकास के कई अवसर प्राप्त हुए उसने मुस्लिम शिक्षा के साथ-साथ हिन्दुओं की शिक्षा की उचित व्यवस्था की। जहाँगीर एवं शाहजहाँ का काल इस्लामी शिक्षा के विकास की दृष्टि से सामान्य रहा। औरंगजेब के शासन काल में इस्लामी शिक्षा को विकसित करने का पर्याप्त अवसर मिला, उसने हिन्दु शिक्षण संस्थाओं को नष्ट कर मकतब व मदरसों की स्थापना की।

औरंगजेब के पश्चात् मुगलकाल धीरे-धीरे पतन की ओर चला गया। इस सबके पश्चात् हम यह कह सकते है कि इस्लाम काल में शिक्षा की उन्नति शासक की रूचि, मनोवृत्ति पर आधारित रही। सभी ने अपने-अपने तरह से शिक्षा का विकास किया।

3.1.4.1 मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था की विशेषताएं

- मुस्लिम काल में शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित थे –
    - इस्लाम धर्म का प्रसार करना
    - इस्लामी संस्कृति का प्रसार करना
    - ज्ञान का प्रसार करना
    - मुस्लिम शासन को मजबूत करना
    - सांसरिक सुखों की प्राप्ति
    - नैतिकता का विकास
- मुस्लिम शिक्षा का प्रारम्भ विस्मिल्लाह रस्म से होता था। बालक की उम्र 4 वर्ष 4 माह 4 दिन होने पर उसे नये कपड़े पहनाकर मौलवी साहब के पास ले जाते थे। मौलवी साहब कुरान की कुछ आयतें पढ़ते थे और बच्चा उनकों दुहराता था यदि बालक उन आयतों को नहीं दुहरा पाता था तब विस्मिल्लाह शब्द कहना ही पर्याप्त समझा जाता था तथा बालक की औपचारिक शिक्षा प्रारंभ हो जाती थी। मौलवी साहब को कुछ नजराना देकर बालक को मकतब में प्रवेश करा दिया जाता था। धनी एवं सम्पन्न लोग मौलवी साहब को घर बुलाकर यह रस्म पूरी करते थे। मुस्लिम संस्कृति की विस्मिल्लाह रस्म वैदिक काल के उपनयन संस्कार तथा बौद्ध काल के प्रव्रज्या संस्कार से मिलती जुलती थी।
- मुस्लिम का काल में शिक्षा की दो प्रमुख संस्थायें मकतब तथा मदरसा थी। मकतब में प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी जबकि मदरसों में उच्च शिक्षा देने की व्यवस्था थी। विस्मिल्लाह की रस्म के बाद बालक मकतब में शिक्षा लेने के लिए प्रवेश करते थे। मकतब मस्जिदों से जुड़े रहते थे तथा मौलबी ही इसमें अध्यापक होते थे। मकतब से शिक्षा प्राप्त कर छात्र मदरसों में प्रवेश लेते थे इनका संचालन व्यक्तिगत, समितियों या समाज के धनी लोगों द्वारा किया जाता था।

पाठ्यक्रम - मकतबों में दी जाने वाली प्रारम्भिक शिक्षा में लिखना, पढ़ना, साधारण गणित, पत्र-व्यवहार अर्जी नवीसी, अरबी फारसी की शिक्षा प्रदान करके उनमें जीविकोपार्जन की क्षमता विकसित की जाती थी। मदरसों में दी जाने वाली शिक्षा का पाठ्यक्रम दो भागों में बटा था लौकिक एवं धार्मिक। लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत अरबी, व्याकरण, साहित्य, तर्कशास्त्र, दर्शन शास्त्र कानून ज्योतिष शास्त्र गणित इतिहास भूगोल यूनानी चिकित्सा कृषि आदि विषय आते थे। धार्मिक शिक्षा

के अन्तर्गत कुरान हरीस (परम्पराएँ) तथा फिक (धर्मशास्त्र) का अध्ययन छात्रों को कराया जाता था।

- **शिक्षण विधि** – इस काल में शिक्षा मौखिक दी जाती थी रटन्त एवं स्मरण पर अधिक बल दिया जाता था। शिक्षक प्राय: व्याख्यान प्रश्नोत्तर व वाद-विवाद विधियों की सहायता से शिक्षण कार्य करते थे। बौद्ध काल की तरह मुस्लिम काल में मानीटर प्रणाली प्रचलित थी अध्यापक की अनुपस्थिति में बड़ी कक्षा के छात्र छोटे को पढ़ाते थे। राज दरबार में बड़े विषयों पर शास्त्रार्थ भी होता था। शिक्षा का माध्यम अरबी एवं फारसी था। शिल्पकला के छात्र करके सीखने के सिद्धान्त का पालन करते थे।
- **अध्यापक छात्र संबंध** – मुस्लिम काल में प्राचीन काल की तरह छात्र एवं अध्यापक में घनिष्ठ संबंध होते थे। शिक्षक को समाज में अत्यन्त सम्माननीय स्थान दिया जाता था। मदरसों के साथ छात्रावास होने के कारण अध्यापक छात्रों के व्यक्तिगत सम्पर्क में रहते थे। मुस्लिम काल के अन्त में यह संबंध धीरे-धीरे खत्म होने लगा और छात्र अनुशासनहीनता करने लगे। औरंगजेब ने भरे दरबार में अपने अध्यापक शाह सालेह का अपमान किया था।
- **परीक्षा प्रणाली** – इस काल में कोई औपचारिक परीक्षा प्रणाली नहीं थी शिक्षक के द्वारा छात्रों के ज्ञान को पर्याप्त समझने पर शिक्षा समाप्त समझी जाती थी। छात्रों के द्वारा असाधारण ज्ञान न योग्यता का प्रदर्शन करने पर उन्हें कामिल आलिम फाजिल आदि उपाधियों से नवाजा जाता था। साहित्य के छात्रों को कालिम, धार्मिक शिक्षा के छात्रों को आलिम एवं तर्क एवं दर्शन के छात्रों को फाजिल की उपाधि दी जाती थी। राज दरबार में नौकरी पाने के लिए उन्हें दरबार में अपनी योग्यता सिद्ध करनी होती थी।
- **अनुशासन एवं दण्ड** – मुस्लिम काल में छात्र अत्याधिक अनुशासित थे। नैतिक व व्यवहारिक शिष्टाचार, विनयशीलता तथा आत्मानुशासन सभी छात्रों के लिए अनिवार्य था। दैनिक पाठ याद न करने, झूठ बोलने पर, अनैतिक आचरण करने पर कठोर शारीरिक दण्ड दिया जाता था।
- **नारी शिक्षा** – मुस्लिम काल में पर्दा प्रथा के कारण नारी शिक्षा का विकास काफी कम हुआ। कम आयु की लड़कियाँ मकतबों में जाकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर लेती थी। परन्तु उच्च शिक्षा की घर पर ही व्यवस्था होती थी। इसलिए उच्च शिक्षा केवल शाही तथा उच्च घरानों तक ही सीमित थी।
- **व्यवसायिक शिक्षा**-मुस्लिम काल में ललितकला, हस्तकला, तथा वास्तुकला जैसी व्यवसायिक शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। परन्तु इस प्रकार की शिक्षा के लिए कोई औपचारिक शिक्षा संस्थाएं नहीं थी। इन कलाओं को दस कारोबारों के साथ काम करके छात्रगण इनका प्रशिक्षण लेते थे। इस काल में सैनिक शिक्षा का भी पर्याप्त विकास हुआ इस समय घुड़सवारी, तीरंदाजी, युद्ध संचालन व अस्त्र शस्त्रों का प्रशिक्षण दिया जाता था।

- **छात्रावास -**मुस्लिम काल में मदरसों में पढ़ने के लिए छात्र दूर-दूर से आते थे इसलिए अधिकांश मदरसों के साथ छात्रावास की व्यवस्था रहती थी। इन के लिए समाज के धनी लोगों द्वारा जमीन प्रदान की जाती थी जिसकी आय से ये चलते थे। वैदिक कालीन आश्रमों बौद्धकालीन मठों की अपेक्षा मुस्लिम कालीन छात्रावासों में जीवन अधिक सुखदायक एवं सुविधा सम्पन्न था। ये आबादी के बीच शहर में होते थे।
- **वित्त व्यवस्था-**राज्य एवं समाज के धनी सम्पन्न लोगों की सहायता मे से शिक्षण संस्थाएं चलती थी।

छह सौ वर्षों तक मुस्लिम शिक्षा पद्धति भारत वर्ष में खूब प्रचलित रही। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के प्रसार के साथ-साथ मुस्लिम शिक्षा संस्थाएं लुप्त होने लगी। आज भी मकतब एवं मदरसें चलाये जा रहे हैं परन्तु उनकी शिक्षा जीवन उपयोगी नहीं है। नि:सन्देह मुस्लिम शिक्षा ने भारतीय जीवन प्रणाली पर ऐसी अमिट छाप छोड़ी है जिसका आभास आधुनिक समय में भी स्थान-स्थान पर हो जाता है। मुस्लिम शिक्षा में धार्मिक एवं सांसरिक शिक्षा का अनोखा समन्वय था। इस समय इतिहास का लेखन बड़ी तेजी से हुआ मुस्लिम काल की सबसे बड़ी उपलब्धि उर्दू भाषा की उपत्ति थी। परन्तु शिक्षण कार्य फारसी एवं अरबी में होने के कारण आधिकांश समय भाषा सीखने में खर्च हो जाता था। पर्दा प्रथा के कारण महिलाएं शिक्षा के अवसरों से वंचित थी।

3.1.4.2 मुस्लिम शिक्षा की कमियाँ

मध्यकाल में प्रचलित मुस्लिम शिक्षा प्रणाली की प्रमुख कमियां निम्नानुसार है –

- इस काल में इस्लाम धर्म की शिक्षा पर अत्याधिक बल दिया गया। प्रारम्भिक शिक्षा मौलबी के द्वारा दी जाती थी शिक्षा के द्वारा हिंदुओं के दिमाग में इस्लाम के सिद्धान्तों तथा आदर्शों को प्रवेश कराया गया।
- मुस्लिम काल की शिक्षा का माध्यम अरबी एवं फारसी था। राज काज की भाषा अरबी एवं फारसी होने के कारण राजपदों पर नियुक्ति के लिए इनका जानना आवश्यक होता था। इस कारण लोक भाषों की उपेक्षा हुई।
- मुस्लिम काल में पर्दा प्रथा होने के कारण स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं हो सके। छोटी लड़कियों को प्रारम्भिक शिक्षा ही प्राप्त हो पाती थी। उच्च शिक्षा शाही बड़े घरानों की स्त्रियों तक ही सीमित थी।
- मुस्लिम काल में शिक्षा के भौतिक पक्ष पर अधिक बल दिया गया। शिक्षा का उद्देश्य सांसरिक सुखों वैभव ऐश्वर्य प्राप्त करना था।
- इस काल में हिन्दुओं की शिक्षा की उपेक्षा की हिंदु मकतबों में जाकर नहीं पड़ते थे। इसलिए इस काल में हिंदुओं की शिक्षा ठीक से नहीं हो पायी।

- मुस्लिम काल की शिक्षा का एक प्रमुख कठोर शारीरिक दण्ड देना था। बेंत लगाना,कोड़े मारना, थप्पड़ मारना आदि शारीरिक दण्ड दिया जाता था।
- मुस्लिम काल में छात्रों को अनेक प्रकार के सुख-साधन उपलब्ध होते थे जिसके कारण वे भोग बिलासी हो गये थे।
- राजकीय संरक्षण प्राप्त न होने के कारण शिक्षा की प्रकृति व्यापक नहीं थी। कट्टरता के कारण मुस्लिम शिक्षा व्यापक रूप नहीं ले सकी। जिसके कारण शिक्षा एक वर्ग तक ही सीमित रह गई।
- मुस्लिम शासकों की शिक्षा संबंधी नीति स्थिर न होने के कारण शिक्षा प्रणाली कोई व्यवस्थित रूप नहीं ले सकी।

3.1.4.3 मुस्लिम शिक्षा की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपदेयता

मुस्लिम कालीन शिक्षा व्यवस्था में कुछ ऐसी विशेषताएं है जिनका समावेश हम आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कर सकते हैं। जैसे – धार्मिक एवं सांसरिक शिक्षा का समन्वय अध्यापक एवं छात्रों के बीच मधुर संबंध चरित्र निर्माण पर बल व्यवसायिक शिक्षा के प्रशिक्षण आदि को वर्तमान शिक्षा में शामिल कर सकते है। मुस्लिम शिक्षा के निम्नलिखित तत्वों को आधुनिक भारतीय शिक्षा में जोड़ा जा सकता है।

1. व्यवहारिक शिक्षा
2. अध्यापक एवं छात्रों के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क
3. धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा का समन्वय
4. शिक्षक के स्तर में बढ़ोत्तरी
5. कक्षा नायकीय प्रणाली

3.1.5. ब्रिटिश काल में शिक्षा व्यवस्था

ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था को हम दो भागों में विभाजित कर सकते है। पहला काल ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने (1601) से 1900 तक और दूसरा काल बीसवीं शती के प्रारंभ में शिक्षा व्यवस्था, प्रथम काल को हम ब्रिटिश काल के पूवार्द्ध में शिक्षा व्यवस्था तथा द्वितीय काल को हम ब्रिटिश काल के उत्तरार्द्ध में शिक्षा व्यवस्था, कह सकते है जिसका विवरण निम्नानुसार है।

3.1.5.1 ब्रिटिश काल के पूर्वार्द्ध में शिक्षा व्यवस्था (1601 से 1900 तक)

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी 1601 में व्यापार करने भारत आई थी। सन 1757 में प्लासी के युद्ध के पश्चात् बंगाल का शासन अंग्रेजो के हाथ आ गया इसके पश्चात ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत पर हो गया। सन 1857 में ब्रिटिश शासन ने भारत का शासन प्रबन्ध अपने अधिकार में ले लिया।

ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापार करने आई थी न की शासन करने। अत: उसका कार्य समाज को शिक्षित करना नहीं था। व्यापार करने में उन्हें भाषा की परेशानी होती थी इसलिए भारतीयों को अंग्रेजी सिखाने के लिए उन्होंने ईसाई मिशनरियों की सहायता ली। इसाई मिशनरियों ने धर्म प्रचार करने के लिए भी शिक्षा का सहारा लिया। इसके लिए उन्होंने अनेक स्कूलों की स्थापना की इस प्रकार आधुनिक शिक्षा का प्रारंभ भारत में हुआ जो पर्याप्त नहीं थे तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में जन सामान्य की शिक्षा के प्रति लगभग उदासीन रही।

3.1.5.1.1 मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास

यूरोपीय व्यापारियों के भारत में व्यापार करने आने के पश्चात वहाँ की ईसाई मिशनरियों ने भी भारत में धर्म प्रचार करना प्रारंभ कर दिया। इसके लिए उन्होंने शिक्षा की सहायता ली। शिक्षा की सहायता से उन्होंने अपने धर्म विचारों एवं सिद्धान्तों को भारतीयों तक पहुँचाया। पाश्चात्य ढंग की शिक्षा प्रदान करने के लिए अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। इसलिए इसाई मिशनरियों को आधुनिक भारतीय शिक्षा का प्रवर्तक माना जाता है। इस समय भारत में डच डेन फ्रासिसी ब्रिटिश मिशनरियां कार्यरत थी जिन्होंने देश के अलग-अलग भागों में अनेक स्कूलों की स्थापना की। इस काल में घटित कुछ प्रमुख शैक्षिक घटनाएं निम्नानुसार है।

3.1.5.1.2 सीरामपुर त्रिमुर्ति – कैरे,वार्ड तथा मार्शमैन तीन लोगों ने सीरामपुर बंगाल में ईसाई धर्म प्रचार तथा हिन्दु एवं मुस्लिम धर्म की आलोचना करने वाली एक पुस्तक का प्रकाशन किया इससे हिन्दु मुस्लमानों ने इसका विरोध किया तब लार्ड मिंटो ने इन पादरियों को बंद कर दिया तथा मिश्नरियों के धर्म प्रचार पर रोक लगा दी।

3.1.5.1.3 चार्ल्स ग्राण्ट के शैक्षिक प्रसास – चार्ल्स ग्राण्ट ने सन 1792 में एक पाँच सूत्रीय योजना प्रस्तुत की जिसमें भारत में विद्यालयों की स्थापना अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा, अंग्रेजी साहित्य की शिक्षा, पाश्चात्य ज्ञान व विज्ञान का प्रसार तथा ईसाई धर्म के प्रचार की आवश्यकता पर बल दिया।

3.1.5.1.4 सन् 1813 का आज्ञा पत्र – सन् 1813 का आज्ञा पत्र का भारतीय शिक्षा के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसने भारतीयों की शिक्षा के प्रति ईस्ट इंडिया कम्पनी के उत्तरदायित्व को निश्चित कर दिया जिसके फलस्वरूप भारतीय शिक्षा को एक नवीन दिशा मिली। इसे भारत में ब्रिटिश शिक्षा पद्धति का शिलालेख भी कहा जाता है।

3.1.5.1.5 प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा विवाद – 1813 के आज्ञा पत्र के अनुसार स्वीकृत राशि किन शिक्षा संस्थानों को दी जायेगी, संस्कृत-फारसी के माध्यम की शिक्षा संस्थाओं या अंग्रेजी माध्यम की पाश्चात्य संस्थाओं को इस पर विवाद होने से निर्धारित धन राशि ठीक से खर्च नहीं हो सकी।

3.1.5.1.6 मैकाले का विवरण पत्र – सन 1835 में लार्ड मैकाले ने भारत में शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजी माध्यम से यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार करना घोषित किया, जिससे पाश्चात्य तथा विज्ञान में

रंगे भारतीय तैयार हो सके जो अंग्रेजी शासन में सहायक हो। इसने सम्भ्रान्त वर्ग को शिक्षित करने के लिए कहा।

3.1.5.1.7 वुड का घोषणा पत्र – सन 1854 में वुड घोषणा पत्र में तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था के पुनरीक्षण तथा शैक्षिक पुन निर्माण के लिए नीति को प्रस्तुत किया जिसमें जनसाधारण के लिए शिक्षा व्यवस्था करने छोटी कक्षाओं में प्रान्तीय भाषाओं में शिक्षा देने, अध्यापकों को प्रशिक्षिण प्रारंभ करने तथा विश्वविद्यालय स्थापना की बात कही गई थी।

3.1.5.1.8 हंटर आयोग – सन 1882 में गठित हंटर आयोग ने देशी शिक्षा को प्रोत्साहन देने, प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने तथा सत्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ शिक्षा का उत्तरदायित्व वैयक्तिक संस्थाओं को सौंपने तथा उदारता पूर्वक सहायता अनुदान देने की अनुशंसा की।

3.1.5.2 ब्रिटिश शासन के उत्तरार्द्ध में शिक्षा व्यवस्था

इसे हम बीसवीं शती के प्रारंभ की शिक्षा व्यवस्था भी कह सकते है। हंटर की शिक्षा व्यवस्था से जन साधारण संतुष्ट नहीं था अंग्रेजी माध्यम से कुछ लोग ही पाश्चात्य ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं तथा इसके कारण भारतीय संस्कृति का लोप होता जा रहा है। सन 1899 में लार्ड कर्जन भारत वायसराय बरकर आये। लार्ड कर्जन का मानना था कि शिक्षा में सुधार करके ही प्रशासन को सुधारा जा सकता है। उसका मानना था कि प्राथमिक शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाये एवं उच्च शिक्षा पर अधिक नियंत्रण रखा जायेगा। इसलिए उसने 1901 में शिमला में एक सम्मेलन किया जिसमें किसी भारतीय को हीं बुलाया गया। इसमें 150 प्रस्तावों का पारित किया गया। विश्वविद्यालयों पर सरकारी नियंत्रण बढ़ाने की तीव्र आलोचना हुई विवश होकर 1902 सर थामस रैले की अध्यक्षता में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया। 1904 में लार्ड कर्जन ने भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पास कराया नई शताब्दी में भारतीय शिक्षा नीति में अनेक परिवर्तन आये। लार्ड कर्जन ने शिक्षा की गुणात्मकता पर बल दिया। लार्ड कर्जन ने मैकाले की नीति की कठोर आलोचना की। उसने शिक्षा के क्षेत्र में अधिक धन राशि खर्च की प्रचलित शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में उसके द्वारा किये गये व्यापक सुधारों के कारण भारतवासी सदैव उसे याद करेंगे किन्तु पाश्चात्य सभ्यता का उपासक होने एवं भारतीय संस्कृति का विरोधी होने के कारण वह भारतीयों का प्रिय नहीं बन सका। इसकाल की प्रमुख घटनायें निम्नानुसार है।

3.1.5.2.1 शिमला सम्मेलन – लार्ड कर्जन ने भारत में शैक्षिक सुधार हेतु1901 में शिमला में एक शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया इसमें शिक्षा से सम्बन्धित 150 प्रस्तावों को पारित किया गया।

3.1.5.2.2 भारतीय विश्वविद्यालय आयोग 1902-सन1902 में सर थामस रैले की अध्यक्षता में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया इस आयोग में दो भारतीय सदस्य भी थे। इस आयोग के सुझावों को विश्वविद्यालय शिक्षा प्रणाली को पुनगर्ठन किया गया।

3.1.5.2.3 शिक्षा नीति संबंधी सरकारी प्रस्ताव 1904 – शिमला सम्मेलन पारित प्रस्तावों के आधार पर लार्ड कर्जन ने 1904 को शिक्षा नीति सम्बधी सरकारी प्रस्ताव प्रकाशित किया। इन प्रस्ताव में

प्राथमिक शिक्षा के सक्रिय विस्तार पर जोर दिया माध्यमिक शिक्षा को सुदृढ़ करने की बात की गई एवं सरकारी संस्थाओं में केवल धर्म निरपेक्ष शिक्षा दी जाने की बात कही गई।

3.1.5.2.4 राष्ट्रीय आन्दोलन व शिक्षा – कांग्रेस के द्वारा संचालित राष्ट्रीय आन्दोलन का शिक्षा के विकास पर काफी प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने भारतीय आदर्शों पर आधारित तथा भारतीय भाषाओं में दी जानेवाली ऐसी शिक्षा की माँग की जिस पर भारतीयों का नियंत्रण हो।

3.1.5.2.5 गोखले का प्रस्ताव – गोपाल कृष्ण गोखले ने सन 1910 व 1911 में केन्द्रीय धारा में प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क तथा अनिवार्य बनाने के लिए प्रस्ताव रखा जो कि अस्वीकार कर दिया गया।

3.1.5.2.6 शिक्षा नीति, सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव (1913)

सन 1913 में जारी सरकारी प्रस्ताव में निरक्षरता दूर करने तथा प्राथमिक शिक्षा पर अधिक धन व्यय करने की नीति को स्वीकार किया गया।

3.1.5.2.7 सैलडर आयोग – सन 1917 में सैलडर की अध्यक्षता में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया। जिसमें स्नातक पाठ्यक्रम 3 वर्ष करने सीमेट एवं सिंडी केट के स्थान पर छोटे आकार की प्रतिनिधि सभा गठित करने एवं प्रत्येक प्रान्त में माध्यमिक व इंटरमीडिएट बोर्ड बनाने की सिफारिश की गई।

3.1.5.2.8 राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन – राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन में शिक्षा पर भारतीय नियंत्रण मातृभूमि प्रेम के लिए शिक्षण तथा पाश्चात्य की नकल न करने की मांग की गई।

3.1.5.2.9 हर्टांग समिति – सन 1929 में गठित हर्टांग समिति ने प्राथमिक शिक्षा को राष्ट्रीय आवश्यकता मानते हुए इसका उत्तरदायित्व शासन पर होने की सिफारिश की। उसने विश्वविद्यालयों में प्रवेश के नियमों को कठोर बनाने की अनुशंसा भी की।

3.1.5.2.10 एबड-वुड रिपोर्ट – सन 1937 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में एवड तथा बुड ने सामान्य शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा के विकास के संबंध में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफारशे की।

3.1.5.3. ब्रिटिश काल में शिक्षा की विशेषताएँ

ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थी –

- **शिक्षा के उद्देश्य** - ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित थे –
- भारतीयों का बौद्धिक तथा नैतिक विकास करना
- भारत में यूरोपियन साहित्य तथा विज्ञान का प्रसार करना
- भारतीयों का आर्थिक विकास करना
- ब्रिटिश शासन की सहायता के लिए भारतीयों को प्रशिक्षित करना

- **शिक्षण संस्थाएं** – ब्रिटिश काल में प्राथमिक माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के तीन स्तर थे। 1857 में कलकत्ता, बम्बई एवं मद्रास में विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही भारत में आधुनिक काल के विश्वविद्यालयों की स्थापना का युग प्रारंभ हुआ था।
- **पाठ्यक्रम** – ब्रिटिश काल में इतिहास, भूगोल, गणित सामाजिक अध्ययन कृषि आदि विषयों के साथ यूरोपियन साहित्य एवं विज्ञान को अधिक महत्व दिया गया। छोटी कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी। जबकि माध्यमिक एवं उच्च कक्षाओं में माध्यम अंग्रेजी था।
- **शिक्षण विधि** – प्राचीन एवं मध्यकाल की तरह इस काल में भी अधिकांशत: व्याख्यान विधि का प्रयोग किया जाता था। विज्ञान विषयों में प्रयोगात्मक शिक्षण की व्यवस्था थी।
- **अध्यापक प्रशिक्षण** – ब्रिटिश काल में अध्यापकों को औपचारिक प्रशिक्षण देना प्रारंभ किया। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के शिक्षको के लिए नवीन शिक्षण विधियाँ शिक्षा मनोविज्ञान तथा विद्यालय प्रशासन का ज्ञान कराकर उन्हें शिक्षण कला मै निपुण किया जाता था।
- **परीक्षा प्रणाली** – ब्रिटिश काल में औपचारिक परीक्षा प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। मौखिक लिखित एवं क्रियात्मक परीक्षा के द्वारा छात्रों के शैक्षिक विकास को मापा जाता था। विभिन्न विषयों में छात्र के ज्ञान को अंको के रूप में व्यक्त किया जाता था। छात्रों का उत्तीर्ण, अनुत्तीर्ण, प्रथम द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी देने का रिवाज भी इसी काल में प्रारम्भ हुआ।
- **व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा** – व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा का विधिवत शिक्षण कार्य भी ब्रिटिश शासन के दौरान प्रारम्भ हुआ। इंजीनियरिंग कालेज तकनीकी शिक्षा संस्था,कृषि कालेज आदि संस्थाएं खोली गई। मिडिल एवं हाई स्कूल में व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा को स्थान दिया गया।
- **बुनियादी शिक्षा** – 1937 में प्रान्तों के शासनक की बागडोर कांग्रेस के हाथ में आने के बाद वर्धा शिक्षा सम्मेलन में बुनियादी शिक्षा योजना को स्वीकृति मिली। जिसे बेसिक शिक्षा योजना या वर्धा शिक्षा योजना भी कहते है। इसमें उत्पादक शिल्पकला के माध्यम से सभी बालक बालिकाओं को नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था थी। महात्मा गांधी की बेसिक शिक्षा आत्म निर्भरता पर आधारित थी।
- **स्त्री शिक्षा** – ब्रिटिश कालीन शिक्षा के प्रारम्भिक वर्षों में स्त्री शिक्षा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई परन्तु बाद के वर्षों में स्त्री शिक्षा के लिए प्रयास किये गये ओर अनेक कन्या विद्यालय खोले गये।
- **छात्र-शिक्षक सम्पर्क** – ब्रिटिश कालीन शिक्षा में छात्र एवं शिक्षक संबंध औपचारिक रहे। यद्यपि छात्र अपने गुरुओं को आदर करते थे तथा शिक्षक अपने ज्ञान से छात्रों को प्रभावित करते थे, फिर भी छात्र एवं शिक्षक के सम्बन्धों में पहले जैसी आत्मीयता नहीं थी।

- **वित्त व्यवस्था** – ब्रिटिश काल में शिक्षा की वित्तीय व्यवस्था में पर्याप्त परिवर्तन हुआ। शैक्षिक वित्त का प्रमुख साधन सरकारी सहायता, स्थानीय संस्था कोष,नगर पालिका कोष, शिक्षा शुल्क उपहार व निजी दान थे। इस काल में शिक्षण सामग्री एवं भवनों पर अधिक व्यय किया गया।

3.1.5.4. ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था की कमियाँ

ब्रिटिश कालीन शिक्षा व्यवस्था को यूरोपियन शैली में ढाला गया था। इसमें प्राचीन शिक्षा प्रणाली की उपेक्षा की गई। भारत में शिक्षा का प्रसार अंग्रेजों की राजनैतिक मजबूरी थी। इसी कारण ब्रिटिश कालीन शिक्षा में अनेक दोष दिखाई देते है। जो निम्नानुसार हैं –

- शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट नहीं थे।
- शिक्षा की योजना अस्पष्ट थी।
- शिक्षा का अंग्रेजी माध्यम होना।
- स्वदेशी संस्थाओं की उपेक्षा।
- राष्ट्रीय चरित्र के प्रतिकूल।
- धर्म विहीन शिक्षा को प्रोत्साहन।
- भारतीय संस्कृति की उपेक्षा।
- सरकार का शिक्षा पर अधिक नियंत्रण।
- जन साधारण की शिक्षा की उपेक्षा।
- अधोगामी निस्पन्दन प्रणाली का अनुसरण।
- साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण।

3.1.6. स्वतंत्रता पश्चात भारतीय शिक्षा व्यवस्था (1947 के पश्चात)

स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय शिक्षा के विकास में नये युग की शुरूआत हुई। भारतीय संविधान में शिक्षा के महत्व को भली भांति स्वीकार किया तथा देश की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को केन्द्र एवं राज्यों के मध्य अनुकूल ढंग से विभाजित कर दिया जिससे केन्द्र एवं राज्य अपने-अपने स्तर पर शिक्षा का नियोजन करके शैक्षिक विकास को सुनिश्चित कर सकें। स्वतंत्रता के पश्चात एक प्रमुख समस्या शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन तथा शिक्षा के अवसरों का विस्तार करना था। सभी को नि:शुल्क शिक्षा देना, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, निरक्षरता, माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार, विज्ञान तकनीकी शिक्षा का विस्तार,लड़कियो, पिछड़ो,अ.जा/अ.जा.जा. व अल्पसंख्यको के शैक्षिक विकास को सुनिश्चित करना तथा मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा व राष्ट्रभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने जैसी अनेक समस्यायें भारत के शिक्षाविदों के समाने थी। इन सब

समस्याओं को हल करने के लिए भारत सरकार ने समय समय पर कई आयोग एवं समितियों का गठन किया जिनकी सिफारशों पर अमल करके भारतीय शिक्षा व्यवस्था में निरन्तर सुधार किया जा रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् सन 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का सन् 1952 में डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदलियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा का आयोग तथा सन् 1964 में डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन विभिन्न स्तरों की शिक्षा समस्याओं का अध्ययन करने तथा उनका समाधान निकालने के लिए किया, इसी प्रकार केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने कई समितियों का गठन भी किया। सन 1968 तथा सन् 1986 में घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा सन् 1979 में तैयार किया गया शिक्षा का मसौदा भी भारतीय शिक्षा के विकास के कुछ दिलचप्स मोड़ है। सन् 1986 व सन् 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लिए कार्यान्वयन कार्यक्रम भी तैयार किये गये। सन् 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कुछ संशोधन भी किये गये। सन् 2018-19 में नई शिक्षा नीति आने की सम्भावना है जिनकी तैयारी चल रही है।

3.1.6.1 भारतीय संविधान में शिक्षा – स्वतन्त्र भारत के संविधान में शिक्षा के संबंध में अनेक प्रावधान किए गये हैं। राज्यों व केन्द्रों के संवैधानिक कर्तव्यों तथा अधिकारों को स्पष्ट किया गया है।

3.1.6.1.1 शिक्षा का अधिकार – संविधान के अनुच्छेद 21 में शिक्षा के अधिकार को एक विकसित अधिकार के रूप में सम्मलित किया गया है। वर्ष 2002 में 46 वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में अनुच्छेद 21 क को जोड़कर प्रारम्भिक शिक्षा को नागरिकों का मूल अधिकार बना दिया। इस के अनुसार राज्य 6 से 14 वर्ष के आयु के सभी छात्रों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करें।

3.16.1.2 शैशवपूर्ण देशभाल तथा शिक्षा – संविधान के अनुच्छेद 45 के अनुसार 6 वर्ष तक के सभी बच्चों को शैशवपूर्ण देखभाल तथा शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व राज्यों को सौंपा गया।

3.1.6.1.3 अल्पसंख्यकों की शिक्षा – संविधान के अनुच्छेद 30 के अनुसार धर्म तथा भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक समुदाय अपनी पसन्द की शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिक्षा संस्थाएं खोल सकते है।

3.1.6.1.4 शिक्षा के समान अवसर – अनुच्छेद 29 के अनुसार व्यवस्था की गई है कि जाति, धर्म, भाषा आदि के आधार पर किसी भी व्यक्ति को शिक्षा संस्था में प्रवेश के लिए नहीं रोका जा सकता है।

3.1.6.1.5 अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति की शिक्षा संविधान के अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जाति, जन जाति तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों की शैक्षिक व आर्थिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने का उत्तरदायित्व राज्य को दिया गया।

3.1.6.1.6 धार्मिक शिक्षा की स्वतंत्रता – संविधान के द्वारा शिक्षा संस्थाओं में किसी धर्म विशेष की शिक्षा प्रदान करने पर पाबन्दी लगाई गई है। अनुच्छेद 28 में यह व्यव्स्था करते हुए छात्रों को धार्मिक शिक्षा की स्वतंत्रता से मुक्त किया गया है।

3.1.6.1.7 मातृभाषा में शिक्षा-संविधान के अनुच्छेद 350-A में भाषायी अल्पसंख्यको के लिए उनकी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने का संवैधानिक उत्तरदायित्व राज्य को सौंपा गया है।

3.1.6.1.8 हिन्दी भाषा का विकास – संविधान के अनुच्छेद 351 में हिन्दी भाषा के विकास व प्रचार-प्रसार का उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार को दिया गया है।

3.1.6.1.9 स्त्रियों एवं पिछड़ा वर्ग की शिक्षा – संविधान के अनुच्छेद 15 (3 व 4) में महिलाओं तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान करने पर किसी प्रकार की रोक न लगाने की व्यवस्था की गई है।

3.1.6.1.10 केन्द्र एवं राज्यों के शैक्षिक अधिकार – संविधान में कुछ विशिष्ट बातों को छोड़कर शिक्षा सम्बन्धी कानून व व्यवस्था के अधिकार राज्यों को दे दिये गये थे। केन्द्र को राष्ट्रीय महत्व की शिक्षा संस्थाएं केन्द्रीय विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा व अनुसन्धान के स्तर आदि विषयों पर कानून बनाने तथा व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया था। परन्तु सन 1977 में किये गये संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित कर दिया गया। अत: अब शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर केन्द्र व राज्य को ही अपने-अपने ढंग से कानून व व्यवस्था का अधिकार प्राप्त है। परन्तु केंद्र व राज्यों के कानूनों में विरोध होने पर केन्द्र का कानून प्रभावी माना जायेगा।

3.1.6.2 प्रमुख शिक्षा आयोग – स्वतंत्रता के पश्चात देश की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा देने शिक्षा व्यवस्था को पुर्नगठित करने के लिए देश के नेताओं ने शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन पर बल दिया। जिससे शिक्षा व्यवस्था स्वतंत्र राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुकूल बन सकें। इसलिए भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार करने की दृष्टि से भारत सरकार ने समय समय पर कई शिक्षा आयोगों का गठन किया। इन आयोगो को शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विद्यमान समस्याओं का अध्ययन करके भारत सरकार को अपने सुझाव देने का निर्देश दिया। यहाँ हम इन आयोगों की चर्चा करेगें।

3.1.6.2.1 विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948-49 – इसे राधाकृष्ण आयोग भी कहते है। सन 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में इस आयोग का गठन किया गया इस आयोग ने उच्च शिक्षा के उद्देश्यों, अध्यापक कल्याण, शिक्षा के स्तर, स्नातकोत्तर शिक्षा, अनुसंधान, शिक्षा के माध्यम, परीक्षा प्रणाली,धार्मिक शिक्षा, छात्र कल्याण, ग्रामीण विश्वविद्यालय की स्थापना,स्त्री शिक्षा तथा अर्थ व्यवस्था की सुधार के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

3.1.6.2.2 मुदालियर आयोग – सन् 1952 में डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया इसे माध्यमिक शिक्षा आयोग भी कहते है। इसने माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिए अनेक सुझाव दिये। इस आयोग में माध्यमिक शिक्षा उद्देश्यों माध्यमिक शिक्षा के पुर्नगठन बहुउद्देशीय विद्यालयों, त्रिभाषा पढ़ाने का पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तकों, परीक्षा प्रणाली, अध्यापकों की सेवा शर्तें, निरीक्षण, न्यूनतम कार्य दिवस आदि से सम्बन्धित अनेक सिफारिशें की थी।

3.1.6.2.3 कोठारी आयोग – सन 1964 में डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने सभी स्तरों की शिक्षा के सम्बन्ध में विचार विमर्श किया। इस आयोग

ने पूरे देश में एक समान शिक्षा संरचना लागू करने की सिफारिश की। आयोग ने अध्यापक प्रशिक्षण, शैक्षिक समानता, स्कूल शिक्षा के विस्तार, पाठ्यक्रम,शिक्षण पद्धति व निरीक्षण,उच्च शिक्षा के उद्देश्यों व कार्यक्रम,विश्वविद्यालयों की व्यवस्था, कृषि,तकनीकी,व्यवसायिक व इंजीनियरिंग शिक्षा,अनुसन्धान, प्रौढ़-शिक्षा नियोजन व प्रशासन तथा शैक्षिक वित्त प्रबन्ध जैसे विषयों पर विस्तार से अध्ययन करने के सुझाव प्रस्तुत किये।

3.1.6.2.4 संस्कृत आयोग – सन् 1956 में संस्कृत भाषा व शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के लिए डॉ. सुनील कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में संस्कृत आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने संस्कृत शिक्षा, संस्कृत शिक्षण,संस्कृत अनुसंधान, पाण्डुलिपियाँ, संस्कृत विश्वविद्यालय तथा सामान्य नामक छह विषयों पर अत्यन्त महत्वपूर्ण सुझाव दिये। आयोग ने संस्कृत की शिक्षा तथा शिक्षण पर जोर देते हुए संस्कृत विश्वविद्यालय खोलने व संस्कृत अनुसन्धान पर बल दिया। उसने संस्कृत को कार्यालयी भाषा बनाने का सुझाव दिया।

3.1.6.2.5 राष्ट्रीय अध्यापक आयोग प्रथम – विद्यालय स्तर के अध्यापकों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने के लिए सन 1983-85 में प्रो. डी वी चट्टोपाध्याय की अध्यक्षता में इस आयोग का गठन किया गया था। इस आयोग ने अध्यापन वृति के उद्देश्य, अध्यापक सम्मान, अध्यापक प्रशिक्षण, आचार संहिता, अध्यापक कल्याण तथा प्रतिभाशाली व्यक्तियों को अध्यापन में आकृर्षित करने जैसे विभिन्न मुद्दों पर सरकार को सुझाव दिये। परन्तु केन्द्र सरकार निष्क्रियता से इस आयोग की सिफारिशो पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

3.1.6.2.6 राष्ट्रीय अध्यापक आयोग द्वितीय – तकनीकी शिक्षा सहित उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत अध्यापकों के लिए स् 1983 में प्रो. रईस अहमद की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया गया था। जिसमें विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापकों की सेवा शर्तों प्रोन्नति प्रावधानों तथा प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण करके अनेक महत्वपूर्ण सुझाव अपने प्रतिवेदन में प्रस्तुत किये। विद्यालय स्तर की तरह इस आयोग के सुझावों पर सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया।

3.1.6.3 प्रमुख शिक्षा समितियाँ

स्वतंत्रता के पश्चात् शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन करने तथा उनका समाधान करने के लिए अनेक समितियों का गठन किया गया जिनका विवरण निम्नानुसार है

- **आचार्य नरेन्द्र देव समिति** – इस समिति का गठन उ.प्र. सरकार द्वारा सन् 1952 में किया था। समिति ने उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा के विभिन्न पक्षों तथा पाठ्यक्रम के सम्बध में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये।
- **दुर्गाबाई देशमुख समिति** – सन् 1957 में लड़कियों की शिक्षा में सुधार लाने के लिए इस समिति का गठन किया गया जिसमें लड़कियों की शिक्षा के संबंध में कई सुझाव सरकार को दिये।

- **श्री प्रकाश समिति** – सन् 1959 में गठित इस समिति ने धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की जरूरत एवं इसकी पाठ्यवस्तु में सम्बन्ध पर अपने सुझाव रखें।
- **सम्पूर्णानंद समिति** – इस समिति ने राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए शिक्षा के योगदान के संबंध में सुझाव सरकार को दिये। इसका गठन 1961 में किया गया था।
- **हंसा मेहता समिति** – इस समिति का गठन शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर लड़कियों के पाठ्यक्रम बनाने के लिए किया था। समिति ने इस विषय पर अपने सुझाव सरकार को दिये इसका गठन 1964 में किया गया था।
- **10+2+3 राष्ट्रीय समिति** – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में 10+2+3 शैक्षिक संरचना को भारत सरकार ने स्वीकार किया था। इस संरचना को लागू करने के लिए इस समिति का गठन 1973 में किया गया था जिसने उनके महत्वपूर्ण सिफारशें की।
- **पटेल समिति** – एन.सी.ई.आर.टी के द्वारा (10 वी तक) तैयार किये गये पाठ्यक्रम एवं पुस्तकों के पुनरीक्षण के लिए सन 1977 में ईश्वर भाई जे पटेल की अध्यक्षता में इस समिति का गठन किया गया। इस समिति ने पाठ्यक्रम का पुनरीक्षण कर अपने सुझाव दिये।
- **अदिशेषैया समिति-** +2 स्तर के पाठ्यक्रम की जाँच एवं शिक्षा के व्यवसायीकरण के विशेश संदर्भ में करने के लिए इस समिति का गठन 1977 में किया गया। इस समिति ने समाजोपयोगी उत्पादक कार्य पाठ्यक्रम में जोड़ने की सिफारिश की।
- **ज्ञानम समिति** – सन् 1987 में प्रो. ए. ज्ञानम की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय प्रबन्धन से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों के विस्तृत अध्ययन करने के लिए इस समिति का गठन किया गया। इस समिति ने विश्वविद्यालय संरचना भूमिका उत्तरदायित्वों की समीक्षा कर शैक्षिक संस्थाओं के निष्पादन के आंकलन सम्बन्धी अनेक सुझाव दिये।
- **यशपाल समिति** – सन् 1992 में प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में गठित इस समिति ने स्कूली छात्रों के शैक्षिक बोझ को, अधिगम की गुणवत्ता बनाये रखते हुए कम करने के संबंध में अनेक सुझाव दिये।
- **उच्च शिक्षा का पुनरोद्धार एवं नवजीवन समिति** – सन् 2008 में प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में गठित इस समिति ने उच्च एवं तकनीकी शिक्षा को नया स्वरूप देने के लिए सुझाव दिये। इसने कार्य कर रहे अनेक आयोगों एवं परिषदों के स्थान पर एक ही वियामक संस्था बनाने का महत्वपूर्ण सुझाव दिया।

3.1.6.4 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 – स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त राष्ट्रीय शिक्षा के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम सन् 1968 में भारत सराकर के द्वारा शिक्षा की राष्ट्रीय नीति की घोषणा करना था। कोठारी आयोग के सुझाव के अनुरूप भारत सरकार ने इस नीति की घोषणा की। इस नीति ने शिक्षा

के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन करने तथा सभी स्तरों की शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने पर बल दिया। इस शिक्षा नीति ने 17 आधारभूत सिद्धान्तों को स्थापित किया तथा कहा कि भारत सरकार इन सिद्धान्तों के अनुरूप देश में शिक्षा का विकास करेगी।

- 14 वर्ष तक के बच्चों को संविधान की धारा 45 के अनुरूप नि:शुल्क शिक्षा देना चाहिए।
- अध्यापकों का वेतन भत्ते एवं सेवा शर्ते, उनकी योग्यता एवं उत्तरदायित्वों को देखते हुए पर्याप्त संतोषजनक होने चाहिए। शिक्षको को सेवा रत परीक्षण देना चाहिए।
- त्रिभाषा सूत्र को लागू करने को कहा।
- शिक्षा प्राप्त करने के अवसर सभी को उपलब्ध कराना।
- प्रतिभा खोज करना,छोटी उम्र के बच्चो में कार्य-अनुभव एवं राष्ट्रीय सेवा को शिक्षा का अभिन्न अंग बनना।
- विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- कृषि एवं उद्योगों की शिक्षा पर विशेष बल देना चाहिए।
- पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार करना चाहिए एवं उनका मुल्य कम रखना चाहिए।
- परीक्षा प्रणाली को वैद्य एवं विश्वसनीय बनाना।
- आध्यमिक शिक्षा का तेजी से विकास करना जिससे वह वंचित वर्ग तक पहुँच सके।
- विश्वविद्यालय शिक्षा-विश्वविद्यालय में छात्रों की संख्या विश्वविद्याय में उपलब्ध सुविधाओं के अनुपात में होनी चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर अंशकालीन तथा पत्राचार पाठ्यक्रमों का बड़े पैमाने पर विकास किया जाये।
- खेल कूद की व्यवस्था सभी छात्रों के लिए की जायें।
- अल्पसंख्यकों की शिक्षा को बढ़ाना।
- शैक्षिक ढाँचा 10+2+3 को सम्पूर्ण राष्ट्र में लागू करना।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति मसौदा – 1979

सन 1977 में केन्द्र में सत्तारूढ़ जनता पार्टी की सरकार का विचार था कि राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है तथा इस की कमियों को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है,इस कारण सरकार ने 1979 में नई शिक्षा नीति का मसौदा तैयार किया। इस मसौदे में 23 शीर्षकों के अन्तर्गत शिक्षा की राष्ट्रीय नीति को लिपिबद्ध किया गया था। परन्तु 1980 में जनता सरकार गिर जाने से इस मसौदे को संसद की स्वीकृति नहीं मिल सकी।

3.1.6.5 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 एवं कार्यान्वयन कार्यक्रम-1986

सन् 1986 में राजीव गांधी सरकार द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। यह बारह खण्डों में विभक्त थी और 157 बिन्दुओं के अन्तर्गत इसे लिपिबद्ध किया गया। इस नीति में सम्मलित किये गये संकल्प मुख्यरूप से निम्नलिखित है :

- 10+2+3 प्रणाली को अपनाना
- शैक्षिक अवसरो की एक समान उपलब्धता सुनिश्चित करना
- विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुर्नगठन करना
- तकनीकी एवं प्रबंध शिक्षा में सुधार करना।
- अध्यापकों का उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना।
- छात्र सेवाओं में सुधार।
- पाठ्यक्रमों का नवीनीकरण।
- अध्यापक शिक्षा में सुधार।
- राष्ट्रीय सेवा प्रारंभ करना।
- शैक्षिक निवेश को बढ़ाना।
- नवोदय विद्यालय खोलना।
- उपाधि को नौकरी से अलग करना।
- स्वायत्तता को बढ़ाना।
- कम्प्यूटर के ज्ञान का विस्तार करना।
- शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाना।

कार्यान्वयन कार्यक्रम-1986

राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने के लिए मानव संसाधन मंत्रालय ने एक कार्यान्वयन कार्यक्रम तैयार किया। इस कार्यक्रम में कुल 24 अध्यायों के अन्तर्गत शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में किए जाने वाले क्रियाकलापों को बांटा गया था। ये 24 क्षेत्र है – पूर्व बाल्यकाल परिचर्चा व शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, व आपरेशन ब्लेक बोर्ड, माध्यमिक शिक्षा व नवोदय विद्यालय, शिक्षा का व्यवसायीकरण, उच्च शिक्षा, मुक्त विश्वविद्यालय व दूरशिक्षा, ग्रामीण विश्वविद्यालय एवं संस्थान तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा प्रणाली को कार्यकारी बनाना, उपाधि को रोजगार से अलग व मानव शक्ति नियोजन, अनुसन्धान व विकास, नारी समानता के लिए शिक्षा, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़ा वर्ग की शिक्षा, अल्पसंख्यको की शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्कूल शिक्षा की विषय वस्तु

व प्रक्रिया, मूल्यांकन प्रक्रिया व परीक्षा सुधार, युवा व खेल, भाषा विकास, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, संचार साधन व शैक्षिक तकनीकी अध्यापक एवं उनका प्रशिक्षण तथा शिक्षा का प्रबन्ध।

3.1.6.6 संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 – सन् 982 में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया था कि प्रत्येक 5 वर्ष के उपरान्त इस नीति की समीक्षा की जायेगी। सन् 1992 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा की गई इसके बाद संशोधित नीति प्रस्ताव तैयार करके संसद के दोनों सदनों में रखा गया इसलिए इसे संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 भी कहते है। इसके लिए एक कार्यान्वयम कार्यक्रम बनाया गया, इसके कुल 23 खंड थे। इन सभी खण्डों के अन्तर्गत सम्बन्धित क्षेत्रों में विकास की अनेक कार्य नीतियाँ, शैक्षिक कार्यक्रम एवं योजनाएँ प्रस्तुत की गई।

वर्ष 1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की घोषणा करते हुए इसमें मामूली सुधार किये गये परन्तु अर्जित उपलब्धियों एवं प्राप्त अनुभवों को ध्यान में रखते हुए नये ढंग से पुन: कार्यान्वियन कार्यक्रम 1992 को तैयार किया गया। इसमें सम्मिलित किये विभिन्न विषयों के अन्तर्गत किये जाने वाले क्रियाकलापों के लिए एक स्पष्ट रणनीति को प्रस्तुत किया गया। यह कार्यान्वयन कार्यक्रम राष्ट्रीय संकल्पों के अनुरूप व्यवस्था करने में सहायक सिद्ध होगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

3.1.7. सारांश

भारतीय शिक्षा के इतिहास को मुख्य रूप से पाँच भागों में बाटा गया है ये है वैदिकालीन शिक्षा, बौद्ध कालीन शिक्षा, मध्यकाल या मुस्लिम कालीन शिक्षा, ब्रिटिश कालीन शिक्षा तथा स्वतंत्रता के पश्चात् की शिक्षा, इनकालो में हमने शिक्षा व्यवस्था की विशेषताएं एवं कमियों के विषय में अध्ययन किया विभिन्न कालों की शिक्षा की आधुनिक काल की शिक्षा में क्या उपादेयता है इसको पढ़ा इस प्रकार हमने 600 ई.सा पूर्व से अभी तक का शैक्षिक इतिहास पढ़ा, नारी शिक्षा में धीरे-धीरे सुधार हुआ शिक्षा धीरे-धीरे सभी के लिए उपलब्ध होने लगी प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में देने के लिए कहा गया। सम्पूर्ण भारत में 10+2+3 प्रणाली को अपनाने को कहा।

3.1.8. बोध प्रश्न

1. वैदिक काल की शिक्षा की विशेषताएं लिखिए।
2. बौद्ध काल में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को कौन-कौन से संस्कार कराये जाते थे।
3. मुस्लिम काल की शिक्षा की क्या-क्या कमियाँ थी लिखिए।
4. ब्रिटिश काल में नारी शिक्षा के लिए क्या प्रयास किये गये।
5. स्वतंत्रता के पश्चात् कौन-कौन से आयोग बनाये गये संक्षिप्त में समझाइएं।
6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के मुख्य बिन्दुओं को बताइएं।
7. नवोदय विद्यालय किस शिक्षा नीति की सिफारिश पर चालू किये गये।
8. 10+2+3 प्रणाली क्या है ?

3.1.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

- अग्निहोत्री रविन्ड (2006) आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याएं, जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
- कबीर हुमायुँ (1956) स्वतंत्र भारत में शिक्षा, दिल्ली : राज्यपाल एण्ड संस।
- गुप्ता एस.पी. तथा अलका गुप्ता (2012) भारतीय शिक्षा का तानाबाना, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
- गुप्ता एस.पी तथा अलका गुप्ता (2008) भारतीय शिक्षा का सफरनामा, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
- गुप्ता एस.पी तथा अलका गुप्ता (2019) भारतीय शिक्षा का इतिहा, विकास एवं समस्याएं, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
- चौबे सरयू प्रसाद (1995) भारत में शिक्षा का विकास, इलाहाबाद : सेन्ट्रल बुक डिपो।
- रावन प्यारे लाल (1972) भारतीय शिक्षा का इतिहास, आगरा : राम प्रसाद एण्ड सन्स।
- जोशी सुषमा (2012) भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास एवं समस्याएं इलाहाबाद : सारदा पुस्तक भवन।

इकाई-2 महिला शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

3.2.0. उद्देश्य

3.2.1. प्रस्तावना

3.2.2. नारी शिक्षा/महिला शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.2.3. प्राचीन काल में महिला शिक्षा

3.2.4. बौद्ध काल में महिला शिक्षा

3.2.5. मुस्लिम काल में महिला शिक्षा

3.2.6. ब्रिटिश काल में महिला शिक्षा

3.2.7. स्वतंत्रता के बाद महिला शिक्षा

3.2.8. महिला शिक्षा हेतु गठित विभिन्न समितियाँ आयोग

- **3.2.8.1. विश्वविद्यालय आयोग**
- **3.2.8.2. दुर्गा देशमुख समिति**
- **3.2.8.3. हंसा मेहता समिति**
- **3.2.8.4. भक्त वत्सलम् समिति**
- **3.2.8.5. कोठारी आयोग**
- **3.2.8.6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986**

3.2.9. नारी/महिला शिक्षा की समस्याएँ

- **3.2.9.1. बालिकाओं की शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव**
- **3.2.9.2. शैक्षिक अवसरों में असमानता**
- **3.2.9.3. अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या**
- **3.2.9.4. दोष पूर्ण पाठ्यक्रम**
- **3.2.9.5. दोषपूर्ण प्रशासन**
- **3.2.9.6. अध्यापिकाओं का अभाव**
- **3.2.9.7. आर्थिक समस्या**
- **3.2.9.8. अशिक्षित जन मानस**
- **3.2.9.9. व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की कमी**

3.2.10.महिला/बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु उठाये गये कदम

- **3.2.10.1. स्त्री शिक्षा की आवश्यकता**
- **3.2.10.2. परिवार की दृष्टि से**
- **3.2.10.3. सामाजिक दृष्टि से**
- **3.2.10.4. राजनैतिक दृष्टि**

3.2.10.5. आर्थिक दृष्टि

3.2.11. सारांश

3.2.12. बोध प्रश्न

3.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.2.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित योग्यता प्राप्त कर लेगें।

- नारी/महिला शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित हो जायेगे।
- महिला शिक्षा हेतु गठित विभिन्न समितियों एवं आयोग में महिला शिक्षा हेतु क्या कहाँ गया है उसकी जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- महिला शिक्षा की विभिन्न समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- महिला शिक्षा हेतु शासकीय स्तर पर कौन –कौन से प्रोत्साहन कार्यक्रम चलाये जा रहे है उनकी जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- महिला शिक्षा की आवश्यकता क्यों है, इसको समझ लेगें।
- महिला शिक्षा के महत्व को अच्छी तरह समझ लेगें।

3.2.1. प्रस्तावना

महिला शिक्षा से दो अर्थ निकलते है पहला कि महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा देने से है तो दूसरा अर्थ महिलाओं को उनकी आवश्यकता के अनुसार बनाई गई विशेष शिक्षा से है। भारत में मध्यकाल एवं पुनर्जागरण काल में महिलाओं को पुरुषों से अलग तरह की शिक्षा देने की धारणा विकसित हुई थी। वर्तमान समय में महिला या स्त्री शिक्षा का सर्वमान्य अर्थ है महिला को उतना ही शिक्षित होना चाहिए जितना कि पुरुष हो। कहा भी गया है कि एक पुरुष शिक्षित होने पर एक व्यक्ति शिक्षित होता है परन्तु एक महिला के शिक्षित होने से एक परिवार शिक्षित होता है।

भारत देश में महिलाओं का स्थान हमेशा से सम्मान जनक रहा है, फिर भी भारत में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर बहुत देर से प्राप्त हुआ। इसका मुख्य कारण हमारी रूढ़िवादी सोच रही है। प्राचीन एवं मध्य काल में स्त्रियों को शिक्षित न करने के पीछे मुख्य कारण यह था कि पुरुष वर्ग उन्हें अपने अधीन रखना चाहता था। स्त्री का मुख्य कार्य घर के कार्य एवं पुरुषों की सेवा करना मात्र था। उन्हें निर्णय लेने का अधिकार नहीं था सिर्फ आदेशों का पालन करना उनके भाग्य में लिखा था, परन्तु आज स्थिति बदल गई है आज स्त्रियां सभी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करके समाज के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रही है, वे भाग्य के सहारे घर के अन्दर बैठी अनपढ़ कठपुतली मात्र

नहीं है। वास्तव में आज महिलाओं की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। कई क्षेत्रों में तो वे पुरुषों से भी आगे निकल गई है इस परिवर्तन का मुख्य श्रेय स्त्री शिक्षा के प्रसार को जाता है।

प्रस्तुत इकाई में हम महिला शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानने का प्रयास करेंगे की विभिन्न समय काल में महिला शिक्षा की स्थिति क्या थी। महिला शिक्षा हेतु गठित विभिन्न सीमितियों ने महिला शिक्षा हेतु क्या सुझाव दिये, विभिन्न शिक्षा आयोगो ने स्त्री शिक्षा हेतु क्या-क्या अनुशसायें की स्त्री शिक्षा की उपयोगिता एवं महत्व के विषय में चर्चा करेंगे। महिला शिक्षा में आने वाली विभिन्न समस्याओं पर भी चर्चा करेंगे और सरकार एवं संगठनों द्वारा महिला शिक्षा के लिए चलाई जाने वाली विभिन्न प्रोत्साहन कार्यक्रमों पर प्रकाश डालेंगे।

3.2.2. महिला शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में महिला शिक्षा का इतिहास बहुत पुराना हैं। इसे समझने के लिए हम महिला शिक्षा के इतिहास को पाँच भागों या काल में विभाजित कर सकते है। (1) वैदिक काल (2) बौद्ध काल (3) मध्य प्राचीन काल या मुस्लिम काल (4) ब्रिटिश या अंग्रेजी काल (5) वर्तमान काल या स्वतंत्रता के बाद का काल

3.2.3. प्राचीन काल या वेदिक काल – पूर्व वैदिक काल महिलाओं को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। गुरु कुल में लड़के लड़किया शिक्षा प्राप्त करते थे। उन्हें अपना वर स्वयं चुनने का अधिकार प्राप्त था। पुरुषों के समान वे सभी शास्त्रार्थों में भाग लेती थी। इस काल में गार्गी, मैत्रेयी,आत्रेय,शकुन्तला जैसी विदुषी स्त्रियों की चर्चा इस काल में मिलती है। परन्तु शिक्षित महिलाओं की संख्या ज्यादा नहीं थी इस कारण यह हो सकता है कि इस समय महिला शिक्षा अत्यन्त सीमित थी तथा केवल समाज के उच्च वर्ग की लड़कियों/महिलाओं को ही शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता था। इस समय महिलाओं को अलग से शिक्षा न देकर पुरुषों के साथ सह शिक्षा दी जाती थी। महिलाओं को भी ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा में कुछ शिथिलता आई। इस काल में महिलाओं के अधिकार में क्रमिक परिवर्तन दिखाई दिया। स्मृति काल में स्त्रियों को सभी प्रकार की शिक्षा वेद के ज्ञान से वंचित कर दिया था। उस समय यह सोच विकसित हो गई की स्वतंत्रता से कुलीन स्त्रियाँ भी बिगड़ जाती हैं। उस समय के साहित्य में एक दोहा में कहा गया है कि स्त्री को बचपन में पिता के संरक्षण में यौवनावस्था में पति के संरक्षण में एवं वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए अर्थात् स्त्री कभी भी स्वतंत्र नहीं है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस काल (उत्तर वैदिक) में स्त्री को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया था। परन्तु इस काल में भी शैव्या, उर्मिला, सीता, विद्योत्तमा, चुड़ाला जैसी अनेक नारियों ने अपनी विद्धवता, त्याग व समर्पण से अपने आपको समाज में प्रतिष्ठित किया।

3.2.4. बौद्ध काल में महिला शिक्षा – बौद्ध काल में उत्तर वेदिक काल के कर्मकाण्डों की समाप्ति और बौद्ध धर्म के उदय के साथ-साथ स्त्रियों की दशा पहले से थोड़ा सुधार हुआ। बौद्ध काल के प्रारम्भिक वर्षों में स्त्रियों को मठो में प्रवेश नहीं दिया जाता परन्तु बाद में महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ के रूप में प्रवेश देकर स्त्री शिक्षा के एक नये अध्याय की शुरूआत की। भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में नारी को कहीं भी पुरुष से कम नहीं बताया परन्तु इस समय भी महिला शिक्षा जन सामान्य की महिलाओं तक नही पहुँच सकी बल्कि केवल धनी, सम्पन्न, कुलीन घरानों की स्त्रियों तक ही सीमित रह गई थी। इस काल में संघमित्रा जैसी विदुषी महिला ने स्त्रियों का नाम रोशन किया।

3.2.5. मुस्लिम काल (मध्यकाल) में महिला शिक्षा –मुस्लिम काल में महिलाओं की शिक्षा पर विपरीत प्रभाव पड़ा जिसके दो मुख्य कारण थे पहला पर्दा प्रथा और दूसरा बाल विवाह इन कारणों से स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाती थी पृथक महिला विद्यालय न होने के कारण उनका पढ़ना सम्भव नहीं था एवं बाल विवाह होने के कारण उनका स्कूल छूट जाता था। उन्हें प्राथमिक शिक्षा ही मिल पाती थी। मुस्लिम महिलायें/बालिकायें मकतबों में बालको के साथ शिक्षा प्राप्त करती थी। हिन्दुओं की लड़कियाँ परिवार में ही अक्षर ज्ञान एवं धार्मिक साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर लेती थी। शाही घरानों तथा समाज के धनी वर्गो की बालिकायें अपने घरों में शिक्षा प्राप्त करती थी।शिक्षक उनके घर पढ़ाने जाते थे। उच्च शिक्षा की महिलाओं के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। इसकाल में अनेक हिन्दु एवं मुस्लिम विदुषी महिलायें प्रसिद्ध हुई जिनमें से प्रमुख है, रानी रूपमति, नूरजहाँ, चाँद बीबी, रजिया, दुर्गावती, अहिल्याबाई, माता जीजाबाई इत्यादि। इस सबके बावजूद इस काल में सामान्य वर्ग की स्त्रियों को शिक्षा-प्राप्ति के अवसर सामान्यत: उपलब्ध नहीं थे उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिए बड़ी मेहनत करना पड़ती थी।

3.2.6. ब्रिटिश काल में महिला शिक्षा – ब्रिटिश काल में स्त्री शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किये गये। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल तक स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया क्योंकि वह व्यापार करने आई थी परन्तु इसके बाद स्त्री शिक्षा पर ध्यान दिया गया। कंपनी के शासन के समय स्त्री शिक्षा का प्रसार मिशनरियों तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा किया गया। सर्व प्रथम वुड के घोषणा पत्र में स्त्री शिक्षा की बात कही गई जिसके परिणाम स्वरूप कई प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय बलिका शिक्षा हेतु खोले गये। हन्टर शिक्षा आयोग ने स्त्री शिक्षा पर विशेष ज़ोर दिया। स्त्री शिक्षा के महत्व को बतलाते हुए आयोग ने सिफारिश की कि मानव संसाधनों के पूर्ण विकास के लिए,परिवार के सुधार के लिए, शिशु काल में बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए, स्त्रियों की शिक्षा, पुरुषों की शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में स्त्री शिक्षा के विकास में गति आई। सांस्कृतिक आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप जनता में जागृति उत्पन्न हुई और 1902 तक स्त्री शिक्षा ने एक आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया। धर्म एवं सामाजिक सुधारकों ने भी स्त्री शिक्षा के विकास में रुचि दिखाई। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने स्त्री शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किये। श्री राजाराम मोहन राय ने स्त्रियों की निरक्षरता को

दूर करने का बीड़ा उठाया। महर्षि दयानंद ने आर्य समाज के सभी कार्यक्रमों में स्त्रियों को विशेष स्थान दिया तथा कन्या गुरुकल की स्थापना की स्त्री शिक्षा के लिए श्रीमती एनी बेसेन्ट की भूमिका भी सराहनीय थी। उन्होंने 1904 में सेन्ट्रल हिन्दु गर्ल्स कॉलेज की स्थापना की। 1916 में महर्षि कर्वे और भण्डारकर के प्रयासों से पूना में एन.डी.टी महिला महाविद्यालय की स्थापना की। इसी वर्ष दिल्ली में महिलाओं के लिए लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज की स्थापना की गई। इस प्रकार स्त्री शिक्षा में समाज सुधार आन्दोलनों की मुख्य भूमिका रही। सन 1917 से सन 1947 तक स्त्री शिक्षा का विकास अत्यन्त तीव्र गति से हुआ। इसी समय भारतीय नारी संगठन एवं राष्ट्रीय महिला परिषद की स्थापना हुई। सन 1927 में प्रथम अखिल भारतीय नारी सम्मेलन हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में लगभग 3000 नारी शिक्षा संस्थान थे जिसमें करीब 50 लाख स्त्रियां अध्ययन कर रही थी।

3.2.7. स्वतन्त्रता के बाद में नारी/महिला शिक्षा

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं के सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। भारतीय संविधान में पुरुषों तथा स्त्रियों को समान दर्जा दिया गया है। संविधान में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। आज महिला कोई भी कोर्स कर सकता है और कोई भी नौकरी कर सकती है यहाँ तक की सेवा में भी महिलायें जा रही है ओर युद्ध वाहक विमान चला रही है जल एवं थल सेना में भी महिला जा रही है। स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्री शिक्षा के मार्ग में आने वाली बाधाओं को जानने एवं उनके समाधान हेतु अनेक समितियों तथा आयोगों का गठन किया गया। 1958 में गठित दुर्गाबाई देशमुख समिति तथा 1962 में गठित हंसा मेहता समिति के द्वारा महिला शिक्षा हेतु अनेक सुझाव प्रस्तुत किये गये थे। कोठारी आयोग ने भी महिला शिक्षा हेतु अनेक सुझाव प्रदान किये 1986 की नई शिक्षा नीति में भी स्त्री शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु कई क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जाने का संकल्प दोहराया गया।

3.2.8. महिला शिक्षा हेतु गठित विभिन्न समितियाँ एवं आयोग

स्वतंत्रता के बाद महिला शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं उसमें आ रही बाधाओं को हल करने के लिए विभिन्न समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया इन समितियों एवं आयोगों ने स्त्री शिक्षा के लिए क्या सुझाव दिये उसका अध्ययन हम यहाँ करेंगे।

3.2.8.1. विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग 1948-49 - विश्व विद्यालय शिक्षा आयोग का गठन विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा कैसी होनी चाहिए इसलिए किया था। आयोग ने विश्वविद्यालय से जुड़ी समस्याओं के साथ-साथ स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया और स्पष्ट किया कि शिक्षित स्त्रियों के बिना समाज भी शिक्षित नहीं हो सकता।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित प्रमुख सिफारिशों के रूप में सुझाव इस प्रकार दिये थे –

- स्त्रियों को पुरुषों के समान शैक्षिक अवसर प्रदान किये जाये।

- सह शिक्षा को बढ़े पैमाने पर प्रोत्साहित किया जाये।
- स्त्रियों की आवश्यकता के अनुरूप् उनका पाठ्यक्रम बनाया जाये।
- पाठ्यक्रम में गृहविज्ञान ,अर्थशास्त्र ,गृह प्रबन्धन को प्रमुखता दी जाये।

3.2.8.2 दुर्गाबाई देशमुख समिति (1958-89) - महिला शिक्षा की समस्याओं तथा उनके समाधान करने के उपायों पर विचार करने के लिए श्रीमति दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में सन् 1958 में राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति का गठन किया गया जो दुर्गाबाई देशमुख समिति के नाम से जानी जाती है। इस समिति का मुख्य उद्देश्य स्त्री शिक्षा के प्राथमिक एवं माध्यमिक क्षेत्र में सुधार संबंधी सुझाव प्रस्तुत करना था। इस समिति ने जनवरी 1959 में अपना प्रतिवेदन सरकार के समझ प्रस्तुत किया। समिति ने निम्न सुझाव दिये –

- छात्राओं की शिक्षा की समस्या को विशेष समस्या के रूप में लिया जाये।
- भारत सरकार को एक निश्चित अवधि में स्त्री शिक्षा का विकास करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले।
- ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए विशेष प्रयास किये जाना चाहिए।
- केंद्रीय स्तर पर राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद का गठन किया जाये जो स्त्रियों की समस्याओं पर विचार करके नीतियाँ बनाये।
- पुरुष एवं महिला की शिक्षा में विद्यमान अन्तर को यथाशीघ्र कम किया जाये।
- राज्यों में स्त्री शिक्षा के विकास एवं प्रसार हेतु राज्य महिला शिक्षा परिषद की स्थापना की जाये।
- भारत सरकार को सभी राज्यों के लिए स्त्री शिक्षा के विस्तार की नीति निर्धारित करनी चाहिए तथा उसके लिए आवश्यक धन राशि प्रदान करनी चाहिए।

इस समिति के सुझावों को स्वीकार करते हुए शिक्षा मंत्रालय ने 1965 में राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद का गठन किया। इस परिषद का मुख्य कार्य बालिकाओं की शिक्षा में आ रही समस्याओं को हल करना तथा स्त्री शिक्षा के प्रसार तथा उनमें सुधार हेतु नीतियों कार्यक्रमों व प्राथमिकताओं से सम्बन्धित सुझाव देना है। यह परिषद समय-समय पर स्त्री शिक्षा की प्रगति का मूल्यांकन करके नवीन कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करेगी। इसके अतिरिक्त परिषद समय समय पर सर्वेक्षण, विचार गोष्ठीयों तथा अनुसंधान कार्यक्रमों के आयोजन की व्यवस्था भी करती है।

3.2.8.3 हंसा मेहता समिति –सन 1962 में छात्राओं के लिए छात्रों से पृथक पाठ्यक्रम की सम्भावनाओं पर विचार करने के लिए श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने विचार-विमर्श के उपरान्त सुझाव दिया कि विद्यालय स्तर पर बालक एवं बालिकाओं

के पाठ्यक्रम अन्तर नहीं होना चाहिए। समिति ने कहा कि हम जिस प्रजातांत्रिक एवं समाजवादी समाज के निर्माण का प्रयास कर रहे है, वह व्यक्ति की क्षमताओं रूझानों और रुचियों से सम्बद्ध होगा उसका लिंग के आधार पर विभाजन उचित नहीं है। समिति ने निम्न बातों पर विचार करने को कहा –

- लिंग भेद के आधार पर पाठ्यक्रम न बनाये जाये।
- स्त्री एवं पुरुषों के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कार्यों में भेद होने के आधार पर छात्र-छात्राओं के विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाये।
- प्राथमिक कक्षाओं में सह शिक्षा प्रणाली को लागू किया जाये।
- पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सहगामी क्रियाओं में पर्याप्त संतुलन किया जाये।
- माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर कुछ संस्थाएँ छात्राओं के लिए पृथक से बनाई जावें।
- महिलाओं के लिए व्यवसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाये। जिससे वे भविष्य में आत्म निर्भर बन सके।

इस समिति द्वारा संस्तुत पाठ्यक्रम संबंधी सभी सुझाव व्यवहारिक एवं उपयोगी थे। स्त्री शिक्षा के विकास में इसका बड़ा योगदान रहा है।

3.2.8.4 भक्त वत्सलम् समिति – राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद् द्वारा इस समिति का गठन किया गया। इस समिति के अध्यक्ष मद्रास राज्य के मुख्य मंत्री श्री एम. भक्तवत्सलम थे। समिति का मुख्य उद्देश्य स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अधिक विकास हेतु साधनों की उपलब्धता का पता लगाना तथा जन सहयोग प्राप्त करने के उपयों पर विचार करना था। समिति ने निम्न लिखित क्षेत्रों सिफारिशें की।

- जनता के सहयोग से सम्बन्धित सिफारशें।
- राज्य सरकार तथा स्त्री शिक्षा प्रचार कार्यक्रम।
- स्त्री शिक्षा परिषद के कार्य।
- पूर्व प्राथमिक स्कूलों की व्यवस्था।
- स्कूलों की पर्याप्त सुविधा।
- विद्यालय भवन की उपयुक्ता।
- स्कूलों में कार्य की उत्कृष्टता।
- विद्यालय भवन की उपयुक्तता।
- महिला अध्यापिकाओं को विशेष भत्ता।
- पाठ्यक्रम पर विचार।
- आयु सीमा की छूट।

- आवास के पास सेवा कार्य की सुविधा।
- दो पाली प्रथा।
- साक्षर कक्षायें।
- पाठ्यक्रम में अपेक्षित सुधार।
- छात्रावासीय प्रशिक्षण विद्यालय।
- स्कूल के कार्य समय में समयानुसार एवं मौसम के अनुसार परिवर्तन।
- स्थानीय छात्रावास की सुविधा।

3.2.8.5 कोठारी आयोग – सन् 1964 में डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने भी महिला शिक्षा की समस्साओं पर विचार किया तथा अपने सुझाव प्रस्तुत किये। कोठारी आयोग ने देशमुख समिति,हंसा मेहता समिति तथा भक्त वत्सलम् समिति की सभी सिफारशें मान ली। कोठारी आयोग ने मानव संधान के विकास, परिवारों का उन्नति तथा बालकों के चरित्र-निर्माण में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की शिक्षा को अधिक महत्वपूर्ण बताया तथा स्त्री शिक्षा के लगभग सभी पक्षों पर अपने विचार प्रस्तुत किये। कोठारी आयोग द्वारा दिये गये मुख्य सुझाव निम्नांकित है –

- भारतीय संविधान में संकल्पित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बालिकाओं की अनिवार्य शिक्षा के लिए प्रयास किये जाये।
- पुरुषों एवं स्त्रियों के बीच अन्तर को शीघ्र समाप्त किया जाये।
- बालिकाओं को पढ़ने के लिए बालकों के विद्यालय में भेजने के लिए समाज को प्रेरित किया जाये।
- उच्च माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा अलग विद्यालय खोले जाये।
- बालिकाओं के लिए नि:शुल्क छात्रावासों तथा छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाये।
- बालिकाओं के लिए अल्पकालीन तथा व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये।
- बालिकाओं के लिए पृथक कन्या महाविद्यालय खोले जाये।
- बालिकाओं को उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जाये।
- छात्राओं/बालिकाओं के पाठ्यक्रम रुचिपूर्ण एवं आकृषक बनाये जाये उसमें गृहविज्ञान सामाजिक कार्य शिक्षाशास्त्र के पाठ्यक्रम को विकसित किया जाये।
- स्त्री शिक्षा के संचालन के लिए केन्द्र तथा राज्य स्तर पर प्रशासनिक तन्त्र का गठन किया जाये।

- शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की नियुक्ति को प्रोत्साहित किया जाये।
- अध्यापिकाओं को आवास की यथोचित सुविधा उपलब्ध करयी जाये।
- स्त्री शिक्षा के लिए अनुसंधान इकाईयों की स्थापना की जाये।

3.2.8.6 राष्ट्रीय शिक्षा नीति – सन् 1986 में घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महिलाओं की शिक्षा में व्यापक परिवर्तन लाने की संकल्पना की गई। इसमें स्वीकार किया गया कि महिलाएं देश की आधी उर्जा का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी उन्नति एवं शिक्षा दीक्षा पर परिवार का उत्थान निर्भर है। समाज के उत्थान के सभी कार्यक्रमों के सफल आयोजन में महिलाओं सक्रिय सहयोग अपेक्षित है। जनसंख्या नियंत्रण स्वास्थ्य सुधार एवं सफाई के सभी अभियानों की सफलता हेतु महिलाओं का शिक्षित होना जागरूक होना जरूरी है। नई शिक्षा नीति तथा क्रियान्वयन कार्यक्रम (PDA-1992) में स्त्री शिक्षा सम्बन्धित निम्नलिखित बातें सम्मिलित की गई है –

- बालिकाओं के पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय मूल्यों पर विशेष ध्यान दिया जाये, जिससे प्रारंभ में ही उसमें अच्छे मूल्य विकसित हो।
- अन्य विषयों के पाठ्यक्रम में भी स्त्री अध्ययन को अनिवार्य रूप से रखा जाये।
- स्त्रियों के बहुमुखी विकास हेतु शिक्षा संस्थाओं में क्रियाशील कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाये।
- पुरुष एवं महिला में भेद करने वाली नीति को बढ़ावा न दिया जाये।
- व्यवसायिक एवं वृतिक शिक्षा में महिलाओं को स्थान प्रदान करने के लिए विशेष प्रयास किये गये।

सन् 1990-92 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संशोधित रूप में भी स्त्री शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण सुझाव पारित किये गये जो निम्नानुसार है –

- बालिकाओं के लिए औपचारिक शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम बनाये जाये।
- प्राथमिक विद्यालयों के पास शिशु देखभाल केन्द्र बनाये जाये।
- शिशु शिक्षा केन्द्र की आवश्यकताओं के अनुरूप ही कक्षा 1 से 3 तक का पाठ्यक्रम बनाया जाये।
- 500 से अधिक जनसंख्या पर एक प्राथमिक विद्यालय खोला जाये।
- योग्य छात्राओं को छात्रवृत्ति दी जाये तथा सभी प्रकार की शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध कराई जाये।
- छात्राओं एवं अध्यापिकाओं को आवासीय सुविधा भी उपलबध कराई जाये।
- महिला अध्यापिकाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी की जाये।

3.2.9. महिला शिक्षा की समस्याएँ

इसमें कोई सन्देह नहीं की स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, परन्तु इन सबके बावजूद भी स्त्री शिक्षा की वर्तमान स्थिति सन्तोषप्रद नहीं है। पुरुषों का एक वर्ग, धार्मिक संकीर्णता रुढ़िवादिता, आज भी स्त्रियों को शिक्षित होने नहीं देना चाहती। आज भी स्त्री शिक्षा में बहुत सी बाधायें हैं हमें उन बाधाओं को समझना है एवं उनके निराकरण हेतु समाधान खोजना है ,जिससे स्त्री शिक्षा सहज एवं सुलभ बन सके। स्त्री शिक्षा में आने वाली कुछ ज्वलन्त समस्यायें निम्नानुसार हैं –

3.2.9.1. बालिकाओं की शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव – बालिकाओं/महिलाओं की शिक्षा के विकास में सबसे प्रमुख अवरोधक तत्व है सकारात्मक मनोवृत्ति की कमी आज के वैज्ञानिक युग में कुछ भारतीय अभी भी रुढ़ियो अंधविश्वासों तथा परम्पराओं की मानते आ रहे है। इसी कारण से हमारे देश की जनसंख्या के एक बड़े वर्ग में बालिकाओं की शिक्षा के विषय में पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है। छुआछुत बाल-विवाह पर्दा प्रथा जैसी रूढ़ियों के कारण अनेक बालिकाओं को शिक्षा से वंच्छित रह जाना पड़ता हैं।

अभी भी कुछ लोग मानते है कि स्त्री का कार्य क्षेत्र घर तक ही है। वे मानते है कि स्त्रियां पढ़कर सभी स्वतंत्रता की मांग करती है जो चरित्र हीनता सूचक है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या ज्यादा गंभीर है। ग्रामीण क्षेत्र की महिलायें एक दो वर्ष अध्ययन करके ही पढ़ना छोड़ देती है। इस समस्या के हल हेतु हमें जनमानस के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना पड़ेगा एवं जागरूकता अभियान चला कर हम ऐसे लोगों का दृष्टिकोण बदल सकते हैं।

3.2.9.2. शैक्षिक अवसरों में असमानता – बालिकाओं की शिक्षा के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है कि बालिकाओं को बालको के समान शिक्षा प्राप्त करने के अवसर नहीं मिल पाते। हमारे देश में शिक्षा के सभी स्तरों पर एवं लगभग सभी पक्षों पर बालकों तथा बालिकाओं की शिक्षा में असमानतायें पाई जाती है। बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर बालकों की अपेक्षा कम मिल पाते है।

आज प्रजातान्त्रिक स्वरूप की रक्षा के लिए दोनों बालक एवं बालिकाओं का समान रूप पढ़ना आवश्यक है इसलिए हमें बालिकाओं को शिक्षा प्राप्ति कके अवसर बालकों के समान प्रदान करने के लिए प्रयास करना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस दिशा में विशेष प्रयास करने का संकल्प लिया है।

3.2.9.3. अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या - अपव्यय एवं अवरोघन स्त्री शिक्षा के लिए एक गंभीर समस्या है। अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में स्त्री शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन अधिक पाया जाता है। प्राय: यह देखा गया है कि कक्षा एक में प्रवेश लेने वाली 100 बालिकाओं में से केवल 35 बालिकायें ही पांचवी कक्षा तक पहुँच पाती है। तथा लगभग 20 ही कक्षा आठ तक पहुँचती है। बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में अपव्यय एवं अवरोधन ज्यादा पाया जाता है। इसी प्रकार शहरो की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में अपव्यय एवं अवरोघन ज्यादा पाया जाता है। गरीबी अशिक्षा रूढ़िवादिता, बालिकाओं के प्रति संकुचित एवं नकारात्मक दृष्टिकोण, नीरस पाठ्यक्रम, विद्यालय वातावरण, महिला शिक्षक का न

होना, दोष पूर्ण परीक्षा प्रणाली,परामर्श एवं निर्देशन का अभाव आदि बालिकाओं की शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन के मुख्य कारण है। बालिकाओं शिक्षा के प्रसार के लिए अपव्यय एवं अवरोधन के कारणों को दूर करना पड़ेगा।

3.2.9.4. दोष पूर्ण पाठ्यक्रम – वर्तमान में प्रचलित पाठ्यक्रम नीरस तथा अरुचिकर है। बालकों एवं बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम भी एक मुख्य कारण है। बालिकाओं के पाठ्यक्रम में हस्तशिल्प, संगीत चित्रकला, पाक शास्त्र गृहविज्ञान, गृहपरिचर्चा गृह अर्थशास्त्र मातृत्वकला जैसे विषय होने चाहिए। क्योंकि ये विषय बालिकाओं की रुचि के अनुरूप एवं उनके भविष्य में काम में आनेवाले हैं। कुछ शिक्षाविद् इसका विरोध करते है वे बालक एवं बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम की वकालत करते है।

3.2.9.5. दोषपूर्ण प्रशासन – वर्तमान शासन प्रणाली प्रशासन भी स्त्री शिक्षा के विकास में बाधक है। शिक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रशासनिक कठिनाइयाँ एवं बाधायें आती है। प्रशासन में अधिकतर पुरुष अधिकारी कार्यरत है अत: वे महिलाओं की आवश्यकताओं को समझ नहीं पाते और न ही वे स्त्री शिक्षा में विशेष रुचि लेते है, इसलिए स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान तथा प्रशासन का दायित्व पुरुषों की जगह स्त्रियों को सौंप देना चाहिए। स्त्रियों को यह उत्तरदायित्व देने से वे स्त्रियों की समस्याओं को अच्छे से समझ पायेगी और स्त्री शिक्षा के विकास में वे रुचि भी लेगी तथा इससे उपयुक्त कार्यक्रमों का निर्माण, क्रियान्वयन एवं पर्यवेक्षण अपेक्षाकृत अच्छा होगा। सरकार बालकों की शिक्षा की तुलना में स्त्री शिक्षा के विकास पर कम धन राशि व्यय करती है।

3.2.9.6. अध्यापिकाओं का अभाव – स्त्री शिक्षा के प्रसार में एक बहुत बड़ी बाधा अध्यापिकाओं की कमी का होना है। न केवल उच्च माध्यमिक स्तर पर वरन प्राथमिक स्तर पर भी प्रशिक्षित अध्यापिकाओं की कमी है। इसके मुख्य कारण है – असुरक्षा, आवागमन की असुविधा, आवास की व्यवस्था न होना, परिवार का असहमति इत्यादि। इन्ही कारणों से प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित महिलाएं नौकरी नहीं कर पाती है। कई बार महिला शिक्षक न होने से भी बालिकायें कक्षाओं में नही आती। शहरों में तो महिला शिक्षकायें मिल भी जाती है परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में इनकी संख्या बहुत कम है,इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा की प्रसार भी कम है। अच्छी सुरक्षा, आवास, गृहस्थल के पास स्कूल, मनोरंजन, विशेष भत्ता आदि देकर हम महिला अध्यापिकाओं की संख्या बड़ा सकते है जिससे स्त्री शिक्षा में यथोचित विस्तार होगा।

3.2.9.7. आर्थिक समस्या – स्त्री शिक्षा में घर की आर्थिक स्थिति भी बाधा उत्पन्न करती है। जरूरी वस्तुओं के खरीदने के लिए पैसे न होने पर कोई शिक्षा पर खर्च की कैसे सोच सकता है। इसके लिए सरकार द्वारा सर्व शिक्षा अभियान से शिक्षा प्रदान की जा रही है। परन्तु अभी भी बालिकाओं की शिक्षा के लिए ठोस कदम उठाना जरूरी है। इस कार्य की सफलता में सरकार के साथ-साथ शिक्षकों अभिभावको प्रशासकों सामाजिक कार्यकर्ताओं सभी को मिलकर कार्य करना पड़ेगा। और सरकार को बालिका शिक्षा के लिए अधिक धन राशि स्वीकृत करना पड़ेगी।

3.2.9.8. अशिक्षित जन मानस – आज भी हमारे देख में लगभग 25 % जनता साक्षर नहीं है शिक्षित न होने से उन्हें एक तो शिक्षा का महत्व समझ में नहीं आता दूसरे वे कई अंधविश्वासों के शिकार है, रूढ़ियों से जकड़े हुए है इस कारण से वे अपनी बालिकाओं की शिक्षा पर ध्यान नहीं देते इसके लिए हमें ऐसे अभिभावकों के जागरण का कार्य करना पड़ेगा, उन्हें शिक्षा का महत्व समझाना पड़ेगा खासकर बालिकाओं की शिक्षा का

3.2.9.9. व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की कमी- आज भी हमारे देश में स्त्रियों के लिए व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की कमी बनी हुई है। स्त्रियों के उत्थान के लिए यह आवश्‍यक है कि उन्हें विभिन्न प्रकार की व्यवसायिक तथा तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाये। कुछ वर्षों से इस ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। बालिकाओं को उनकी रुचि के अनुसार विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक एवं तकनीकी पाठ्यक्रम चलाये जाना चाहिए।

3.2.10. महिला/बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु उठाये गये कदम

स्वतंत्रता के बाद स्त्री शिक्षा को विशेष कार्य के रूप में स्वीकार किया है और इस दिशा में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के द्वारा निरन्तर प्रयास किये जा रहे है। 6 से 14 वर्ष की छात्र/छात्राओं को नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए संविधान के 86 वें संशोधन के उपरान्त शिक्षा प्राप्त करने प्रत्येक बालक/बालिका का मूल अधिकार बन गया। सर्व शिक्षा अभियान/सबके लिए शिक्षा जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से सभी को शिक्षित करने का प्रयास जारी है। इससे स्त्री शिक्षा का भी विस्तार हुआ है। स्त्री शिक्षा के लिए सभी राज्यों में दो बिन्दु प्रयास किये जा रहे है पहला बालिकाओं को विद्यालय भेजना और दूसरा विद्यालय में उनका ठहराव।

सरकार द्वारा स्त्री/बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए चलाई जाने वाली प्रमुख योजनाएं निम्नानुसार है-

1. कक्षा 8 कतक की बालिकाओं हेतु नि:शुल्क पाठ्यपुस्तकें देना।
2. विद्यालय में बालिकाओं हेतु अलग शौचालय बनाना।
3. स्कूल छोड़ चुकी बालिकाओं को पुन: स्कूल में लाने के लिए स्कूल की ओर अभियान चलाना।
4. अधिक उम्र की बालिकाओं के लिए ब्रिज पाठ्यक्रम चलाना।
5. विद्यालय में न्यूनतम 50% महिला अध्यपिकों को नियुक्त करना।
6. बालिकाओं को समरूप अधिगम अवसर बढ़ाने के लिए अध्यापकों को संवेदनशील बनाना।
7. शिक्षण अधिगम सामग्री को यौन संवेदनशील बनाना।
8. जन समर्थन व सहयोग प्राप्त करने के लिए संघन अभियान चलाना।
9. बालिकाओं को विद्यालय जाने के लिए साइकल मुफ्त में देना।

विद्यालय में बालिकाओं की उपस्थिति व ठहराव सुनिश्चित करने के लिए नवचारी उपाय करना। सर्व शिक्षा अभियान के साथ-साथ प्राथमिक स्तर पर कन्या शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम (NPEGEL) महिला

सामख्या, पूर्व वाल्यकाल परिचर्चा व शिक्षा तथा एकीकृत बाल विकास सेवा जैसे विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा बालिका शिक्षा के विभिन्न पक्षों को मजबूत कर बालिकाओं को शिक्षित किया जा रहा है।

पूर्ववाल्यकाल परिचर्चा व शिक्षा ECCE बालिकाओं को अपने छोटे भाई बहिनों की देखभाल से मुक्त कर उन्हें स्कूल जाने व वहा रूकने का मार्ग दिखाती है।एकीकृत बाल विकास (ICDS) के द्वारा आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं प्राथमिक स्कूल के अध्यापकों व स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करके पूर्व विद्यालय शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सकता है।

प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा के राष्ट्रीय कार्यक्रम (NPEGEL) के अन्तर्गत अनेक कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालयों की स्थापना की गई है। इन सब का उद्देश्य स्त्री शिक्षा का प्रसार एवं विस्तार करना है। केन्द्र एवं राज्य सरकारों के इन प्रयासो से स्त्री शिक्षा का प्रसार हुआ है ओर जल्दी दी हम शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त यौन असंतुलन को समाप्त कर देगें।

3.2.10.1. स्त्री शिक्षा की आवश्यकता

भारत में स्त्री की स्थिति जहाँ एक ओर पूज्यनीय है वही दूसरी ओर उसे अबला की संज्ञा दी जाती है किसी भी देश की लगभग आधी आधी महिलाओं की होती है और यदि इस आधी आबादी को निरक्षर अशिक्षित छोड़ दिया जाये तो उस देश की प्रगति क्या सम्भव है। एक स्त्री के शिक्षित होने से पूरा परिवार में अच्छे गुणों का विकास होता है, क्योंकि किसी बच्चे का पहला गुरू उसकी माँ होती है ओर यदि वही शिक्षित नहीं है तो वह अपने बच्चों को क्या सिखायेगी। परिवार में घर में बच्चे पिता से ज्यादा माता के पास रहते है तो माँ का असर उनके ऊपर ज्यादा पढ़ता है इसलिए स्त्री का शिक्षत होना पुरुष के शिक्षित होने से ज्यादा आवश्यक है। स्त्री एवं पुरुष परिवार रूपी रथ के दो पहिये है,ऐसा हम मानते है फिर एक पहिया यदि कमजोर है तो परिवार का रथ कैसे चलेगा इसलिए महिलाओं को पुरुषों के समान शिक्षा देने की आवश्यकता है। विश्व के इतिहास में स्त्री शिक्षा के महत्व को सभी ने स्वीकार किया है मानव संसाधनों के समुचि विकास, परिवार का विकास, बच्चों का चरित्र निर्माण जनतंत्र को सफलता देश की बहुमुखी प्रगति के लिए पुरुषों की शिक्षा की अपेक्षा स्त्री शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रसिद्ध सेना नायक नैयोलियन का कहना था कि – मुझे सुशिक्षित माताएं दो मैं एक सुशिक्षित राष्ट्र का निर्माण कर दूँगा। विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा का महत्व निम्नानुसार है –

3.2.11.2 परिवार की दृष्टि से – सम्पूर्ण परिवार की उन्नति के लिए माँ का शिक्षित होना सबसे जरूरी है। शिक्षित माँ बालक के व्यक्तित्व का चहुमुखी विकास करती है। इस सन्दर्भ में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के विचार थे – "शिक्षित स्त्री के बिना शिक्षित पुरुष हो ही नहीं सकता'' शिक्षित स्त्री शिक्षा को दूसरी पीढ़ी तक स्वत: ही पहुँचा देती है। स्त्री शिक्षा पर पं नेहरु के विचार थे - लड़के की शिक्षा के बल एक व्यक्ति की शिक्षा है, किन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है''। हमारे धर्म ग्रन्थों में भी लिखा है कि "जहाँ नारियों का सम्मान होता है वहीं देवताओं का वास होता है'' अर्थात् स्त्री पूरे परिवार की धुरी के समान होती है। महाभारत में भी माता का सबसे अच्छा गुरु माना गया है। नारी के

मुख्य गुण है करणा स्नेह उदरता। इसलिए नारी का शिक्षित होना पूरे परिवार के विकास के लिए उपयोगी है।

3.2.11.3 सामाजिक दृष्टि से – समाज के चहुमुखी विकास स्त्री शिक्षा का बहुत महत्व है। बालक को नागरिकता का पाठ सर्वप्रथम माँ से ही प्राप्त होता है माँ से ही उचित संस्कार ग्रहण कर वह समाज में प्रवेश करता है तथा समाज के विकास में सहयोग देता है। दूसरे शब्दों में नारी समाज की शक्ति होती है यदि नारी शिक्षित होगी तो समाज में सुसंस्कृत बालक जायेंगे जिससे समाज की सुंस्कृत होगा। इसलिए नारी की शिक्षा समाज की दृष्टि से भी महत्व रखती है।

3.2.11.4 राजनैतिक दृष्टि – राष्ट्र के उत्थान में शिक्षित स्त्री की भूमिका सदैव देखी जाती है। जनतंत्र की सफलता में भी स्त्री श्रेय दिया जाता है। स्त्री शिक्षा एक ऐसा अस्त्र है जिसके द्वारा किसी देश की प्रगति देखी जा सकती है। कई क्षेत्रों में स्त्री पुरुषों से भी आगे निकल गई है। महर्षि कर्वे का कहना है कि "राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए तमाम नारियाँ शिक्षित होनी चाहिए" राष्ट्र की प्रत्येक प्रकार की समस्याओं के निदान में उनकी भूमिका तभी सार्थक होगी जब कि वे ज्ञान वान, हो शिक्षित है।

3.2.11.5 आर्थिक दृष्टि से – नारी प्रत्येक परिस्थितियों में परिवार की मदद करती है। स्त्री ने निम्न वर्ग के परिवार में पुरुषों के साथ मिलकर कन्धे से कन्धा मिलाकर धनोपार्जन करके परिवार को आर्थिक सहयोग दिया। मध्यम एवं उच्च वर्ग की महिलायें भी परिवार में नौकरी के माध्यम से आर्थिक सहयोग कर रही है। आज शिक्षित महिला अकेले रह कर अपना खर्च चला रही है किसी पर आश्रित नहीं है इसलिए स्त्री का शिक्षित होना जरूरी है आज के माता पिता अच्छी शादी से पहले उसे अच्छा पढ़ाना ज्यादा हितकारी समझते है।

3.2.11. सारांश

इस इकाई में हमने महिला शिक्षा की आवश्यकता उसका महत्व क्या है यह समझा हमने महिला शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझा ,कि विभिन्न कालो में जैसे वैदिक, बौद्ध मुस्लिम काल, ब्रिटिश काल एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का काल में महिला शिक्षा की स्थिति क्या थी, साथ मे हमने जाना कि महिला शिक्षा हेतु गठित समितियों एवं विभिन्न शिक्षा आयोगों ने महिला शिक्षा के प्रसार एवं विस्तार के लिए क्या-क्या सुझाव दिये। महिला शिक्षा में आनेवाली विभिन्न समस्याओं को भी हमने जानने का प्रयास किया एवं उनके निराकरण को भी जानने का प्रयास किया। केंद्र एवं राज्य सरकारे महिला शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए कौन-कौन से कार्यक्रम चला रही है यह भी हमने जाना।

3.2.12. बोध प्रश्न

1. महिला शिक्षा की आवश्यकता क्या है ?
2. महिला शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालिये।
3. मुस्लिम काल में स्त्री शिक्षा की स्थिति पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
4. महिला शिक्षा में आनेवाली समस्याओं को बताइए किन्ही दो पर चर्चा कीजिए।
5. महिला शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं का वर्णन कीजिए।

3.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्निहोत्री, रविन्द्र (2006) – आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्यायें एवं समाधान, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. अग्रवाल जे.सी (1993), लैडमार्क्स इन दॉ हिस्ट्री मॉडर्न इंडियन एजुकेशन : नई दिल्ली : वाणी बुक्स।
3. अदावल, एस.बी तथा एम. उनियाल (1982) भारतीय शिक्षा की समस्याएँ तथा प्रवृत्तियाँ, लखनऊ : उत्तरप्रदेश ग्रंथ अकादमी।
4. अल्तेकर, ए.बी. (1951) एज्युकेशन इन ऐन्शिमेन्ट इंडिया; बनारस : नंद किशोर एण्ड ब्रदर्स।
5. ओल्ड, एल.के (1977) शिक्षा के नूतन आयाम; जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
6. कबीर हुमायुँ (1956) स्वतंत्र भारत में शिक्षा; दिल्ली : राज्य पाल एण्ड सन्स।
7. गुप्ता, एस.पी. तथा अलका गुप्ता (2015) भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्यायें; इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
8. चौबे, सरयू प्रसाद (1975) भारत में शिक्षा का विकास; इलाहाबाद : सेंट्रल बुक डिपो।
9. जोशी, सुषमा (2012) भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास एवं समस्याएं : इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।

इकाई-3 मुक्त एवं दूर शिक्षण

इकाई संरचना –

3.3.0. उद्देश्य

3.3.1. प्रस्तावना

3.3.2. दूर शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

3.3.3. दूर शिक्षा का विकास

3.3.4. भारत में दूर शिक्षा का विकास

3.3.5. दूर शिक्षा के सैद्धान्तिक आधार

3.3.6. दूर शिक्षा के विभिन्न सिद्धान्त

3.3.7. दूर शिक्षा की शिक्षण विधियाँ

3.3.8. दूर शिक्षा की उपयोगिता एवं संभावनाएं

3.3.9. दूर शिक्षा से संबन्धित अन्य सूक्ष्म एवं वृहद मुद्दे

3.3.10. दूर शिक्षा में शिक्षण माध्यम का उपयोग

3.3.11. सारांश

3.3.12. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.3.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- दूर शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा को विस्तृत रूप से समझ सकेंगे।
- विभिन्न देशों के साथ-साथ भारत में दूर शिक्षा के विकास को समझ सकेंगे।
- दूर शिक्षा के विभिन्न सैद्धान्तिक आधारों एवं विभिन्न सिद्धांतों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- दूर शिक्षा के विभिन्न प्रकार की शिक्षण को समझ सकेंगे।
- भारत में दूर शिक्षा की उपयोगिता एवं संभावनाओं पर चर्चा कर सकेंगे।
- दूर शिक्षा से संबन्धित विभिन्न मुद्दों का जान सकेंगे।

3.3.1. प्रस्तावना

इस इकाई में हम दूर शिक्षा का अर्थ, विभिन्न शिक्षाविदों की दूर शिक्षा पर विचारों को समझने का प्रयास किया गया है। दूर शिक्षा का विकास राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किस प्रकार हुआ और विभिन्न देशों में दूर शिक्षा के लिए स्थापित विश्वविद्यालयों के बारे में सूक्ष्म जानकारी प्रदान की गयी है। दूर शिक्षा के विभिन्न सैद्धान्तिक आधार जैसे सामाजिक दर्शन, शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान, सम्प्रेषण माध्यम एवं विधियाँ इत्यादि के बारे में जानकारी प्रदान की गयी है तथा साथ ही साथ दूर शिक्षा के विभिन्न सिद्धांतो को भी बताया गया है। दूर शिक्षा प्रणाली में शिक्षक को शिक्षण –प्रक्रिया अनुदेशन एवं संपर्क कार्यक्रम की व्यवस्था के बारे में समझाने का प्रयास किया गया है। दूर शिक्षा की उपयोगिता एवं संभावनाएं एवं दूर शिक्षा से संबन्धित मुद्दों की जानकारी प्रदान की गयी है।

3.3.2. दूर शिक्षा का अर्थ

दूर शिक्षा से तात्पर्य शिक्षा के ऐसे गैर-प्रचलित एवं अपरम्परागत उपागम से है जो परंपरागत शिक्षा के मानकों पर प्रश्न चिन्ह लगता हुआ उससे अलग मानकों को प्राथमिकता प्रदान करता है। यह एक नवाचार है। इस उपागम मेन परंपरागत शिक्षा की मौखिक अनुदेशन की विधियों का प्रयोग नहीं किया जाता है।

दूर शिक्षा की अधिगम प्रकृति के प्रति अवधारणाएँ परंपरागत शिक्षा के अंतर्गत प्रतिपादित अवधारणाओं से अलग है। इसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात इसकी अपनी तार्किक भाषा एवं संवाद विधि है जो शिक्षण संस्थाओं से दूर रहने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने मेन आने वाली समस्याओं के समाधान के परिणामस्वरूप विकसित हुई है। शिक्षा की परंपरागत प्रणाली में शिक्षक एवं छात्र के मध्य आमने सामने मौखिक संवाद होता है जबकि दूर शिक्षा में मुद्रित एवं अमुद्रित बहुमाध्यमों का प्रयोग शिक्षक एवं छात्र के बीच संचार माध्यम के रूप में किया जाता है।

दूर शिक्षा कुछ निश्चित ऐतिहासिक, सामाजिक एवं एवं तकनीकी शक्तियों के प्रभाव का परिणाम है तथा शिक्षा की ऐसी प्रणाली है जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण से सुसंबद्ध है। इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों का विकास इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास है। इसके परिणाम स्वरूप सम्प्रेषण की ऐसी नवीन विधियों का उदय हुआ है जो प्रचलित सामान्य मौखिक सम्प्रेषण की विधियों का स्थान लेने में सफल सिद्ध हुई है। अब अनेक देशों विशेष रूप से विकसित देशों में शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रसारण हेतु पृथक एवं पूर्णकालिक टी. वी. चैनलों की व्यवस्था संभव होने लगी है। द्विमार्गी टी. वी. (दूरदर्शन)प्रसारणों से न केवल शैक्षिक कार्यक्रमों का संचार संभव हुआ है अपितु इसके द्वारा शिक्षार्थियों को त्वरित पृष्ठपोषण प्रदान करने में भी सुविधा होती है।

अपने प्रगति की जांच करें –

1 दूर शिक्षा के अर्थ को समझाइये।

दूर शिक्षा की परिभाषा –

दूर शिक्षा को परिभाषित करने के अनेक प्रयास किए गए हैं तथा अब भी निरंतर किए जा रहें हैं किन्तु इसकी किसी सर्वमान्य एवं इसके सभी पक्षों को समाहित करने वाली परिभाषा पर पाहुचना एक कठिन कार्य है। इन विचारकों द्वारा दी गयी परिभाषाओं में अंतर का प्रमुख कारण उनके द्वारा दूरवर्ती शिक्षा के किसी विशेष पहलू पर ही अत्यधिक बल देना है। कुछ प्रमुख विचारकों द्वारा दी गयी परिभाषा इस प्रकार है-

बोर्जी होंबर्ग – (1981) के अनुसार – शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्ययन के विभिन्न प्रकार जो अध्यापक के निरंतर, तत्कालीन निरीक्षण में नहीं है,उन्हें योजना निर्देशन ,शिक्षण की संस्थाओं के बराबर ही लाभ प्राप्त होता है।

होमबर्ग की परिभाषा में रूचिकर बात यह है कि इसमें दूरवर्ती शिक्षा को एक संगठित शैक्षिक कार्यक्रम के रूप में माना गया है।

बैडमैयर के अनुसार (1977) - बैडमैयर ने अपने कार्य में 'मुक्त अध्ययन' 'दूरवर्ती शिक्षा'तथा स्वतंत्र अध्ययन आदि शब्दों का प्रयोग किया है परंतु 'स्वतंत्र अध्ययन'पर अधिक बल दिया है। इनहोने स्वतत्न्त्र अध्ययन को इस प्रकार परिभाषित किया है-

स्वतंत्र अध्ययन,शिक्षण – अधिगम कि विभिन्न अवस्थाओं कि व्यवस्था करता है, जिससे शिक्षक तथा छात्र एक दूसरे से अलग रहकर आवश्यक कार्यों तथा उत्तरदायित्व को निभाते हैं,विभिन्न तरीकों से संचारित करते हैं। इसका उद्देश्य विद्यालय के छात्रों को कक्षा के अनुपयुक्त स्थान व प्रारूप से मुक्त करना है, तथा विद्यालय के बाहर के छात्रों को उनके अपने वातावरण में अध्ययन जारी रखने का अवसर प्रदान करना है तथा सभी छात्रों में स्वतः निर्धारित अधिगम की क्षमता विकास करना है।

'स्वतंत्र अध्ययन' अर्थात स्वाध्याय के प्रकारों के लिए यह सुझाव है। पहला,विद्यालय के छात्रों के लिए जो नियमित रूप से कक्षा में नहीं जाना चाहते हैं या उपस्थिती को आवश्यक नहीं समझते हैं,दूसरा विद्यालय से बाहर के छात्रों के लिए जो स्वयं अध्ययन करते हैं। लेकिन यह दोनों प्रकार अधीनस्थ हैं। शिक्षा के अंतिम सामाजिक उद्देश्य के लिए पक्षपात हीन शिक्षा स्वतंत्र शिक्षा के लिए सामाजिक सुधार है। इस प्रकार एसकी प्रशंशा करना कठिन नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में क्यों 'दूरवर्ती शिक्षा' तथा पत्राचार शिक्षा को स्वतंत्र अध्ययन के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

पीटर्स (1973) के अनुसार – पीटर्स ने (1973) में दूरवर्ती शिखा को ज्ञान कौशल तथा अभिवृत्ति प्रदान करने की एक विधि के रूप में परिभाषित किया है। जो आधारित है-

पीटर्स की परिभाषा रुचिकर है क्योंकि इसमें तकनीकी माध्यम व सभी की शिक्षा के अतिरिक्त विशेष आधारों को महत्व दिया गया हो। यह दूरवर्ती शिक्षा की प्रकृति को औद्योगिक समाज से जोड़ती है। औओद्यगिक समाज की नई तथा उभरती हुई विशिष्ट आवश्यकताओं की प्रणाली के रूप में भी दूर वर्ती शिक्षा को समझना संभव है जिसमें शिक्षा के साथ लगभग सभी क्रियाएँ समय अनुसूची पर आधारित है जोकि कठोर कार्य तथा अधिगम की परिस्थितियों पर निर्भर है।

मुरे (1976) के अनुसार- दूरवर्ती शिक्षा की विशेषताओं के संदर्भ में मुरे बहुत सुनिश्चित है। इसके अनुसार दूरवर्ती शिक्षण को अनुदेशन विधियों के परिवार के रूप में परिभाषित किया जा साकता है जिसमें शिक्षण व्यवहार अधिगम व्यवहारों से अलग होकर किए जाते हैं, छात्र की उपस्थिती में वह संलग्न परिस्थितियों भी क्रियान्वित की जाती हैं, जिससे शिक्षक तथा छात्र के मध्य मुद्रित,इलेक्ट्रानिक, यंत्र संबन्धित तथा अन्य साधनों के द्वारा संचार को सुगम बनाया जा सकता है।

दूरवर्ती शिक्षा की इस परिभाषा में तीन रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं-

1 शिक्षण व्यवहार, अधिगम व्यवहारों से अलग रहता है। (उदाहरण के लिए पत्राचार पाठ्यक्रम)

2 आमने- सामने के शिक्षण तथा अधिगम ,प्रणाली का एक भाग बनाते हैं (उदाहरण के लिए संपर्क कार्यक्रम)

3 इलेक्ट्रानिक व अन्य माध्यम प्रभावशाली शिक्षण व अधिगम के लिए उपयोगी किए जा सकते हैं (उदाहरण के लिए दृश्य तथा श्रव्य कैसिट का प्रयोग)

डोहमैन (1977) के अनुसार – डोहमैन जर्मन दूरवर्ती शिक्षा संस्थान के निर्देशक थे,1977 में डोहमैन ने दूरवर्ती शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया – यह स्वतः अध्ययन का एक क्रमिक संगठित रूप है,जिसमें छत्र परामर्श, अधिगम सामाग्री का प्रस्तुतिकरण तथा छात्रों की प्रगति का निरीक्षण ,अध्यापकों के समूह द्वारा किया जाता है, जिसमें प्रत्येक उत्तरदायी होता है। माध्यम के उपयोग से इसमें दूर से ही विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा को संभव बनाया है।

इस परिभाषा में स्वतः अध्ययन को महत्व दिया गया है। दूरवर्ती शिक्षा के इस रूप को बैडमेयर की परिभाषा में भी महत्व दिया गया है। बैडमेयर तथा मुरे के समान,डोहमैन ने माध्यम को सही उपयोग को महत्व दिया है। शिक्षा के इच्छुक व्यक्तियों तक दूरवर्ती शिक्षा के द्वारा शिक्षा पहुंचायी जा सकती है। इन तीनों विचारकों ने दूरवर्ती शिक्षा के डो प्रत्ययों को कुछ सुनिश्चित व कुछ अनिश्चित रूप बताया है। जो यहाँ निम्नलिखित हैं-

1 स्वाध्याय तथा

2 शैक्षिक संचार के लिए माध्यम का उपयोग

इस प्रकार जो बिन्दु सामने आए हैं वह इसके विरुद्ध हैं कि पारंपरिक कक्षा शिक्षण में जिस मौखिक संचार का उपयोग किया जाता है ,वह स्वतः अध्ययन की प्रक्रिया नहीं है, दूरवर्ती शिक्षा स्वतः अध्ययन के लिए मुद्रित,इलेक्ट्रानिक तथा मौखिक आमने –सामने की स्थितियों का उपयोग करती है ,जो दूरवर्ती शिक्षा का आधार है।

अपने प्रगति की जांच करें-

दूर शिक्षा को आप अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिये।

3.3.3. दूर शिक्षा का विकास

यद्यपि दूरस्थ शिक्षा बीसवीं शताब्दी की देन है परंतु इसके विचार के उद्भव स्रोत को इससे पूर्व की शताब्दियों में भी देखा जा सकता है। पत्र-व्यवहार द्वारा दूरस्थ शिक्षा की शिक्षण अधिगम विधि का आदि स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है। पत्राचार के द्वारा शिक्षण का प्रारम्भ होने के समय को लेकर विभिन्न विद्वानों में मतभेद है लेकिन इसको सभी ने स्वीकारा कि 1856 में बर्लिन में पत्राचार द्वारा भाषा सीखने के लिए एक स्कूल खोला गया। इसके बाद विश्व के अनेकों देशों जैसे- अमेरिका, जर्मनी, इग्लैंड, स्वीडन आदि में पत्राचार के द्वारा शिक्षा का विकास प्रारम्भ हो गया। अनेकों शिक्षण संस्थाओं ने मुद्रित पत्राचार सामाग्री का प्रयोग करना शुरू कर दिया। इसके बादजूद भी दूरस्थ शिक्षा के विकास की गति धीमी ही रही।

1969 में ग्रेट ब्रिटेन में सर्वप्रथम मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। जिसमें अनेकों शैक्षिक कार्यक्रम सन 1971 में प्रारम्भ किए गये। इस मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना को दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में मील का पत्थर माना जाता है। यह केवल इसलिए ही नहीं कि इसका संगठनात्मक रूप तथा शैक्षिक निदर्श बहुत अच्छा व अनुकरणीय है या इसकी शिक्षण विधि अपनाने योग्य है। बल्कि इसलिए क्योंकि इससे पूर्व दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को गौण स्थान प्राप्त था तथा दूरस्थ शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को संस्थागत व्यक्तियों की तुलना में हीन समझा जाता था परंतु इग्लैंड के इस मुक्त विश्वविद्यालय ने दूरस्थ शिक्षा को एक नयी सोच प्रदान की और एक मान्य शिक्षण विधि की स्वीकृति दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस विश्वविद्यालय ने सिद्ध कर दिया कि दूरस्थ शिक्षा संभव है। यह कम व्यय पर परम्परागत शिक्षा के समान प्रभावशाली हो सकती है। 1971 से मलेशिया में पत्राचार शिक्षा के रूप में इसे प्रारम्भ किया 1990 के पश्चात दूरस्थ शिक्षा अत्यंत लोकप्रिय हुई। श्रीलंका में राष्ट्रीय स्तर पर एकल माध्यम के दूरस्थ शिक्षा की स्थापना 1978 में हुई।

चीन सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है। यहाँ भी पत्राचार शिक्षा 1960 में प्रारम्भ की गयी वास्तव में पत्राचार शिक्षा की चीन में एक लम्बी परम्परा रही है। 1979 में बीजिंग में सेंट्रल रेडियों एण्ड टेलीविजन यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई। यह विश्वविद्यालय सम्पूर्ण चीन के कर्मचारियों को शैक्षिक अवसर प्रदान करता है।

जिम्बाम्बे में स्वतंत्रता के बाद स्कूल छोडने वालों की संख्या में वृद्धि हुई इनको सरकारी विद्यालयों में समाहित करना मुश्किल था। 1930 में जिम्बाम्बे में "सभी के लिए शिक्षा" पर एक विश्व स्तरीय गोष्ठी आयोजित की और इसी समय यूनस्को द्वारा तंजानिया में दूरस्थ शिक्षा पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसके बाद दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से शिक्षा सभी को प्रदान की जाने लगी और शैक्षिक स्तर में सुधार शुरू हुआ।

अमेरिका में दूरस्थ शिक्षा को होम स्टडी या एक्सटरनल स्टडी [External Study] के नाम से जाना जाता था। प्रारम्भ में दूरस्थ शिक्षा शिकागो विश्वविद्यालय, कैलिफोर्निया, फ्लोरिडा विश्वविद्यालय में प्रारम्भ की गयी और धीरे-धीरे लगभग सभी विश्वविद्यालयों में प्रारम्भ की जाने लगी।

रूस में दूरस्थ शिक्षा ने निम्न वर्ग के लोगों को एक नया आयाम दिया। यहाँ पत्राचार शिक्षा अत्यधिक लोकप्रिय है। एशिया में श्रीलंका के अतिरिक्त बांग्लादेश, थाईलैंड, भारत आदि में मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित दूरस्थ शिक्षा संस्थानों में रेडियों, टेलीविजन का उपयोग बहुत अधिक मात्र में किया जाता है। दूरस्थ शिक्षा संस्थानों को यूनिवर्सिटी आफ एअर भी कहा जाता है। दूरस्थ शिक्षा की स्थापना मुख्य रुप से सेवारत व्यक्तियों के लिए की गयी। कुछ विभिन्न देशों के शिक्षण संस्थान निम्न हैं -

फर्न यूनिवर्सिटी – जर्मनी

नेशनल ओपेन यूनिवर्सिटी – ताइवान

ओपेन यूनिवर्सिटी हटलिन – नीदरलैंड

श्रीलंका ओपेन यूनिवर्सिटी- श्रीलंका

यूनिवर्सिटी आफ एयर – जापान

यूनिवर्सिटी आफ साउथ अफ्रीका- प्रिटोरिया इत्यादि।

अपने प्रगति की जांच करें-

विभिन्न देशो में दूर शिक्षा के विकास को स्पष्ट कीजिए।

3.3.4. भारत में दूरस्थ शिक्षा का विकास

भारत में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का आविर्भाव 1962 में पत्राचार शिक्षा कार्यक्रम के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रारम्भ हुआ। जिसके अंतर्गत रेडियो का शैक्षिक उपयोग शुरू हो गया था। माध्यमिक स्तर पर 1965 में पत्राचार शिक्षा के रूप में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का जन्म हुआ। दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा प्रारम्भ किए गए पत्राचार कार्यक्रम की सफलता ने देश के शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। 1964 में बनाए गये कोठारी आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट में इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला। दिल्ली विश्वविद्यालय में चलाये जा रहे पाठ्यक्रम की सफलता को देखते हुए भारत में प्रथम मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना 1982 में आंध्रप्रदेश में की गयी। इससे पहले 1970 से 1980 के बीच अनेकों विश्वविद्यालयों में पत्राचार शिक्षा के लिए अलग से संस्थान व निदेशालय प्रारम्भ किये गये जिससे दूरस्थ शिक्षा की लोकप्रियता का विकास हुआ। इन संस्थानों की सफलता के बाद विभिन्न राज्यों में मुक्त विश्वविद्यालयों के स्थापना की मांग बढ़ने लगी और विद्वानों ने यह अनुभव किया कि दूरस्थ शिक्षा का विकास करने से हमारे देश में कुशल कर्मियों की संख्या में वृद्धि होगी। इन सभी प्रकार की विचारों के उत्पन्न होने के कारण 1985 में भारत सरकार ने इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किया। इस विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का विकास करने हेतु प्रतिमान स्थापित करना एवं अधिक से अधिक व्यक्तियों को सस्ती उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए सुविधा जनक अवसर उपलब्ध कराना क्योंकि उस समय अनेकों लोग विभिन्न कारणों से उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते थे। अतः ऐसे सभी व्यक्तियों को उच्च शिक्षा दिलाने के लिए इस विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इस विश्वविद्यालय को दिये गये कार्यों तथा अधिकारों में मुक्त

विश्वविद्यालयों की स्थापना व विकास करने में मार्गदर्शन करने, दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का उन्नयन समन्वय करने, अन्य मुक्त विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा संस्थाओं को सहायता प्रदान करने जैसे अत्यधिक महत्व के उत्तरदायित्व भी सम्मिलित हैं।

इस समय 150 से अधिक परम्परागत विश्वविद्यालयों में पत्राचार (दूरस्थ) द्वारा शिक्षा प्रदान कर रहें हैं एवं लगभग पंद्रह मुक्त विश्वविद्यालय भारत में शिक्षार्थियों को अधिगम तथा मुक्त शिक्षा प्रदान कर रहें हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय (NOS)जिसे अब राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी संस्थान (NIOS) कहते हैं, के द्वारा माध्यमिक स्तर पर मुक्त शिक्षा प्रदान की जा रही है। राष्ट्रीय स्तर पर उत्तरप्रदेश जैसे राज्यों में राज्य स्तरीय मुक्त विद्यालय संस्थान (SIOS) स्थापित करके इनके माध्यम से दूरस्थ प्रणाली के द्वारा माध्यमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने की योजना है। भारत का प्रथम मुक्त विश्वविद्यालय आन्ध्रप्रदेश में 1982 में स्थापित हुआ। सन् 1985 में इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय दिल्ली में स्थापित हुआ। इसके पश्चात राजस्थान में कोटा मुक्त विश्वविद्यालय (1987), बिहार में नालंदा मुक्त विश्वविद्यालय (1987), यशवंतराव चव्हाण मुक्त विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र(1989), भोज मुक्त विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश (1991), गुजरात में डा॰ अम्बेडकर मुक्तविश्वविद्यालय (1994) इत्यादि अनेकों मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किए गये। वर्तमान में अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, तकनीकि शिक्षा, प्रबंधन शिक्षा इत्यादि क्षेत्रों में भी रेडियों, दूरदर्शन, इन्टरनेट तथा ई-मेल आदि प्रविधियों का उपयोग सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालयों का उद्देश्य शिक्षा प्रदान करने के साथ ही साथ दूरस्थ शिक्षा संस्थानों को सहायता पहुंचाना भी है। भारत में दूरस्थ शिक्षा के विकास के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर एक संवैधानिक संस्था के रूप में दूरस्थ शिक्षा परिषद (DEC) का गठन 1992 में किया गया। इस परिषद में इग्नू, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, यू.जी.सी., राज्य के परम्परागत एवं मुक्तविश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि, पत्राचार एवं दूरस्थ शिक्षा संस्थानों के प्रतिनिधि आदि सदस्य होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ शिक्षा शास्त्री भी परिषद के सदस्य होते हैं।

इस परिषद का प्रमुख कार्य राज्य मुक्तविश्वविद्यालयों के लिए दिशा निर्देश तैयार करना है। दूरस्थ शिक्षा हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम को तैयार करना एवं प्रशिक्षण प्रदान करना भी इसका उद्देश्य है और राष्ट्रीय एवं राजकीय मुक्तविश्वविद्यालयों एवं दूरस्थ शिक्षा संस्थानों की उन्नति हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करना भी परिषद का मुख्य उद्देश्य है। इस समय DEC का नाम बदल कर DEB कर दिया गया है।

दूरस्थ शिक्षा ब्यूरो के लक्ष्य - दूरस्थ शिक्षा ब्यूरो के लक्ष्य निम्नलिखित हैं -

1 देश के सभी राज्य एवं केंद्रीय विश्वविद्यालयों को मुक्तविश्वविद्यालय एवं दूरस्थ शिक्षा संस्थान खोलने के लिए प्रेरित करना।

2 देश के सभी मुक्तविश्वविद्यालयों एवं दूरस्थ शिक्षा संस्थानों को वित्तीय सहायता प्रदान करना।

3 दूरस्थ शिक्षा से संबन्धित सभी प्रकार के मानकों, विधियों एवं निर्देशों को निर्धारित करना।

4 शिक्षण संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में गुणात्मक वृद्धि के लिए मानक निर्धारित कर उसका क्रियान्वयन करना।

5 शिक्षण संस्थानों में तकनीकि विधियों का शिक्षा में प्रयोग हेतु प्रश्रय प्रदान करना।

6 स्व अधिगम सामाग्री एवं बहु माध्यम शिक्षण सामाग्री का निर्माण व विकास करने के लिए दिशा प्रदान करना।

7 मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा में नवाचार व अनुसंधान को प्रेरित करना इत्यादि।

अपने प्रगति की जांच करें-

भारत में दूर शिक्षा के विकास को सपष्ट कीजिये।

3.3.5. दूर शिक्षा के प्रमुख सैद्धांतिक आधार –

इसमें हम दूर शिक्षा को सैद्धांतिक आधार प्रदान करने वाले प्रमुख तत्वों को हम निमनांकित ढंग से वर्गीकृत कर सकते हैं –

(क)	सामाजिक दर्शन
(ख)	शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान
(ग)	अनुदेशन के सिद्धांत
(घ)	सम्प्रेषण माध्यम की विधियाँ
(ङ)	संरचनात्मक व्यवस्था या प्रणाली

सामाजिक दर्शन –

शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता है। अतः शिक्षा का लक्ष्य समाज में हो रहे परिवर्तनॉन एवं आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए। चुकि औपचारिक शिक्षा अनेक औपचारिकताओं,प्रतिबंधों एवं समझौतों से अधिक जकड़ी हुई है जिसके कारण वह आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सफल नहीं हो प रही है। अतः आज के मुक्त समाज में शिक्षा में भी अधिक स्वायत्ता की आवश्यकता है। सामाजिक,आर्थिक एवं राजनाइटिक आवश्यकताओं के प्रति शिक्षा का दायित्व मुख्य रूप से समाज के स्वरूप तथा उसे स्वीकार्य विकास के प्रकार पर निर्भर करता है। अतः सामाजिक दर्शन शैक्षिक व्यवस्था अथवा प्रणाली के विकास एवं उसमें परिवर्तन को आधार प्रदान करता है।

शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान –

दूर शिक्षा के अंतर्गत शिक्षण-अधिगम के चारों एवं उनके सम्बन्धों की नए ढंग से व्यवस्था करने एवं नवीन अर्थापन करने का प्रयास किया गया है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के बारे में दूर शिक्षा की अवधारणायेँ इस प्रकार हैं-

1 अधिगम मूल रूप में व्यक्तिगत प्रक्रिया है। अध्ययन की सहायक सुविधाएं व्यक्तिगत अधिगम प्रक्रिया का अंग होती है।

2 अधिगम का आनंद ही छात्रों को अध्ययन हेतु अभिप्रेरित करता है।

3 छात्रों की अभिप्रेरणा ही उनके अध्ययन में सहायक होती है।

4 छात्रों का अध्ययन में अधिक सक्रिय होना उनकी अभिप्रेरणा को दर्शाता है।

5 शिक्षण (प्रस्तुतीकरण) की प्रभावशीलता का मानदंड छात्रों का अधिगम होता है। इत्यादि।

शिक्षण अधिगम की उपर्युक्त अवधारणाएँ दूर शिक्षा को सैद्धांतिक आधार प्रदान करती है।

अनुदेशन का सिद्धांत –

अनुदेशन अथवा शिक्षण का अभी तक कोई अंतिम सिद्धांत विकसित नहीं हुआ है किन्तु अनेक शिक्षाविद ने शिक्षण के प्रतिमान विकसित किए हैं। इन्हीं प्रतिमानों को प्रायः शिक्षण के सिद्धांत भी कहा जाता है। इन सिद्धांतों के दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आधार है। किन्तु शिक्षण का स्वरूप दार्शनिक सिद्धांतों पर अधिक आधारित है। शिक्षण सिद्धांतों के प्रतिपादन में –

- शिक्षण तथा अधिगम प्रक्रिया में व्यावहारिक संबंध स्थापित किए जाते हैं।
- पूर्वानुमान के रूप में परिकल्पनाओं का निर्माण किया जता है तथा
- ऐसे प्रदत्तों एवं साक्ष्यों को एकत्रित किया जाता है जिनके आधार पर परिकल्पनाओं की पुष्टि होती है अथवा उन्हें निरस्त कर दिया जाता है।

उपर्युक्त तत्वों का विशिष्टीकरण ही अनुदेशन सिद्धांतों के प्रतिपादन में सहायक होता हसी तथा ये अनुदेशन – सिद्धांत दूर शिक्षा को भी सैद्धांतिक आधार प्रदान करते हैं।

शिक्षण विधियाँ एवं सम्प्रेषण माध्यम –

शिक्षण विधियों एवं सम्प्रेषण माध्यम की सहायता से छात्रों से संपर्क स्थापित किया जाता है जिससे भावात्मक सम्बन्धों का विकास संभव होता है। इसके साथ ही सहायक प्रणाली के द्वारा छात्रों को अभिप्रेरणा एवं पुनर्बलन प्रदान किया जा सकता है। दूर शिक्षा के अंतर्गत पाठ्य वस्तु के प्रस्तुतीकरण हेतु विभिन्न माध्यमों का प्रयोग किया जा सकता है। इन माध्यमों से सर्वाधिक महत्वपूर्ण "मुद्रित माध्यम" है। शिक्षक मनोवैज्ञानिक एवं तार्किक ढंग से पाठ्य वस्तु की व्यवस्था कर सकता है। इस पाठ्य वस्तु को मुद्रित रूप में छात्रों को उपलब्ध कराकर उन्हें अपने ढंग एवं गति से सीखने का अवसर प्रदान किया जा सकता है। यह एक मार्गीय सम्प्रेषण माध्यम होता है। इसी प्रकार के दूसरे श्रव्य-दृश्य माध्यमों से छात्र पाठ्य-वस्तु को सुन सकता है तथा देख सकता है।

संरचनात्मक व्यवस्था-

दूर शिक्षा प्रणाली के सफल संचालन हेतु एक सुव्यवस्थित शैक्षणिक एवं प्रशासनिक ढांचे की विशेष आवश्यकता होती है। इस ढांचे को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिए जिससे यह अध्ययन सामाग्री को ठीक ढंग से तैयार कर सके, उनका सही मुद्रण एवं वितरण सुनिश्चित हो सके अन्तः क्रिया हेतु उपयुक्त संप्रेषण माध्यमों की व्यवस्था की जा सके तथा छात्रों को सुनिश्चित निर्देशन एवं परामर्श की सुविधा प्रदान की जा सके। इसके साथ ही परीक्षाओं की व्यवस्था तथा अन्य सामाजिक एवं शैक्षइक कार्यक्रमों का आयोजन भी इसके द्वारा सुनिश्चित किया जाना चाहिए। दूर शिक्षा संचालित करने वाली

संस्थाएं एवं विश्वविद्यालय इन सभी के बारे में विचार नीति निर्धारित करते हैं। इसके लिए सहायक व्यवस्था प्रणाली भी प्रयुक्त की जाती है।

दूर शिक्षा के इन उपर्युक्त सैद्धांतिक आधारों को ध्यान में रखते हुए अनेक शिक्षा विदो ने दूर शिक्षा के सिद्धांत का प्रतिपादन भी किया है।

अपने प्रगति की जांच करें –

दूर शिक्षा के सैद्धान्तिक आधार को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिये।

3.3.6. दूर शिक्षा के विभिन्न सिद्धांत-

'सिद्धांत' शब्द को कई अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। किसी तथ्य तथा वस्तु के संबंध में व्यवस्थित विचारों का सिद्धांत कहते हैं,परंतु यह अर्थ अधिक भ्रामक है। अनुभवों से सिद्धांत का प्रतिपादित करते हैं। आज सिद्धांत शब्द अधिक वैज्ञानिक तथा सुनिश्चित अरथा में प्रयुक्त किया जाता है।

किसी भी सिद्धांत का आधार परिकल्पना होती है। इसमें चारों के सम्बन्धों का अर्थापन किया जाता है और चारों के पूर्वानुमानित सम्बन्धों को भी प्रगत करता है। चारों के व्यावहारिक सम्बन्धों की व्याख्या सिद्धांत करता है। इस प्रकार सिद्धांत का वैज्ञानिक एवं सुनिश्चित अर्थ यह है कि यह चरों के व्यावहारिक सम्बन्धों की व्याख्या करता है। दूर शिक्षा के विभिन्न सिद्धांत का आशय भी इसकी प्रकृति का विवेचन करना ही है। प्रमुख शिक्षाविदों एवं विचारकों द्वारा दूर शिक्षा के निम्नांकित छह सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है –

1 स्वतंत्र अध्ययन का सिद्धांत – चार्ल्स वेडेमियर

2 स्वतंत्र अध्ययन का पुनरावलोकित सिद्धांत – माइकेल मूरे

3 शिक्षण – अधिगम के औद्योगीकृत रूप का सिद्धांत – आटो पीटर्स

4 निर्देशित शैक्षणिक वार्तालाप का सिद्धांत – बोर्जी होमबर्ग

5 द्विमार्गी डाक सम्प्रेषण का सिद्धांत – जॉन बाथ

6 शिक्षण – अधिगम के औद्योगिक रूप में मानवीय तत्व का सिद्धांत – डेविड स्वार्ट

इन सिद्धांतों में दूर शिक्षा प्रणाली के विभिन्न पक्षों को महत्व दिया गया है। दूर शिक्षा के प्रकृति एवं व्यावहारिकता को ठीक ढंग से समझने के लिए हम इन सिद्धांतों का सूक्ष्म परिचय अलग – अलग कर रहें हैं –

चार्ल्स वेडेमियर का स्वतंत्र अध्ययन का सिद्धांत- चार्ल्स वेडेमियर संयुक्त राज्य अमेरिका के विसकनसीन विश्वविद्यालय में शिक्षा के प्रोफेसर थे तथा 1960 ई. से 1970 ई. के बाद वहाँ की दूर शिक्षा से जुड़े रहे। उनका दृष्टिकोण उदरवादी है जिसकी झलक उनके दूर शिक्षा के क्षेत्र में किए गए कार्यों में भी देखने को मिलती है। दूर शिक्षा के सिद्धांतिक आधारों के प्रतिपादन के प्रति उनका प्रमुख योगदान दूर शिक्षा एवं परंपरागत आमने- सामने की शिक्षा के बीच अंतर का विश्लेषण करना है। वेडेनियर में इन दोनों

प्रणालियों के बीच अंतर का विश्लेषण करते हुए तीन प्रमुख विचार बिन्दुओं को प्रस्तुत किया है जो अब दूर शिक्षा के संप्रत्यय के आधार बन गए हैं –

I. शिक्षार्थी की स्वतन्त्रता
II. शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच की दूरी तथा
III. संरचनात्मक प्रणाली अर्थात व्यवस्था का स्वरूप।

2 स्वतंत्र अध्ययन का पुनरावलोकित सिद्धांत – माइकेल मूरे – मूरे के अनुसार 'स्वतंत्र अध्ययन' एक ऐसा सामान्य पद अथवा प्रत्यय है जो उन सभी शैक्षिक व्यवहारों का वर्णन करता है जो 'दूरी' एवं 'स्वतंत्रता' के चरों के आधार पर इसे परंपरागत औपचारिक शिक्षा से अलग करते हैं। परंपरागत औपचारिक प्रणाली के अंतर्गत मूरे 'विद्यालय वातावरण' को महत्वपूर्ण मानते हैं क्योकि कक्षा-कक्ष में दिया जाने वाला व्याख्या तथा विद्यालय की अन्य व्यवस्थाएँ, दोनों ही शिक्षण – अधिगम को प्रभावित करती है। कक्षगत शिक्षण के अतिरिक्त अन्य सभी शैक्षिक व्यवहार या क्रियाएँ जिनमें 'दूरी' एवं 'स्वतन्त्रता' दोनों का समाविष्ट किया जाता है 'स्वतंत्र अध्ययन' के ही रूप होते हैं। ये विभिन्न रूप मुक्त विश्वविद्यालय कार्यक्रम, पत्राचार पाठ्यक्रम, बाह्य डिग्री कार्यक्रम या स्वयं – शिक्षण कार्यक्रम कहलाते हैं। इन सभी कार्यक्रमों को दो चरों – दूरी एवं स्वतंत्रता को 'स्वतंत्र अध्ययन प्रणाली' की दो विशिष्टताओं के आधार पर एक सतत के रूप में अभिव्यक्ति / प्रदर्शित किया जा सकता है। ये दो विशिष्टताएँ निम्नलिखित हैं-

1 संवाद

2 वैयक्तिकरण या संरचना विहीनता

इन दो विशिष्टताओं की गहनता की मात्रा ही दूर शिक्षा (शिक्षक , शिक्षार्थी एवं शिक्षण- अधिगम) को परंपरागत औपचारिक शिक्षा से अलग करती है।

3 शिक्षण- अधिगम के औद्योगिकृत रूप का सिद्धांत – ऑटो पीटर्स - पीटर्स के विचार 1960 ई. के दशक के मध्य दूरवर्ती शिक्षा के व्यापक सर्वेक्षण से विकसित हुए हैं। 1973 ई. में अपनी एक महत्वपूर्ण पुस्तक "The Didactical Structure of Distance Teaching : Investigations towards an industrialized form of teaching and learning" के माध्यम से पीटर्स ने दूर शिक्षा के सिधान्त के प्रतिपादन मेन व्यापक योगदान दिया। इसमें इस कार्य में औपचारिक शिक्षा के सिद्धांतिक पक्ष को भी ध्यान में रखा था। जिससे उसके इस विचार को कि "दूर शिक्षा, शिक्षा का एक औद्योगिकृत रूप है" बहुत बल मिला। उदाहरण स्वरूप जर्मन शिक्षाविदों द्वारा परंपरागत शिक्षा के लिए विकसित वर्गों (विभिन्न पक्षों या आयामों) जैसे- 'आशय या उद्देश्य', 'विषय – वस्तु' , विधियाँ ,माध्यम का चयन , 'व्यक्तिगत विशेषताएँ' तथा 'सामाजिक- सांस्कृतिक परिस्थितियों को दूर शिक्षा कि प्रक्रिया पर जब लागू करने का प्रयास किया गया तब पता चला कि दूर शिक्षा की प्रकृति एवं स्वरूप परंपरागत शिक्षा से बिलकुल अलग है। इस भिन्नता को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है –

I. दूर शिक्षक का शैक्षणिक उद्देश्य भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों की अपेक्षा ज्ञानात्मक पक्ष से अधिक जुड़ा होता है, क्योकि यह उसकी अनिवार्य आवश्यकता है।

II. दूर शिक्षा में परंपरागत शिक्षा के समान विस्तृत एवं विधिक प्रकार से प्रस्तुत 'विषय –वस्तु' का अभाव होता है किन्तु इसकी 'विषय – वस्तु' संक्षिप्त , स्पष्ट एवं बोधगम्य होती है।

III. दूर शिक्षा की शिक्षण विधियाँ एवं सम्प्रेषण माध्यम परंपरागत शिक्षा से बहुत अधिक भिन्न होती है।

IV. दूर शिक्षा के शिक्षार्थी की व्यक्तिगत विशेषताएँ एवं सामाजिक पृष्ठ भूमि भी परंपरागत शिक्षार्थियों से भिन्न होती है। इसके शिक्षार्थि अधिक परिपक्व एवं स्वतः अभिप्रेरित होते हैं।

इससे पीटर्स ने यह निष्कर्ष निकाला है कि परंपरागत शिक्षा को विश्लेषित करने वाले वर्ग या आयाम दूर शिक्षा के विश्लेषण हेतु पर्याप्त नहीं है। उसके मतानुसार दूर शिकाह की प्रक्रिया एवं स्वरूप को औद्योगिक सिद्धान्त एवं व्यवहारों के आयामों की सहायता से विश्लेषित किया जा सकता है।

4 निर्देशित शैक्षणिक वार्तालाप का सिद्धान्त – बोर्जी होमबर्ग ने अपना व्यावसायिक जीवन एक अँग्रेजी प्राध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया। बाद में सन 1956 ई. में स्वीडन के हरमोंड्स पत्राचार शिक्षा संस्थान में कार्यभार ग्रहण करके वह दूर शिक्षा की ओर प्रवृति हुआ। सन 1965 ई. वह संस्था का निदेशक भी बने। उनके प्रयासों एवं अनुभवों को देखते हुए बाद में उन्हें पश्चिम जर्मनी के फर्न यूनिवर्सिटी हेगन में दूर शिक्षा के प्रोफेसर पद पर नियुक्त किया गया। इस दौरान बोर्जी होमबर्ग ने 'निर्देशित शैक्षणिक वार्तालाप के सिद्धान्त' को प्रतिपादित करके दूर शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान किया।

निर्देशित शैक्षणिक वार्तालाप के आधार – दूर शिक्षा में निर्देशित शैक्षणिक वार्तालाप विधि का दृष्टिकोण निम्नलिखित स्वयंसिद्धियों पर आधारित है-

I. शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध की अनुभूति अध्ययन आनंद एवं छात्र अभिप्रेरणा को प्रोत्साहित करती है।

II. इस प्रकार की अनुभूतियों को दूर से ही सुविकसित स्वतः अनुदेशात्मक सामाग्री एवं उपयुक्त द्विमार्गी सम्प्रेषण के द्वारा तीव्रता प्रदान की जाती है।

III. बौद्धिक आनंद एवं अध्ययन के प्रति अभिप्रेरणा, अध्ययन के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा अध्ययन की उचित प्रक्रिया एवं विधि के प्रयोग में सहायक होते है।

IV. मित्रवत वार्तालाप की भाषा, वातावरण एवं परंपरा,व्यक्तिगत सम्बन्धों जैसी अनुभूति विकसित करती है।

V. वार्तालाप के ढंग से प्रस्तुत किए गए संदेशों एवं निर्देशों को अपेक्षाकृत आसानी से समझा एवं याद किया जा सकता है।

VI. सुव्यवस्थित अध्ययन हेतु शिक्षण संगठन एवं छात्र दोनों के लिए कार्य नियोजन एवं निर्देशन आवश्यक होते हैं।

5 द्विमार्गी डाक सम्प्रेषण का सिद्धान्त – जॉन बाथ स्वीडन के प्रसिद्ध हरमोंड्स पत्राचार शिक्षा संस्था से संबन्धित जॉन ए. बाथ का नाम पत्राचार/दूर शिक्षा में द्वि-मार्गी सम्प्रेषण के सम्प्रेषण से जुड़ा हुआ है। इसमें दूर शिक्षा सामाग्री के प्रतिमान विकसित करने का प्रयास किया है।

मूलतः जॉन बाथ एवं होमबर्ग के विचार में कोई अंतर नहीं है, फिर भी जो कुछ अंतर दिखाई पड़ता है वह बाथ द्वारा द्वि मार्गी सम्प्रेषण तथा साथ ही दूर शिक्षा सामाग्री के प्रतिमान पर विशेष बल प्रदान किए जाने से है। किन्तु बाथ के विचारों को अलग से प्रस्तुत करने के कुछ विशेष कारण है। ये कारण अग्रलिखित है-

बाथ का मानना है कि शिक्षा को औद्योगिकृत रूप प्रदान करके दूर शिक्षा जनशिक्षा का एक व्यापक माध्यम बन गई है। साथ ही वह भी स्वीकार करता है कि दूर शिक्षा अनिवार्य रूप से स्वतंत्र अध्ययन है। किन्तु कोर्स लेखक, संपादक, ट्यूटर तथा कोर्स डिजाइनर के रूप में किए गए कार्यों के अनुभवों ने बाथ को इन विचारों कि ओर प्रेरित किया कि-

- "एक पत्राचार शिक्षक (ट्यूटर) रचनात्मक आलोचना, प्रोत्साहन तथा विद्यार्थि कि अधिगम समस्याओं के प्रति व्यक्तिगत जुड़ाव प्रदर्शन के माध्यम से उसे उल्लेखनीय सुधार हेतु उत्तेजित एवं अभिप्रेरित कर सकता है"।
- "दूर शिक्षा प्रणाली में द्विमार्गी डाक सम्प्रेषण माध्यम को कम से कम अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।"

अतः बाथ ने उपर्युक्त दोनों बिन्दुओं पर विशेष बल देते हुए दूर शिक्षा को सैद्धान्तिक आधार प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

6 शिक्षण-अधिगम के औद्योगिकृत रूप में मानवीय तत्व का सिद्धान्त- डेविड स्वार्ट ने 1973 ई. में ब्रिटेन के मुक्त विश्वविद्यालय में दूर शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया। वह मुख्य रूप से इस विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय केन्द्रों एवं अध्ययन केन्द्रो पर प्रदान की जाने वाली ट्यूटोरियल सेवाओं से जुड़ा था। इस कार्य से उसने अनुभव किया कि दूर शिक्षा में ट्यूटोरियल सेवाओं का बहुत अधिक महत्व है। उसमें इन सेवाओं को महत्व प्रदान करते हुए विश्वास व्यक्त किया है कि दूर शिक्षण का सबसे कठिन भाग (समस्या) "दूरस्थ छात्र के अधिगम के लिए समबन्ध की निरंतरता" है। "समाबंध की निरंतरटा"दूरवर्ती शिक्षा के औद्योगिकृत रूप में मानवीय तत्वों का समावेश पर बल देती है। इस प्रकार के विश्वास की प्रबलता की अभिव्यक्ति स्वार्ट के प्रयोजनवादी विचारों में मिलती है जिसको निम्न उपशीर्षक से समझ सकते हैं –

I. मानवीय सहायता की नितांत आवश्यकता
II. प्रमुख मुद्दे एवं समझौते

दूर शिक्षा सिद्धांतों का वर्गीकरण – ऊपर छह सिद्धांतों के बारे में बताया गया है। उनमे दूर शिक्षा की प्रमुख विचारधाराओं का पता चलता है। इन विचारधाराओं को व्यापक रूप से दो वर्गों में रखा जा सकता है-

प्रथम वर्ग – इस वर्ग में ऐसे विचारक आते हैं जो शिक्षण अधिगम की सामाग्री के उत्पादन को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हैं। पीटर्स इस वर्ग से समबन्धित प्रमुख विचारक है।

द्वितीय वर्ग – इस वर्ग में वे विचारक आते हैं जो ‘शिक्षार्थी से संबन्धित पक्षों’पर अधिक बल प्रदान करते हैं। शिक्षार्थी से समबन्धित पक्षों पर आधारित सिद्धांतों को उनकी कुछ विशेषताओं के आधार पर दो उप वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

I. पहले वर्ग में वे विचारक एवं उनके सिद्धान्त आते हैं जो शिक्षार्थी की अभिप्रेरणा तथा शिक्षार्थी द्वारा निश्चित किए गए अधिगम उद्देश्यों को महत्व प्रदान करते हैं। वेदेमियर एवं मूरे इसी उपवर्ग में आते हैं।

II. दूसरे वर्ग के विचारकों द्वारा शिक्षण अधिगम कार्यक्रमों के शैक्षणिक पक्षों (शिक्षण विधियाँ एवं प्रविधियाँ) को महत्व दिया जाता है अर्थात इस विचारधारा के अंतर्गत इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि शिक्षार्थियों की उपलब्धियों की दृष्टि से किसी शैक्षिक कार्यक्रमों को किस प्रकार प्रभावशाली बनाया जा सकता है। होमबर्ग, बाथ एवं स्वार्ट इसी उप वर्ग में आते हैं।

यहाँ पर विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यूरोपीय विचारक (होमवर्ग,बाथ एवं स्वार्ट) दूर शिक्षा के शैक्षणिक पक्ष पर बल देते हैं जबकि अमेरिकन विचारक (वेडेनियर एवं मूरे) अभिप्रेरणात्मक पक्ष पर बल देते हैं। अतः विचारधाराओं के प्रतिपादन में सामाजिक सांस्कृतिक अंतर पर प्रभाव प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। अतः भारतीय संदर्भ में हमें इन सिद्धांतों को अपनी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए प्रयुक्त करना होगा।

अपने प्रगति की जांच करे-

- स्वतंत्र अध्ययन के सिद्धान्त पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।
- जॉन बाथ के सिद्धान्त की समीक्षा कीजिये।

3.3.7. दूर शिक्षा की शिक्षण विधियाँ

दूर शिक्षा की प्रणाली, परंपरागत-शिक्षा प्रणाली से कई अर्थों में भिन्न है। दूर शिक्षा के उद्देश्य, प्रक्रिया स्वरूप, व्यवस्था, प्रशासन तथा मूल्यांकन प्रणाली परंपरागत प्रणाली से बिल्कुल भिन्न प्रकार की है। इसे परंपरागत प्रणाली का विकल्प नहीं कहा जा सकता है क्योकि इस प्रणाली के अंतर्गत ऐसे छात्रों का अध्ययन का अवसर दिया जाता है जो परंपरागत शिक्षा के माध्ययम से शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रहते हैं। इस प्रकार शिक्षा प्रणाली का नवीन आयाम ही माना जाता है,जिसका उपयोग विश्व के सभी विकासशील देशों में किया जाने लगा है। परंपरागत –शिक्षक की भूमिका से दूरवर्ती शिक्षक की भूमिका तथा उततरदायित्व भी अधिक होते है। दूर शिक्षा को शिक्षण तथा अनूदेशन के साथ अनेक कार्यों की व्यवस्था भी करनी होती है। वह शिक्षक की अपेकषा प्रबन्धक अधिक होता है। दूर शिक्षा प्रणाली में शिक्षक को शिक्षण-प्रक्रिया का आयोजन दो अवस्थाओं में करना होता है-

1 अनुदेशन प्रक्रिया

2 संपर्क कार्यक्रम की व्यवस्था

इन अवस्थाओं के लिए शिक्षक को अनेक प्रकार की शिक्षण – विधियाँ तथा प्रविधियों को प्रयुक्त करना होता है। दूरवर्ती शिक्षक को शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों की उपयोगिता के साथ उनके अर्थ, प्रकार तथा स्वरूप का ज्ञान होना भी आवश्यक है तभी वे इनकी सार्थकता तथा व्यावहारिकता का अनुभव कर सकते हैं।

दूर शिक्षा की प्रमुख शिक्षण विधियों का वर्णन क्रमबद्ध अवस्थाओं के रूप में किया गया है –

1 अनुदेशन प्रक्रिया – दूर शिक्षा में मुद्रित माध्यम महत्वपूर्ण होता है, परंतु अनुदेशन सामाग्री की रचना विषय के शिक्षकों द्वारा की जाती है। यह अनुदेशन सामाग्री पुस्तकों की रचना से भिन्न होती है। अनुदेशन सामग्री की रचना में नवीन आयामों का प्रयोग किया जाता है जिससे छात्र स्वाध्याय से ही पाठ्य वस्तु को समझ लें। अभिक्रमित अनुदेशन का ज्ञान तथा कौशल होना आवश्यक होता है। अनुदेशन सामग्री को छात्रों की आवश्यकताओं और उनकी विषमताओं को ध्यान में रखना होता है। सभी शिक्षक उत्तम प्रकार की अनुदेशन – सामाग्री नहीं तैयार कर सकते हैं। दूरवर्ती शिक्षकों को यह एक चुनौती का सामना करना होता है।

अनुदेशन सामग्री या अध्ययन सामग्री में दूरवर्ती छात्र के लिए अभ्यास हेतु गृहकार्य भी दिये जाते हैं। इन गृह-कार्यों का छात्रों की अधिगम की दृष्टि से अधिक महत्व होता है इसमें संपर्क कार्य तथा सहायक प्रणाली मुख्य है। इसके साथ –साथ गृहकार्य के अर्थ, प्रकार,स्वरूप, विशेषताओं तथा सीमाओं पर ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार शिक्षण को प्रथम अवस्था में पाठ्य सामाग्री की रचना करना और उनमें अध्ययन के अभ्यास हेतु गृहकार्य को देना है।

2 संपर्क कार्यक्रम में शिक्षण- प्रक्रिया की व्यवस्था – दूर शिक्षा प्रणाली के संबंध में यह धारणा है तथा अनुभव भी है कि अनुदेशन पाठ्य-सामाग्री से छात्रों की कठिनाइयों तथा समस्याओं का समाधान पूर्णरूप में नहीं किया जा सकता है। अनुदेशानात्मक शिक्षण प्रक्रिया से ज्ञानात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। भावात्मक तथा क्रियात्मक उद्देश्य की प्राप्ति वास्तविक शिक्षण –प्रक्रिया से ही संभव होता है। छात्र एवं शिक्षकों के मध्य अन्तः प्रक्रिया हेतु संपर्क कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। संपर्क कार्यक्रम के शिक्षकों को कई क्रियाएँ करनी होती हैं-

I. अनुवर्ग शिक्षण (Tutorial Teaching)
II. स्वामित्व अधिगम शिक्षण (Mastery Teaching Strategies)
III. निदान एवं अधिगम संबंधी कठिनाइयों का समाधान करना (Diagnosis and Remedy for Learning difficulties)
   (क) शाखीय अभिक्रमित (Branching Programming)
   (ख) समायोजन प्रविधियाँ (Adjustive Devices)

4 निर्देशन एवं परामर्श देना तथा

5 विचार गोष्ठी प्रविधि तथा समूहिक वाद-विवाद प्रविधि

संपर्क कार्यक्रमों के शिक्षण की व्यवस्था अध्ययन केन्द्रों पर की जाती है। शिक्षण के कार्य हेतु स्थानीय शिक्षा संस्थाओं से शिक्षकों को लिया जाता है। यह अपने परंपरागत ढंग से शिक्षण करते

है,जिससे संपर्क कार्यक्रमों का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है। यदि इन्हें कुछ प्रक्षीक्षण दिया जाए तब वे दूरवर्ती-छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे। संपर्क कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य होता है कि उनके अध्ययन संबंधी कठिनाइयों तथा समस्याओं के लिए भी परामर्श दिया जाना चाहिए। गृहकार्य पर जो टिप्पणी दी गयी है उनके अर्थ को समझना होता है। परीक्षा समब्न्धी तैयारी हेतु भी ठोस निर्देशन दिया जाता है। आज कि शिक्षा परीक्षा केन्द्रित है एसलिए दूरवर्ती छत्रों का लक्ष्य परीक्षा कि तैयारी करके अच्छे अंक प्राप्त करना होता है। संपर्क कार्यक्रम में शिक्षण-प्रक्रिया अधिक जटिल होती है,इसलिए दूरवर्ती शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था अलग से होनी आवश्यक है।

अपने प्रगति की जांच कीजिये-

दूर शिक्षा की शिक्षण विधियों को अपने शब्दों में समझाइये।

3.3.8. दूर शिक्षा की उपयोगिता एवं संभावनाएं –

दूर शिक्षा के विकासात्मक इतिहास के सूक्षम अध्ययन से स्पष्ट है कि शिक्षा की इस नवीन प्रणाली ने बहुत कम समय में ही पूरे विश्व में अपने को स्थापित कर लिया है। इसके सिद्धांतों से यह भी पता चलता है कि यह शैक्षिक संप्रत्यय मात्र गुब्बारे की तरह फूलने एवं फुस्स हो जाने जैसा नहीं है अपितु यह ठोस वैचारिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। यह शैक्षिक संप्रतयय निरंतर परीक्षण के दौर से गुजर रहा है जिसके माध्यम से एक नई शैक्षिक संस्कृति के निर्माण का प्रयास हो रहा है। चूंकि दूरवर्ती शिक्षा का प्रारम्भिक उद्भव विकसित देश से हुआ है तथा विकसित एवं विकासशील देशों की सामाजिक,आर्थिक,शैक्षिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों में पर्याप्त अंतर होता है। अतः दूर शिक्षा की उपयोगिता को हमें भारतीय सामाजिक –शैक्षिक समस्याओं की दृष्टि से परखना अति आवश्यक है।

दूर शिक्षा की उपयोगिता एवं संभावनाएं को भारतीय संदर्भ में परखने के लिए अपने देश के सामाजिक –सांस्कृतिक परिस्थितियों को निरंतर ध्यान में रखना होगा। हमारी सामाजिक –सांस्कृतिक परिस्थितियाँ विश्व के अन्य देशों से भिन्न हैं। चूंकि हमारे देश में सामाजिक शैक्षिक समस्याएँ अनेक एवं असीमित हैं तथा यहाँ पर उन सभी की चर्चा कर पाना संभव नहीं है। अतः हम चार प्रमुख मुद्दों पर ही ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करेंगे।

I. भारतीय आर्थिक स्थिति के अंतर्गत सामाजिक राजनैतिक मुद्दे
II. शैक्षिक मुद्दे- एक सुधारात्मक शैक्षिक योजना के रूप में दूर शिक्षा की सामाजिक शैक्षिक विश्वसनीयता।
III. शैक्षिक मुद्दे- दूर शिक्षा एक अनुशासन के रूप में।
IV. दूर शिक्षा के मार्ग में आने वाली सूक्षम एवं वृहद समस्याएँ।

सामाजिक-राजनैतिक मुद्दे- भारत में दूर शिक्षा की उपयोगिता को संदिग्ध सिध्द करने के लिए की सामाजिक,शैक्षिक ,आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिति का एक समीक्षात्मक विश्लेषण करना आवश्यक है। यह विश्लेषण एक प्रश्न के माध्यम से सरलता से प्रारम्भ किया जा सकता है। यह प्रश्न है-

क्या एक सुधारात्मक शैक्षिक व्यूह रचना के रूप में दूर शिक्षा की ओर अग्रसर होना ,भारतीय आर्थिक स्थिति के अंतर्गत सामाजिक राजनाइटिक दृष्टि से न्याय संगत है ?

इस प्रश्न का समाधान एचएम एक शैक्षिक एकल अध्ययन (Educational Case Study)के विश्लेषण के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। इस केश स्टडी के विश्लेषण से हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि आंग्ल भाषा शिक्षण से संबन्धित भारतीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएं किन सामाजिक – सस्कृतिक अवरोधों का सामना कर रही हैं। भारत मेन विशिष्ट रूप आंग्ल भाषा शिक्षण हेतु स्थापित आंगल भाषा शिक्षण संस्थाएं (English Language Teaching Institutes) 'ELTLs' मुख्य रूप से निम्नांकित समस्याओं का सामना कर रहीं हैं-

I. बहुत बड़ी संख्या में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की समस्या
II. उन्हें प्रशिक्षित करने हेतु अधिक धन की उपलब्धता की समस्या ,
III. सभी शिक्षकों को प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु अधिक समय की आवश्यकता तथा
IV. प्रशिक्षण की प्रासंगिकता की समस्या

इन सभी समस्याओं में मुख्यतः शिक्षक प्रशिक्षण से जुड़ी समस्या है जिसको दूर कर शिक्षक प्रशिक्षण संस्था में भाषाई शिक्षकों के कौशल को विकसित किया जा सकता है।

शैक्षिक मुद्दे- भारतीय जन मानस भी नव प्रवर्तन को तत्काल एसवीकरने के प्रति प्रायः संकोचशील ही रहा है। दूर शिक्षा के संदर्भ में भी कमोवेश यही स्थिति रही है। समान्यतः भारतीय शिक्षाविद भी दूर शिक्षा को एक सुधारात्मक शैक्षिक व्यूह रचना के रूप में देखने एवं समझने के प्रति अधिक उत्सुकता नहीं रखते हैं। शिक्षाविदों की इस तरह की अभिवृत्ति भी संस्कृतिजन्य पक्षधरता का परिणाम हो सकती है यद्यपि इसके पक्ष में कोई अनुभव जनित साक्ष्य नहीं है। किन्तु पिछले दो दशकों में भारत में दूर शिक्षा के विस्तार एवं कई क्षेत्रों में इसकी सफलता ने इसकी शैक्षिक विश्व्शनीयता भी स्थापित की है। अतः हमारे देश में दूर शिक्षा की आवश्यकता एवं उपयोगिता के बारे में जानने के लिए हमें निम्नांकित मुद्दों पर विचार करना होगा –

I. क्या दूर शिक्षा एक सुधारात्मक शैक्षिक व्यूह रचना है ?
II. क्या भारतीय शिक्षाविद एवं शिक्षा संस्थाएं इसके प्रति संस्कृतजन्य पक्षधरता रखते हैं? तथा
III. क्या यह परंपरागत शिक्षा प्रणाली से अधिक प्रभावशाली है तथा शैक्षिक दृष्टि से विश्वसनीय है?

आगे हम विद्यार्थियों से इन्हीं प्रश्नो का अनुभावजनित साक्ष्यों पर सकारात्मक उत्तर संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

दूर शिक्षा – एक सुधारात्मक शैक्षिक व्यूह रचना - नवीन व्यूह रचनाओं के प्रयोग का ढंग भी परंपरागत प्रणाली के ढंग से भिन्न होता है। किन्तु हम परंपरागत प्रणाली के इतने अधिक अभयस्थ हो चुके हैं कि नवीन व्यूह रचनाओं को भी पुराने ढंग से ही प्रयोग करना प्रारम्भ कर देते हैं। परिणामस्वरूप

प्रभावशाली परिणाम नहीं मिल पाते हैं तथा हम बड़ी सहजता से नवीन प्रणाली को ही दोष युक्त कहने लगते हैं।

दूरवर्ती शिक्षा का प्रारम्भ पत्राचार शिक्षा के रूप में हुआ है। अनेक परंपरागत भारतीय विश्वविद्यालय द्वारा पत्राचार शिक्षा संस्थान अथवा निदेशालयों की स्थापना की गयी तथा वे दोनों माध्यमों (परंपरागत व पत्राचार प्रणाली) से डिग्री पाठ्यक्रम प्रदान कर रहें हैं। कुछ शोधकर्ताओं द्वारा पत्राचार शिक्षा प्रणाली की प्रभावशीलता पर शोध अध्ययन भी किए गए हैं जिसमें निष्कर्ष रूप में यह बात सामने आयी कि पत्राचार शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत हम परंपरागत शिक्षा की आधारभूत बातों का ही अनुकरण करने लगते हैं। यही इसकी प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारण है। इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि 'दूर शिक्षा' में अनुकरनात्मक प्रयोग गुणात्मक दृष्टि से अच्छा परिणाम नहीं प्रदान कर सकता है। अतः इसे नव प्रवर्तन के रूप में प्रयोग करने की आवश्यकता है।

प्रमुख अभिकरणों की सांस्कृतिक पक्षधरता - भारतीय शिक्षाविद एवं शिक्षा संस्थाएं जाने-अंजाने संस्कृतिजन्य पक्षधरता से ग्रसित होते हैं। परिणामस्वरूप वे दूर शिक्षा को एक सुधारात्मक व्यूह रचना के रूप मे समझने पर बहुत अधिक ध्यान नहीं देते हैं। हमारे देश में अभी तक पत्राचार शिक्षा के केवल एक पक्ष – इसका कम खर्चीलापैन एवं अधिसंख्य लोगों तथा अधिक दूरी तक इसकी पहुँच को ही स्वीकारा गया है। किन्तु जहां तक सामाजिक एवं शैक्षिक उपयोगिता का संबंध है इसके अनुकरणनात्मक प्रयोग से अधिक कुछ नहीं कहा जा सका है। अतः इसे उपयोगी एवं प्रभावशाली बनाने के लिए ब्रिटेन के मुक्त विश्वविद्यालय के तरीके से प्रयास करना होगा। इन प्रयासों में मुक्त प्रवेश, पाठ्यक्रम समिति , संचयी क्रेडिट के आधार पर डिग्री प्रदान करना, प्रति छात्र कम लागत ,अन्तः अनुशाशन पाठ्यक्रमों का प्रारम्भ ,पाठ्यक्रमों का संयुक्त निर्माण, अनुभव पश्चात पाठ्यक्रम आदि समलित किए जाने चाहिए। इस प्रकार के शैक्षिक नव प्रवर्तन से पत्राचार शिक्षण पद्धति को शैक्षिक दृष्टि से जीवंत एवं प्रभावशाली तथा सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक बनाया जा सकता है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा ऐसे ही प्रयास एवं प्रयोग किए जा रहे हैं। इस विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात शिक्षाविदों की संस्कृतिजन्य पक्षधरता में कमी आ रही है तथा दूर शिक्षा की उपयोगिता को स्वीकारा जाने लगा है।

अपने प्रगति की जांच करें-

- दूर शिक्षा की उपयोगिता को स्पष्ट कीजिये।
- भारत में दूर शिक्षा की संभावनाओं पर चर्चा करें।

दूर शिक्षा की सामाजिक –शैक्षिक विश्वसनीयता – किसी शैक्षिक प्रणाली की विश्वसनीयता इस बात पर निर्भर करती है कि वह उन उद्देश्यों को पूर्ण करने में कितनी अधिक सफल सिद्ध रही है जो उसके लिए

समाज द्वारा निर्धारित किए गये हैं। समान्यतया आधुनिक समय में किसी शैक्षिक प्रणाली के निम्नलिखित चार मुख्य उद्देश्य होते हैं –

I. कौशलों का विकास हेतु अनुदेशन प्रदान करना (To give instruction in skills),
II. सुसभ्य समाज का निर्माण करना (To build cultivated society),
III. अधिगम एवं ज्ञान की वृद्धि करना (To advance learning), तथा
IV. समान मानवीय दृष्टिकोण का संचार करना (To transmit the secular view of man)

अतः कोई भी शैक्षिक प्रणाली आधुनिक समाज के लिए तभी प्रासंगिक हो सकती है जब वह उपर्युक्त उद्देश्यों को अधिकतम सीमा तक पूर्ण करने मेन सक्षम हों। परंतु हमारी परंपरा शिक्षा प्रणाली इन उद्देश्यों को पूर्ण करने मेन पूरी तरह से सफल नहीं हो पा रही है। हमारी परंपरागत शिक्षा प्रणाली मे प्रायः जिन कमियों की चर्चा की जाती है उनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

i. शैक्षिक कार्यक्रम / पाठ्यक्रम वर्तमान सामाजिक आवश्यकताओं की दृष्टि से प्रासंगिक नहीं है।
ii. सर्वाधिक वेतन प्राप्त करने वाले शिक्षक का लाभ बहुत थोड़ी संख्या मे कुछ चयनित छत्र ही उठा पा रहें हैं।
iii. वर्षों पूरनी कक्षा-शिक्षण विधि बहुत अधिक नीरस,अरूचिकर एवं अप्रभावी होती जा रही है।
iv. पाठ्यक्रम अवधि,कक्षा में उपस्थिती आदि जैसी रूढ़िगत बाध्यताएँ यथावत हैं तथा इन्हें किसी प्रकार की चुनौती भी नहीं दी जा रही है।
v. उच्च एवं अच्छी शिक्षा का लाभ कुछ विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग द्वारा ही प्राप्त किया जा रहा है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि परंपरागत शिक्षा प्रणाली एवं वर्तमान शिक्षा प्रणाली सामाजिक –शैक्षिक आवश्यकताओं में कोई तालमेल नहीं बैठा पा रहा है। परंपरागत शिक्षा प्रणाली की इस कमी का एक प्रमुख कारण यह देखा गया है कि शिक्षण एवं शोध जो दो अलग-अलग कार्य हैं उन्हें एक साथ मिला दिया गया है।

3.3.9. दूर शिक्षा से संबन्धित अन्य सूक्ष्म एवं वृहद मुद्दे –

दूर शिक्षा के विकास में अन्य कई ऐसे अवरोध भी देखने में आते हैं जिनके कारण लोग इसकी व्यावहारिकता एवं उपयोगिता पर उंगली उठाते रहते हैं। इन अवरोधों को कम महत्वपूर्ण मानकर इनकी अनदेखी भी नहीं कि जा सकती है। भारतीय संदर्भ में इन अवरोधों को दो प्रमुख रूप में देखा जा सकता है-

I. सूक्ष्म मुद्दे (Micro Issues)
II. वृहद मुद्दे (Macro Issues)

सूक्षम मुद्दे – सूक्ष्म मुद्दे या समस्याएँ वे मुद्दे है जो शैक्षिक अदा या आपूर्ति (Academic Inputs) से संबन्धित होते हैं। दूर शिक्षण संस्थानों मे अनुदेशन प्रदान करने अथवा प्रसारित करने मे प्रायः जिस प्रकार की शैक्षिक आपूर्ति का प्रयोग किया जाता है उसके प्रमुख तत्व निम्न लिखित हैं –

i. मुद्रित एवं श्रव्य दृश्य पाठ्य सामाग्री (Printed and Audio-Visual Course Materiales)

ii. छात्र उत्तर पत्रक /प्रदत्त कार्य (Students Response Sheet/Assignments)

iii. व्यक्तिगत समपर्क कार्यक्रम (Personal Contact Programmes)

वृहद मुद्दे – भारत वर्ष में दूर शिक्षा के विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाले जिन सूक्ष्म मुद्दों की चर्चा अभी तक हमने की है वे प्रायः शैक्षिक आपूर्ति या अंतर्निवेश (Educational Inputs) से संबन्धित हैं तथा अलग –अलग संस्थाओं मे इनमें अंतर भी हो सकता है। इन सूक्ष्म मुद्दों के अतिरिक्त दूर शिक्षा के विकास में कुछ ऐसी समस्याएँ सर्वव्यापक है जिनको वृहद मुद्दों के रूप में पहचाना गया है। ये वृहद मुद्दे निम्नलिखित हैं –

i. शैक्षिक पक्षधारता एवं सामाजिक पूर्वाग्रह (Educational Biasedness and Social Prejudices)

ii. दूर शिक्षा की द्विरूपी संरचना (Dual Structure of Distance Education)

iii. अपर्याप्त आर्थिक सहायता (Inadequate Financial Support)

दूर शिक्षा से संबन्धित विकासात्मक मुद्दे – दूर शिक्षा से जुड़े हम सूक्ष्म एवं वृहद मुद्दों पर लघु चर्चा के पश्चात कुछ उन मुद्दे पर भी ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है जो इसके विकास में प्रमुख रूप से सहायक हो सकते हैं। ये विकासात्मक मुद्दे निम्नवत हैं-

i. योग्य शैक्षणिक स्टाफ की व्यवस्था।

ii. बाहरी संख्या में शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की व्यवस्था।

iii. बाहरी योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ उठाना।

iv. पर्याप्त संख्या में अध्ययन केन्द्रों की स्थापना एवं उनमें पुस्तकालयों, प्रयोगशाला आदि की सुविधाएं प्रदान करना।

v. जन संचार माध्यमों हेतु साफ्टवेयर एवं हार्डवेयर के विकास पर बल।

vi. संपर्क कार्यक्रमों का विधिवत आयोजन एवं संचालन।

अपने प्रगति की जांच करें-

- दूर शिक्षा को प्रभावी बनाने में किए जाने वाले प्रयासों को स्पष्ट कीजिये।
- दूर शिक्षा के लिए सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों की समीक्षा कीजिये।

3.3.10. दूर शिक्षा में शिक्षण माध्यम का उपयोग –

अनुदेशनात्मक माध्यम की शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया एवं शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति की दृष्टि महत्वपूर्ण भूमिका एवं योगदान है। शिक्षण –अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में माध्यमों का सार्थक उपयोग है। माध्यमों का उपयोग कक्षा-शिक्षण तथा दूर शिक्षा दोनों में ही किया जाता है।

शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षण विधि एवं शिक्षण माध्यम दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। शिक्षण विधियों का पाठ्य-पुस्तक के प्रस्तुतीकरण और शिक्षण माध्यमों का पाठ्यवस्तु के सम्प्रेषण में

प्रयोग किया जाता है। शिक्षा विधि का संबंध पाठ्यवस्तु तथा सामय से होता है, और माध्यम का संबंध छात्र एवं शिक्षक की परस्परिक दूरी से होता है। माध्यम के उपयोग से दूरी हेतु सुविधा प्रदान की जाती है, माध्यम से छात्रों के घर तक पहुंचा जाता है। आमने-सामने के शिक्षण में पाठ्यपुस्तक के प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण हेतु समुचित शिक्षण विधियों का प्रयोग करते हैं। माध्यम के अंतर्गत शिक्षण विधि सम्मिलित होती है। दूर शिक्षा में माध्यम तथा विधि दोनों ही समान रूप से उपयोगी होती हैं, जबकि कक्षा-शिक्षण में शिक्षण विधि का उपयोग अधिक होता है।

दूर शिक्षण में मूलभूत में बहु – माध्यम प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। साधारणतः मुद्रित माध्यम को अधिक विश्वसनीय तथा उपयोगी माना जाता है। मुद्रित माधायम को अन्य माध्यमों एवं प्रविधियों द्वारा पूरा किया जाता है। सहायक माध्यम के रूप में प्रयुक्त करते हैं। आज तकनीकी का युग है,इसलिए दूर शिक्षा प्रणाली में मुद्रित माध्यमों का उपयोग किया जाता है, जो मुद्रित माध्यमों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली है। दूर शिक्षा में प्रयुक्त किए जाने वाले माध्यमों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं –

I. मुद्रित अनुदेशन माध्यम, तथा
II. अमुद्रित अनुदेशन माध्यम।

मुद्रित अनुदेशनात्मक माध्यम का उपयोग पत्राचार शिक्षा में होता है। मुद्रित अनुदेशन पाठ-सामाग्री को डाक द्वारा छात्रों तक पहुंचाई जाती है। इसे डाक शिक्षा की संज्ञा दी जाती है।

अमुद्रित अनुदेशनात्मक माध्यमों का प्रयोग दूर शिक्षण में किया जाता है , जिसमे रेडियो तथा दूरदर्शन के प्रसारण द्वारा पाठ्यवस्तु का सम्प्रेषण किया जाता है।

मुद्रित पाठ्यवस्तु अथवा पाठ्यपुस्तक का प्रयोग साधारणतः सभी करते हैं। यह सामान्य सम्प्रेषण का माध्यम नहीं कह सकते है,क्योकि इससे अधिक प्रभावशाली माध्यम विकसित किए जा चुके हैं,जिन्हें आधुनिक अमुद्रित माध्यम अथवा तकनीकी माध्यम कहते हैं,जिनसे दूर शिक्षा के छात्रों को सीखने की सुविधा दी जाती है। मुद्रित माध्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं तथा शिक्षा की दृष्टि से अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं,इंका उपयोग सहायक माध्यम के रूप में भी किया जाता है।

अपने प्रगति की जांच करें-

मुद्रित तथा अमुद्रित अनुदेशन माध्यम से आप क्या समझते हैं? विस्तार से समझाइये।

3.3.11. सारांश

वर्तमान समय में दूर शिक्षा की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया जा रहा है। इसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात इसकी अपनी तार्किक भाषा एवं संवाद विधि है जो शिक्षण संस्थाओं से दूर रहने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करने में आने वाली समस्याओं के समाधान के परिणाम स्वरूप विकसित हुई है। दूर शिक्षा का विकास विश्व के अनेकों देशों में हुआ जिसको पत्राचार द्वारा शिक्षण के नाम से प्रारम्भ में जाना जाता था और इसका विकास मुख्य रूप से 1969 में ग्रेट ब्रिटेन में मुक्त विश्वविद्यालय के खुलने के बाद तीव्र गति से हुआ और देखते ही देखते विश्व के अनेकों देशों में मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किये जाने लगे।

भारत में दूर शिक्षा का प्रारम्भ दिल्ली विश्वविद्यालय में 1962 में पत्राचार शिक्षा कार्यक्रम के रूप में हुआ लेकिन प्रथम मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापन 1982 में आंध्र प्रदेश में की गयी। इसके बाद देखते ही देखते दूर शिक्षा की आवश्यकता व महत्व को ध्यान में रखते हुए अनेकों राज्यों में मुक्त विश्वविद्यालय स्थापित किये जाने लगे।

3.3.12. संदर्भ पुस्तकें

- अग्रवाल, जे.सी.(2010),(प्रथम संस्करण), "भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास" आर. एस. ए. इन्टरनेशनल प्रकाशन, आगरा।
- पाठक,पी. डी.(2009) (तेईसवां संस्करण), "भारतीय शिक्षा एवं उनकी समस्याएँ" अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- भटनागर, ए. बी. भटनागर मीनाक्षी एवं भटनागर अनुराग (2006) (प्रथम संस्करण), "भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास" आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ।
- शर्मा,आर. ए.(2011),(प्रथम संस्करण), "भारतीय शिक्षा प्रणाली का विकास" आर. लाल. बुक डिपो,मेरठ।
- शील,अवनीन्द्र (2007), "भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएँ" साहित्य रत्नालय प्रकाशन, कानपुर।
- यादव,सियाराम (2008), "दूरवर्ती शिक्षा" विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा।
- गुप्ता ,एस. पी. एवं गुप्ता अल्का (2007), "मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा",शारदा पुस्तक भवन,आगरा।
- शर्मा, आर. ए. (2008), "दूरवर्ती शिक्षा",आर. लाल. बुक डिपो,मेरठ।

खंड-4 भारतीय समाज, राज्य एवं शिक्षा

इकाई-1 भारतीय संविधान एवं शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

4.1.0. उद्देश्य
4.1.1. प्रस्तावना
4.1.2. संविधान का अर्थ
4.1.3.संविधान की विशेषताएँ
4.1.4. भारत का संविधान
4.1.5. भारत के संविधान की प्रस्तावना
4.1.5.1. शिक्षा में न्याय
4.1.5.2. शिक्षा में समानता
4.1.5.3. शिक्षा में स्वतंत्रता
4.1.5.4. शिक्षा में बंधुत्व
4.1.6. शिक्षाकाअधिकारअधिनियम, 2009
4.1.7. शिक्षाकाअधिकारअधिनियम 2009 मेंप्रावधान
4.1.8. सारांश
4.1.9. शब्दावली
4.1.10. संदर्भ

4.1.0. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप:

- भारत के संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित महत्वपूर्ण शब्दों को परिभाषित और उनमें अंतर कर सकेंगे।
- निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा से परिचित हो सकेंगे।
- भारत के संविधान में शिक्षा संबंधी प्रावधानों से परिचित हो सकेंगे।
- शिक्षा संबंधी प्रावधानों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 की व्याख्या कर सकेंगे।

4.1.1. प्रस्तावना

संविधान कानूनों और नियमों का एक समूह है जो किसी देश के शासन के लिए व्यापक ढांचा प्रदान करता है और यह विभिन्न संस्थानों के बीच संबंधों को परिभाषित और निर्धारित भी करता है। भारत में हमारा संविधान सभी शक्तियों का स्रोत है। इस इकाई में हम भारत के संविधान, उसकी उत्पत्ति, उद्देश्यों और संशोधन प्रक्रिया की व्याख्या करेंगे। शिक्षा वह साधन है जिसके द्वारा हम लोगों का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं। हमारे संविधान में भारत के लोगों की शिक्षा के लिए कई प्रावधान किए गए हैं। यहाँ हम शिक्षा के संबंध में मौलिक अधिकारों, राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे। भारतीय संविधान के विभिन्न लेख भी लोगों की शिक्षा पर असर डालते हैं। हम आपको शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 से भी परिचित करवाएँगे।

4.1.2. संविधान का अर्थ: संविधान ऐसे निश्चित नियमों का संग्रह होता है जिसमें सरकार कीकार्यप्रणाली प्रतिपादित होती है और जिसके द्वारा उसका संचालन होता है।

4.1.3. संविधान की विशेषताएँ:

1. संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य।
2. धर्म निरपेक्ष राज्य।
3. समाजवाद की स्थापना।
4. लिखित और निर्मित संविधान।
5. विशाल संविधान।
6. संसदीय शासन प्रणाली।
7. संसदात्मक होते हुए भी एकात्मक।
8. मौलिक अधिकार।
9. मौलिक कर्तव्य।
10. स्वतंत्र न्यायपालिका।
11. इकहरी नागरिकता।
12. वयस्क मताधिकार।
13. अल्पसंख्यक एवं पिछड़े वर्ग का संरक्षक।

4.1.4. भारत का संविधान:

हम भारतीय संविधान की उत्पत्ति संक्षिप्त पृष्ठभूमि से शुरू करेंगे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतंत्रत करने का फैसला किया, तो उन्होंने 1946 में भारत में एक कैबिनेट मिशन भेजा। कैबिनेट मिशन योजना स्वतंत्र भारत के लिए एक संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए एक संविधान सभा के गठन के लिए प्रदान की गई थी। संविधान सभा में लंबे विचार-विमर्श के बाद, संविधान का प्रारूप 26 नवंबर, 1949 को अपनाया गया और 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू

हुआ।प्रस्तावना में भारत के संविधान के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से बताया गया है। भारत के संविधान का मुख्य उद्देश्य संप्रभुता की स्थापना करना है जो आम लोगों को सभी प्रावधानों का अंतिम स्रोत बनाने के लिए है।

भारत के संविधान की प्रस्तावना के अनुसारभारत एक संप्रभु राज्य है, जिसका अर्थ है कि भारत आंतरिक और बाहरी मामलों में स्वतंत्र है और यह विदेशी शक्ति के नियंत्रण में नहीं है; यह एक 'समाजवादी राज्य' है जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया और संगठित योजना के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक न्याय सुनिश्चित करता है।यह एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है जिसका अर्थ है कि सभी धर्मों को समान दर्जा दिया जाता है।अंत में भारत एक लोकतांत्रिक राज्य है जिसमें लोग सरकार बनाने के लिए अपने प्रतिनिधियों को विधायिका के लिए चुनते हैं। भारत एक गणतंत्र है, जिसका अर्थ है कि राज्य के प्रमुख को नामित नहीं किया जाता है बल्कि उन्हें चुना जाता है।अबचूंकि भारत का संविधान एक दस्तावेज है, जो न केवल देश की प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास को नियंत्रित करता है, बल्कि इसके शैक्षिक विकास को भी देखता है, इसलिए भारत के संविधान की प्रस्तावना के उपयुक्त शब्दों को जानना उचित होगा।

4.1.5. भारत के संविधान की प्रस्तावना:

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए
तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता
बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

आइए अब हम बताए गए उद्देश्यों का विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं, प्रस्तावना में जहाँ शिक्षा का संबंध निम्नानुसार है:

4.1.5.1. शिक्षा में न्याय: शिक्षा में न्याय का निहितार्थ यह है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को शिक्षा के माध्यम से उत्थान, विकास और प्रगति का समान अवसर होना चाहिए। इसके अलावा, शिक्षा के क्षेत्र में न्याय प्रदान करने के लिए, सीखने की संस्थाओं को सभी नागरिकों के लिए खुला रखा जाना चाहिए और किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

4.1.5.2. शिक्षा में समानता: प्रस्तावना के इस पहलू को शिक्षा आयोग द्वारा बहुत स्पष्ट रूप से निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है "शिक्षा के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है,अवसर को समानता को सुनिश्चित करना है, जो पिछड़े या वंचित वर्गों और व्यक्तियों को उनकी हालत में सुधार के लिए शिक्षा एक प्रभावशाली घटक के रूप में उपयोग करने में सक्षम बनाती है।

4.1.5.3. शिक्षा में स्वतंत्रता: शिक्षा एक ऐसा साधन है जिसका लोगों को उनकी अभिव्यक्ति के उचित उपयोग के लिए मार्गदर्शन करने के लिए किया जा सकता है। साथ ही साथ शिक्षा नागरिकों को उनके अन्य मौलिक अधिकारों के उचित उपयोग के लिए मार्गदर्शन भी कर सकती है।

4.1.5.4. शिक्षा में बंधुत्व: भारत जैसे देश में, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि में इतनी विविधता के साथ, देश के नागरिकों के बीच भाईचारा हासिल करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भाईचारे का अर्थ है, भाईचारे की भावना, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता, जिसको उचित शिक्षा के संयोजन से ही प्राप्त किया जा सकता है।

शिक्षा के लिए प्रमुख संवैधानिक प्रावधान:

भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा है, किस भी नागरिकों को समान स्तर और अवसरों की समानता का अधिकार है। संविधान की धारा 41 में देश के समाज को दिये गये दिशा-निर्देशों के अनुसार, सभी नागरिकों को काम करने का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, जन सहायता का अधिकार का प्रावधान किया गया है, इसके अतिरिक्त संविधान की धारा 45 में देश के सभी 6 से 14 वर्ष के आयु के बच्चों यकोनि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की बात कही गई है। संविधान की धारा 46 में अनुसूचितजाति/जनजाति और पिछड़े वर्ग के सभी प्रकार के शोषण को रोकने के लिए शैक्षिक एवं आर्थिक विकास का संकल्प लिया गया है। इस प्रकार से कह सकते हैं कि देश के संविधान की धाराओं का उद्देश्य सभी वर्गों को गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्रदान करना है,जिसमें सभी पिछड़े वंचित वर्ग के लोग भी सम्मिलित है।

नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा: संविधान राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 45 के तहत निम्नलिखित प्रावधान करता है, "राज्य, इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।"

इस अनुच्छेद में होने वाली अभिव्यक्ति 'राज्य' को शामिल करने के लिए अनुच्छेद 12 में परिभाषित किया गया है।"भारत सरकार और संसद और सरकार और भारत राज्य क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण में सभी राज्यों और सभी स्थानीय या अन्य अधिकारियों के विधानमंडल।"यह संविधान के अनुच्छेद 45 में स्पष्ट रूप से निर्देशित है कि सार्वजनिक, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान केंद्र और राज्यों की संयुक्त जिम्मेदारी बन जाती है।

संविधान में यह निर्धारित किया गया था कि 10 वर्षों के भीतर, यानी 1960 तक, 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए सार्वजनिक अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए, लेकिन दुर्भाग्य से, यह निर्देश पूरा नहीं किया जा सका। 100 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जोरदार प्रयासों की आवश्यकता है। केंद्र सरकार को इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त वित्तीय प्रावधान करने की आवश्यकता है।

अल्पसंख्यकों के लिए शिक्षा: भारतीय संविधान का अनुच्छेद 30 शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के लिए कुछ सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों से संबंधित है।

यह निम्नलिखित है:

(i) सभी अल्पसंख्यक चाहे वे धर्म या भाषा के आधार पर हों, उन्हें अपनी पसंद के शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

(ii) राज्य शैक्षिक संस्थानों को सहायता देने में, किसी भी शिक्षण संस्थान के खिलाफ इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि वह किसी अल्पसंख्यक के प्रबंधन के अधीन है, चाहे वह धर्म या भाषा पर आधारित हो।

भाषा संबंधी प्रावधान: अनुच्छेद 29 (1) में कहा गया है, " भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार है।" संविधान के अनुच्छेद 350 ब के तहत भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों से संबंधित सभी मामलों की जांच के लिए भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति के लिए प्रावधान करता है।

भारतीय संविधान के भाग 17 में धारा 343-351 तक भारतीय भाषाओं संबंधी प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 343 के खंड 1 में कहा गया है कि संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय रूप होगा।

अनुच्छेद 344 में खंड (1) में कहा गया है कि राष्ट्रपति, इस संविधान केप्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात् ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर,आदेश द्वारा, एक आयोग गठित करेगा जो एक

अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्टविभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जिनकोराष्ट्रपति नियुक्त करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चितकी जाएगी।

अनुच्छेद 345 में राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं के संबंध में उल्लेख किया गया है। इसमें अनुच्छेद 346 और अनुच्छेद 347 के उपबंधों केअधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वालीभाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिंदी को उस राज्य के सभी या किन्हींशासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार करसकेगा। परंतु जब तक राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य केभीतर उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिएउसका इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

अनुच्छेद 346 में एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि कीराजभाषा के संबंध में कहा गया है कि संघ में शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने के लिए तत्समय प्राधिकृतभाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि कीराजभाषा होगी। परंतु यदि दो या अधिक राज्य यह करार करते हैं कि उन राज्यों के बीच पत्रादि कीराजभाषा हिंदी भाषा होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

अनुच्छेद 347 में किसी राज्य की जनसंख्या के किसी अनुभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध मेंविशेष उपबंध बनाया गया है। इसमें कहा गया है कि यदि इस निमित्त मांग किए जाने पर राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता हैकि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जानेवाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए तो वह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भीउस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए, जो वह विनिर्दिष्ट करे,शासकीय मान्यता दी जाए।

अनुच्छेद 349भाषा से संबंधित कुछ विधियां अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया के संबंध में कहा गया कि इस संविधानके प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि के दौरान, अनुच्छेद 348 के खंड (1) में उल्लिखित किसीप्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक यासंशोधन संसद् के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना पुनस्थापित या प्रस्तावितनहीं किया जाएगा और राष्ट्रपति किसी ऐसे विधेयक को पुनस्थापित या किसी ऐसे संशोधनको प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग कीसिफारिशों पर और उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचारकरने के पश्चात् ही देगा, अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 350 में समस्या के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक व्यक्तिकिसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को,यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदारहोगा।

अनुच्छेद 350-क में प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाओं के संबंध में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतरप्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर परमातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपतिकिसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने केलिए आवश्यक या उचित समझता है।

अनुच्छेद 350-ख में भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए विशेष अधिकारी के संबंध में कहा गया है कि (1) भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों केलिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।(2) विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाईअल्पसंख्यक-वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे औरउन विषयों के संबंध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निदिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देऔर राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधितराज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

अनुच्छेद 351में हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश देते हुए कहा गया कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा काप्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों कीअभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में औरआठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों कोआत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द-भंडार के लिएमुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धिसुनिश्चित करे।

पिछड़े एवं कमजोर वर्गों के लिए शिक्षा: अनुच्छेद 15, 17, 46 भारतीय समुदाय के नागरिकों के पिछड़े एवं कमजोर वर्गों, यानी और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के शैक्षिक हितों की रक्षा करता है। अनुच्छेद 15 में कहा गया है, "राज्य को किसी भी सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग के नागरिकों या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की उन्नति के लिए कोई विशेष प्रावधान करने से नहीं रोका जाएगा।"

संविधान के अनुच्छेद 46 के तहत, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास के लिए संघीय सरकार जिम्मेदार है। यह कहता है कि "राज्य विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों के कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों

को बढ़ावा देगा और उन्हें सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाएगा।" यह राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में से एक है।

धर्मनिरपेक्ष शिक्षा: भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। यह एक ऐसा देश है जहाँ धर्म पर आधारित आध्यात्मिकता को हमेशा एक उच्च सम्मान दिया गया है। संविधान के तहत, अल्पसंख्यकों, चाहे वे धर्म या भाषा पर आधारित हों, उन्हें अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थान स्थापित करने का पूरा अधिकार दिया जाता है। संवैधानिक प्रावधानों का हवाला देते हुए कि किसी भी बंदोबस्ती या ट्रस्ट के तहत संस्थानों में दिए गए धार्मिक निर्देशों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, भले ही ऐसे संस्थानों को राज्य की मदद की जाए।

संविधान का अनुच्छेद 25 (1) सभी नागरिकों को विवेक की स्वतंत्रता और धर्म के प्रचार, अभ्यास और प्रचार के अधिकार की गारंटी देता है।

अनुच्छेद 28 धार्मिक शिक्षा में अनुपस्थित होने से स्वतंत्रता

- राज्य निधि से पूर्णत: पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
- राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाओं में लोगो की सहमती से धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।
- राज्य निधि से सहायता प्राप्त संस्थाओं में लोगो की सहमती से धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। जैसे – धार्मिक शिक्षण संस्थाओं में (मदरसों , संस्कृत विद्यालयों) आदि। लेकिन सरकारी निर्देशानुसार उन्हें सरकार द्वारा निर्देशित पाठयक्रम पढ़ना भी अनिवार्य होगा।
- न्यास (Trust) द्वारा स्थापित संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।

अनुच्छेद 30 में कहा गया है, "राज्य केवल धर्म, जाति, भाषा या उनमें से किसी एक के आधार पर, राज्य द्वारा अनुरक्षित शैक्षिक संस्थान को सहायता देना या राज्य निधियों से सहायता प्रदान नहीं करेगा।"

शैक्षणिक संस्थानों में अवसर की समानता: अनुच्छेद 29 (1) में कहा गया है, "किसी भी नागरिक को केवल धर्म, जाति, जाति, भाषा या उनमें से किसी के आधार पर राज्य द्वारा अनुरक्षित या राज्य कोष से सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश करने से वंचित नहीं किया जाएगा।"

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकार ने भी न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के चौगुना आदर्श को अपनाया है। हमारे संविधान ने निर्धारित किया है कि कानून की नजर में, सभी को समान दर्जा होना चाहिए, किसी को भी न्याय से वंचित नहीं करना चाहिए, सभी को विचार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

समानता का अधिकार स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कानून की नजर में किसी भी स्थान, जाति, वर्ग या पंथ के आधार पर कोई भेद नहीं किया जा सकता है। सभी को अवसरों की समानता का अधिकार भी प्रदान किया गया है। अवसर की समानता व्यर्थ है, जब तक कि किसी की शिक्षा के लिए समान अवसर नहीं हैं।

शिक्षा से संबंधित प्रसिद्ध कोठारी आयोग (1964-66) ने सिफारिश की कि केंद्र सरकार को अंतर-राज्य मतभेदों को कम करने और समुदाय के कमजोर वर्ग की उन्नति के लिए, शैक्षिक अवसरों के समानीकरण के लिए विशेष संदर्भ के साथ शिक्षा में जिम्मेदारी का काम करना चाहिए।

मातृभाषा संबंधी प्रावधान: हमारा देश भाषाई रूप से विविध है। स्वतंत्रता के बाद, मातृभाषा को शिक्षा और अध्ययन के विषयों के माध्यम के रूप में विशेष बल मिला है। भारत के संविधान मेंयह निर्धारित किया गया है कि किसी नागरिक को अपनी भाषा का अध्ययन मौलिक अधिकार है।

अनुच्छेद 26 (1) में कहा गया है, " भारत के क्षेत्र में रहने वाले या वहाँ के किसी भी हिस्से के नागरिकों के किसी भी वर्ग, जहाँ की अपनी एक अलग भाषा, लिपि या संस्कृति है, को उसी को मनाने का अधिकार होगा।"

अनुच्छेद 350 (क) में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्ग के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।

माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952-53 ने सिफारिश की कि भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा को आम तौर पर पूरे माध्यमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। कोठोरी आयोग, 1964-66 ने भी कहा है कि स्कूल स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है। कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर भी मातृभाषा को शिक्षा माध्यम होना चाहिए।

हिन्दी भाषा के विकास के लिए निदेश : संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए और उसका विकास करे। वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। हिंदी की प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करे। जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्दभंडार के लिए मुख्यत:संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि को सुनिश्चित करे।

इस प्रकार अनुच्छेद 351 के अनुसार हिन्दी के विकास का महत्त्वपूर्ण दायित्व केन्द्र सरकार को दिया गया है। केन्द्र हिन्दी भाषा को इस रूप में विकसित करे कि उसमें मुख्यत: संस्कृत के तथा गौण रूप में अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द आएँ, वह भारत की मिश्रित संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत करे तथा उसका प्रयोग पूरे राष्ट्र में किया जा सके।

हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है जिसे निम्नलिखित शब्दों में संविधान द्वारा निर्धारित किया गया है: "हिंदी भाषा के प्रसार को बढ़ावा देने, इसे विकसित करने के लिए संघ का कर्तव्य होगा ताकि वह भारत की समग्र संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में काम कर सके।" व्यवहार में, हिंदी पहले से ही बड़े पैमाने पर है, देश के लिए एक लिंक भाषा के रूप में कार्य करे। शैक्षिक प्रणाली को छात्र और शिक्षक के आंदोलन को सुविधाजनक बनाने और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के लिए इस प्रक्रिया के त्वरण में योगदान करना चाहिए।

उच्च शिक्षा और शोध: संसद के पास 63, 64, 65, और 66 सूचियों की प्रविष्टियों में उल्लिखित संस्थानों और केंद्रीय एजेंसियों के संबंध में कानून बनाने का विशेष अधिकार है। शिक्षा में भारत सरकार को अधिकार देने वाली प्रविष्टियाँ नीचे उल्लिखित हैं:

संघ सूची की प्रविष्टि 63: इस संविधान के प्रारंभ में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम और दिल्ली विश्वविद्यालय और संसद द्वारा किसी अन्य संस्था को कानून द्वारा राष्ट्रीय महत्व का संस्थान घोषित किए जाने के बाद से जाना जाता है।

संघ सूची की प्रविष्टि 66: उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के लिए संस्थान में मानकों का समन्वय और निर्धारण।

महिलाओं की शिक्षा: आधुनिक भारतीय शिक्षा की अनूठी विशेषताओं में से एक महिला शिक्षा की उन्नति है। लड़कियों की शिक्षा लड़कों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है।

संविधान विभिन्न अनुच्छेदों के तहत निम्नलिखित प्रावधान करता है:

अनुच्छेद 15 (1) में यह प्रावधान है कि राज्य केवल लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगा।

अनुच्छेद 15 (3) में लिखा है: "इस अनुच्छेद में राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए कोई विशेष प्रावधान बनाने से नहीं रोकेगा।"

शिक्षा पर प्रसिद्ध राष्ट्रीय नीति देश में महिलाओं की स्थिति और शिक्षा के बारे में चिंतित थी। यह परिकल्पना करती है कि शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में एक बुनियादी बदलाव को प्राप्त करने के लिए एक रणनीति के रूप में किया जाएगा। इसने कहा कि शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली को इस दिशा में सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए।

नीति में कहा गया है, "शिक्षा का इस्तेमाल महिलाओं की स्थिति में बुनियादी बदलाव के एजेंट के रूप में किया जाएगा। अतीत के कुरुतियों को बेअसर करने के लिए महिलाओं के पक्ष में एक अच्छी तरह से कल्पना की जाएगी।"

समाज और देश की उन्नति हेतु महिलाओं का शिक्षित होना आवश्यक है। जब तक महिलाएं शिक्षित शिक्षित और सशक्त नहीं होगीं तब तक समाज और परिवार की उन्नति नहीं होगी। महिलाओं के शिक्षित होने से आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक तीनों क्षेत्रों में उन्नति का मार्ग खुल गया है। राजनैतिक दृष्टि से भी महिलाओं का पढ़ा लिखा होना बहुत ही आवश्यक है।

केंद्र शासित प्रदेशों में शिक्षा: अनुच्छेद 239 में कहा गया है कि संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा प्रत्येक संघ राज्यक्षेत्र का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा किया जाएगा। वह अपने द्वारा ऐसे पदाभिधान सहितनियुक्त किए गए प्रशासक के माध्यम से उस मात्रा तक कार्य करेगा जितनी वह ठीक समझता है। जैसा कि हम जानते हैं कि केंद्र शासित प्रदेशों में राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रशासक के माध्यम से वहाँ के दायित्वों को संपन्न किया जाता है।

विदेशी देशों के साथ शैक्षिक और सांस्कृतिक संबंध: संविधान की सातवीं अनुसूची के संघ सूची की प्रविष्टि 13 में कहा गया है कि अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संघों और अन्य निकायों में भागीदारी और वहां किए गए निर्णयों को लागू करना। अतः स्पष्ट है कि भारत का दूसरे देशों के साथ शैक्षिक, सांस्कृतिक संबंध भारत सरकार के निर्णय के ऊपर निर्भर करता है। भारत सरकार निर्णय कर सकती है कि उसे किस देश के साथ सहमति कर शिक्षा में विस्तार करना है।

4.1.6. शिक्षाकाअधिकारअधिनियम, 2009:

अगस्त 2009 में संसद द्वारा बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार का ऐतिहासिक अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम को बच्चों के परिपेक्ष्य में सार्थक क्रियान्वायन के रूप में देखने की आवश्यकता है। यह एक वैधानिक ढाँचा प्रस्तुत करता है जो 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए समानता और भेदभाव रहित शिक्षा के लिए निर्देशित होता है। यह बच्चे कोनिःशुल्क एवं अनिवार्य नामांकन और प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने का अधिकार प्रदान करता है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि यह बच्चों को चिंता से मुक्त, बिना किसी डर यातनाव के शिक्षा का अधिकार प्रदान करता है। इस अधिनियम में कई प्रकार के प्रावधान हैं जैसे किसी भी प्रकार के शारीरिक दंड, कक्षा में फेल न करना। यह सुनिश्चित करना है कितना व और चिन्ता से मुक्त व शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का क्रियान्वयन हो। इसमें मूल्यांकन प्रभावी एवं कक्षा अधिगम गतिविधि को पुनर्निरीक्षण करने की आवश्यकता है जिससे बच्चों में सीखने के प्रति गहरी रूचि जागृत हो सके। शिक्षा के अधिकार अधिनियम के द्वारा सभी बच्चों का विद्यालयों में पूर्णकालिक नामांकन आवश्यक है। उनके नामांकन को बढ़ाने, विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति को घटाने, उन्हें अन्य वर्गों के बच्चों के समकक्ष लाने के लिए अनेक योजनाएँ, कार्यक्रम व नीतियाँ बनाई गई। शिक्षकों की भूमिका इस संदर्भ में अतिमहत्वपूर्ण हो जाती है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम शिक्षकों की जिम्मेदारी को भी रेखांकित करता है। शिक्षक की जिम्मेदारी होगी कि वह सुनिश्चित करे कि बच्चे सीख रहे हैं तथा उनके सीखने का वातावरण तनाव और चिन्ता से मुक्त हो और उनके इस अधिकार का हनन न हो।

4.1.7. शिक्षाकाअधिकारअधिनियम 2009 में प्रावधान :

- बच्चों को प्रारंभिक स्तर तककीनिःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उनके पास-पड़ोस के विद्यालय से मिले।
- 'अनिवार्य शिक्षा' का तात्पर्य है कि सरकार की यह जिम्मेदारी होगी कि वह निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध करवाए तथा यह सुनिश्चित करे कि 6 से 14 आयु वर्ग के प्रत्येक बच्चों का अनिवार्य नामांकन, उपस्थिति और प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण हो। 'नि:शुल्क' का अर्थ है कि कोई भी बच्चा किसी भी प्रकार के शुल्क या देय या खर्च का उत्तरदायी न हो जो उसके प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण करने और पूरी करने में बाधक हो।
- कोईभी बच्चा विद्यालय से बाहर न रहे, उसकी उम्र के अनुसार विद्यालय में नामांकन सुनिश्चित करवाया जाए।
- उत्तरदायी सरकारों, स्थानीय प्राधिकारों और माता-पिता के नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों को और केंद्र तथा राज्य सरकारों के बीच आर्थिक भागीदारी की जिम्मेदारी को वहन करने को निर्देशित करता है।
- यह अधिनियम छात्र और अध्यापक का अनपुपात, भवन एवं आवश्यक सुविधाएं, विद्यालय के कार्य दिवस, अध्यापक के कार्य करने के घंटे इत्यादि के प्रतिमान और स्तर को भी दर्शाता है।
- हर विद्यालय में निर्देशित विद्यार्थी –अध्यापक अनुपात को बनाए रखा जाए। यह अध्यापकों को दस वर्षीय जनगणना, चुनाव स्थानीय प्राधिकार, निकाय, राज्यों के विधान सभा,लोकसभा तथा आप सहायता जैसे कार्यों को छोड़कर अशैक्षिक कार्य में लगाए जाने से रोकता है।
- समुचित रूप से प्रशिक्षित शैक्षिक योग्यता और आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों की ही नियुक्ति का प्रावधान है।
- अधिनियम में (i) शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना (ii) नामांकन हेतु चयन प्रक्रिया(iii) अतिरिक्त (capitation) शुल्क (iv) अध्यापकों द्वारा निजी शिक्षण(v) बिना मान्यता प्राप्त विद्यालयों का चलाना आदि के लिए भी स्पष्ट निर्देश है।

4.1.8. सारांश

इस इकाई के अंतर्गत हमने संविधान क्या है? भारत के संविधान के बारे में अध्ययन किया है। इसके अंतर्गत विभिन्न शैक्षिक प्रावधानों का भी विश्लेषण और विवेचन किया गया है। शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 की भी चर्चा इस इकाई के अंतर्गत की गई है।

अभ्यास प्रश्न:

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. संविधान का अर्थ समझाइए।
2. अवसर की समानता से क्या तात्पर्य है?
3. शिक्षा का अधिकार अधिनियम से क्या समझते हैं?
4. केन्द्रशासित प्रदेशों में शिक्षा के संबंध में क्या कहा गया है?
5. हिंदी भाषा के विकास के लिए संविधान में क्या प्रावधान किया गया है?

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 में किए गए प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।
2. संविधान की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. भारत के संविधान की प्रस्तावना की व्याख्या कीजिए।
4. शैक्षणिक संस्थानों में अवसर की समानता को किस प्रकार सुनिश्चित किया जा सकता है?
5. मातृ भाषा के विकास हेतु संविधान में किए गए प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:

1. भारत के संविधान की प्रस्तावना में प्रयुक्त शब्द न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की शैक्षिक व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।
2. शिक्षा में अवसर की समानता,स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की विवेचना कीजिए।
3. निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा से क्या तात्पर्य है? शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 की व्याख्या कीजिए।
4. संविधान में उल्लिखित शैक्षिक प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
5. भाषा के संबंध में संविधान में वर्णित प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।

4.1.9 शब्दावली:

भारत का संविधान: भारत का संविधान, भारत का सर्वोच्च विधान है जो संविधानसभा द्वारा 26 नवम्बर 1949 को पारित हुआ तथा 26 जनवरी 1950 से प्रभावी हुआ। यह दिन (26 नवम्बर) भारत केसंविधान दिवस के रूप में घोषित किया गया है जबकि 26 जनवरी का दिन भारत में गणतन्त्र दिवस के रूप में मनाया जाता है।

शिक्षा में न्याय: शिक्षा में न्याय का निहितार्थ यह है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को शिक्षा के माध्यम से उत्थान, विकास और प्रगति का समान अवसर होना चाहिए। इसके अलावा, शिक्षा के क्षेत्र में न्याय प्रदान करने के लिए, सीखने की संस्थाओं को सभी नागरिकों के लिए खुला रखा जाना चाहिए और किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

शिक्षा में समानता: प्रस्तावना के इस पहलू को शिक्षा आयोग द्वारा बहुत स्पष्ट रूप से निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है "शिक्षा के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है, अवसर को समानता को सुनिश्चित करना है, जो पिछड़े या वंचित वर्गों और व्यक्तियों को उनकी हालत में सुधार के लिए शिक्षा एक प्रभावशाली घटक के रूप में उपयोग करने में सक्षम बनाती है।

शिक्षा में स्वतंत्रता: शिक्षा एक ऐसा साधन है जिसका लोगों को उनकी अभिव्यक्ति के उचित उपयोग के लिए मार्गदर्शन करने के लिए किया जा सकता है। साथ ही साथ शिक्षा नागरिकों को उनके अन्य मौलिक अधिकारों के उचित उपयोग के लिए मार्गदर्शन भी कर सकती है।

शिक्षा में बंधुत्व: भारत जैसे देश में, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि में इतनी विविधता के साथ, देश के नागरिकों के बीच भाईचारा हासिल करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भाईचारे का अर्थ है, भाईचारे की भावना, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता, जिसको उचित शिक्षा के संयोजन से ही प्राप्त किया जा सकता है।

अवसर की समानता:अवसर की समानता से अभिप्राय ऐसी परिस्थितियों से जिनमे सभी व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो सके।

धर्म निरपेक्ष शिक्षा:भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। प्रत्येक को अपने धर्म के पालन करने कीस्वतंत्रता है। लेकिन यह स्वतंत्रता दूसरों के धर्मपालन में बाधक नहीं होना चाहिए। सभीधर्मावलम्बी एक साथ प्रेम से रहे। इस प्रकार की शिक्षा को धर्म निरपेक्ष शिक्षा कहा जा सकता है।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा: निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2009 भारतीय संसद द्वारा सन् 2009 में पारित शिक्षासम्बन्धी एक विधेयक है। संविधान के अनुच्छेद 45 में 6से 14 बर्ष तक के बच्चों के लिये अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है तथा 86 वें संशोधन द्वारा 21 (क) में प्राथमिक शिक्षा को सब नागरिको का मूलाधिकार बना दिया गया है।

4.1.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

- भारत का संविधान. Retrievedfrom- http://www.legislative.gov.in/sites/default/files/coi-indexhindi.pdf
- Bakshi, P.M. (2018). Constitution of India. Delhi: Universal Law Publishing.
- Khan, Z. (2018).Major Constitutional Provisions on Education in India. Retrieved from: http://www.yourarticlelibrary.com/constitution/12-major-constitutional-provisions-on-education-in-india/45230
- कश्यप, सुभाष () हमारा संविधान. दिल्ली: नेशनल बुक ट्रष्ट.

- बसु, दुर्गादास (2013) भारत का संविधान: एक परिचय. नई दिल्ली: लेक्सिस नेक्सिस.
- भारत सरकार (2009). शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009. नई दिल्ली: मानव संसाधन विकास मंत्रालय Retrieved from: https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/rte.pdf

इकाई–2 शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति : प्राथमिक, उच्च, तकनीकी एवं कम्प्यूटर शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

4.2.0. उद्देश्य

4.2.1. प्रस्तावना

4.2.2. शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति

4.2.2.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968

4.2.2.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति मसौदा-1979

4.2.2.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986

4.2.2.4 कार्यान्वयन कार्यक्रम-1986

4.2.2.5 संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992

4.2.3. प्राथमिक शिक्षा

4.2.3.1 अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा

4.2.3.2 प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य

4.2.3.3 प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम

4.2.3.4 प्राथमिक शिक्षा का सर्व व्यापीकरण

4.2.3.5 अपव्यय एवं अवरोधन

4.2.3.6 समाजोपयोगी उत्पादक कार्य

4.2.3.7 नियंत्रण एवं प्रशासन

4.2.3.8 परीक्षा एवं मूल्यांकन

4.2.3.9 ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड

4.2.3.10 सबके के लिए शिक्षा

4.2.3.11 ग्राम शिक्षा समिति

4.2.3.12 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 में प्राथमिक शिक्षा

4.2.3.13 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में प्राथमिक शिक्षा

4.2.3.14 कार्यन्वयन कार्यक्रम 1986

4.2.3.15 परिमार्जित राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1992

4.2.3.16 कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992

4.2.4.उच्च शिक्षा

4.2.4.1 विश्वविद्यालय के प्रकार

4.2.4.2 उच्च शिक्षा के उद्देश्य

4.2.4.3 नियंत्रण तथा प्रशासन

4.2.4.4 उच्च शिक्षा में मूल्यांकन

4.2.4.5 स्वायत्तता

4.2.4.6 अन्तर्विषयी अधिगमन

4.2.4.7 कार्य अनुभव

4.2.4.8 समन्वयात्मक संस्थाएं

4.2.4.9 शैक्षिक सुधार

4.2.4.10 राष्ट्रीय शिक्षा नीति -1968 में उच्च शिक्षा

4.2.4.11 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में उच्च शिक्षा

4.2.4.12 कार्यान्वयन कार्यक्रम -1986

4.2.4.13 संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992) तथा कार्यान्वयन कार्यक्रम में उच्च शिक्षा

4.2.5. तकनीकी तथा कम्प्यूटर शिक्षा

4.2.5.1 राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) में तकनीकी शिक्षा

4.2.5.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में तकनीकी शिक्षा

4.2.5.3 कार्यान्वयन कार्यक्रम(1986)

4.2.5.4 कार्यान्वयन कार्यक्रम – 1992

4.2.6. सारांश

4.2.7. बोध प्रश्न

4.2.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.2.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको –

- भारत में कौन-कौन सी राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी है उनकी जानकारी मिल जायेगी।
- प्राथमिक शिक्षा की स्थिति एवं योजना की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।
- उच्च शिक्षा की स्थिति एवं विभिन्न योजनाओं की जानकारी मिल जायेगी।
- तकनीकी शिक्षा एवं कंप्यूटर शिक्षा में क्या प्रयास किये जा रहे है एवं उसकी वर्तमान स्थिति क्या है उसे समझ पायेगें।

4.2.1. प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा को देश की प्रगति एवं विकास का मुख्य साधन माना गया इस कारण भारत में शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। सन् 1950 में लागू संविधान में शिक्षा के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर शेष सभी विषय राज्य के अधीन कर दिये गये इस कारण शिक्षा की कोई राष्ट्रव्यापी नीति तैयार नहीं हो पायी। तीसरी पंच वर्षीय योजना के अन्त में यह महसूस किया गया कि शिक्षा का पुनर्निरीक्षण किया जा जाए। सन 1964 में भारत सरकार ने कोठारी आयोग का गठन किया जिसने शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप तथा सभी स्तरों शिक्षा के विकास के लिए सुझाव दिए। कोठारी आयोग ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि भारत सरकार को राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाना चाहिए। आयोग की सिफारिशों के आधार पर सन् 1968 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की इसमें 17 आधारभूत सिद्धान्तों को स्थापित किया गया आरे इन सिद्धान्तों पर शिक्षा का विकास करने की योजना बनाई गई और शिक्षा पर व्यय राष्ट्रीय आय का 6 % करने का प्रस्ताव किया गया।

सन 1972 में सरकार बदलने पर नई सरकार ने 1979 ने नई शिक्षा नीति का मसौदा तैयार किया। परन्तु सन 1980 में सरकार बदलने पर इस मसौदा को संसद में स्वीकृति नहीं मिल सकी।

1968 में घोषित शिक्षा नीति के सतरह वर्षों को पश्चात बदली परिस्थिति एवं आवश्यकताओं के अनुरूप सन् 1985 में एक दस्तावेज "शिक्षा की चुनौती : नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य" जारी किया। दस्तावेज ने नई शिक्षा नीति बनाने के लिए पर्याप्त आधार प्रदान किया। सन् 1986 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 जारी की। इस नीति को सुधार रूप से चलाने के लिए एक कार्यान्वयन 1992 कार्यक्रम भी तैयार किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति बारह खण्डों में बटी थी और इसमें कुल 157 बिन्दु पर चर्चा की गई थी। इस शिक्षा नीति में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर शिक्षा का स्वरूप कैसा हो इस पर विस्तार से चर्चा की गई है, इसमें मुख्य मुद्दे है प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, तकनीकी एवं कम्प्यूटर शिक्षा आदि इस इकाई में हम इन्ही का अध्ययन करेंगे।

4.2.2. शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति

स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा के विकास के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का समाधान खोजने के लिए कई समितियों एवं आयोगो का गठन किया किन्तु संविधान में शिक्षा को राज्य सरकार की जिम्मेदारी समझा गया इस कारण से शिक्षा का कोई राष्ट्रीय स्वरूप विकसित नहीं हुआ। शिक्षा का राष्ट्रीय स्वरूप विकसित करने के लिए भारत सरकार ने 1964 में कोठारी आयोग का गठन किया। कोठारी आयोग ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाने की सिफारिश की आयोग के सुझाव के अनुरूप सन् 1968 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की इसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 कहा जाता है।

4.2.2.1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 – स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त राष्ट्रीय शिक्षा के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम सन् 1968 में भारत सराकर के द्वारा शिक्षा की राष्ट्रीय नीति की घोषणा करना था। कोठारी आयोग के सुझाव के अनुरूप भारत सरकार ने इस नीति की घोषणा की। इस नीति ने शिक्षा

के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन करने तथा सभी स्तरों की शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने पर बल दिया। इस शिक्षा नीति ने 17 आधारभूत सिद्धान्तों को स्थापित किया तथा कहा कि भारत सरकार इन सिद्धान्तों के अनुरूप देश में शिक्षा का विकास करेगी।

- 14 वर्ष तक के बच्चों को संविधान की धारा 45 के अनुरूप नि:शुल्क शिक्षा देना चाहिए।
- अध्यापकों का वेतन भत्ते एवं सेवा शर्ते उनकी योग्यता एवं उत्तरदायित्वों को देखते हुए पर्याप्त संतोषजनक होने चाहिए। शिक्षको सेवारत परीक्षण देना चाहिए।
- त्रिभाषा सूत्र को लागू करने को कहा।
- शिक्षा प्राप्त करने के अवसर सभी को उपलब्ध कराना।
- प्रतिभा खोज करना छोटी उम्र के बच्चो में कार्य-अनुभव एवं राष्ट्रीय सेवा को शिक्षा का अभिन्न अंग बनना।
- विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- कृषि एवं उद्योगों की शिक्षा पर विशेष बल देना चाहिए।
- पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार करना चाहिए एवं उनका मूल्य कम रखना चाहिए।
- परीक्षा प्रणाली को वैद्य एवं विश्वसनीय बनाना।
- माध्यमिक शिक्षा का तेजी से विकास करना जिससे वह वंचित वर्ग तक पहुँच सके।
- विश्वविद्यालय शिक्षा-विश्वविद्यालय में छात्रों की संख्या विश्वविद्याय में उपलब्ध सुविधाओं के अनुपात में होनी चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर अंशकालीन तथा पत्राचार पाठ्यक्रमों का बड़े पैमाने पर विकास किया जाये।
- खेल कूद की व्यवस्था सभी छात्रों के लिए की जायें।
- अल्पसंख्यकों की शिक्षा को बढ़ाना।
- शैक्षिक ढाँचा 10+2+3 को सम्पूर्ण राष्ट्र में लागू करना।

4.2.2.2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति मसौदा – 1979

सन 1977 में केन्द्र में सत्तारूढ़ जनता पार्टी की सरकार का विचार था कि राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है तथा इस की कमियों को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है इस कारण इस सरकान ने 1979 में नई शिक्षा नीति का मसौदा तैयार किया। इस मसौदे में 23 शीर्षकों के अन्तर्गत शिक्षा की राष्ट्रीय नीति को लिपिबद्ध किया गया था। परन्तु 1980 में जनता सरकार गिर जाने से इस मसौदे को संसद की स्वीकृति नहीं मिल सकी।

4.2.2.3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं कार्यान्वयन कार्यक्रम -1986

सन् 1986 में राजीव गांधी सरकार द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। यह बारह खण्डों में विभक्त थी और 157 बिन्दुओं के अन्तर्गत इसे लिपिबद्ध किया गया। इस नीति में सम्मलित किये गये संकल्प मुख्यरूप से निम्नलिखित है :

- 10+2+3 प्रणाली को अपनाना
- शैक्षिक अवसरो की एक समान उपलब्धता सुनिश्चित करना
- विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक पुर्नगठन करना
- तकनीकी एवं प्रबंध शिक्षा में सुधार करना।
- अध्यापकों का उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना।
- छात्र सेवाओं में सुधार
- पाठ्यक्रमों का नवीनीकरण
- अध्यापक शिक्षा में सुधार
- राष्ट्रीय सेवा प्रारंभ करना
- शैक्षिक निवेश को बढ़ाना
- नवोदय विद्यालय खोलना
- उपाधि को नौकरी से अलग करना
- स्वायत्तता को बढ़ाना
- कम्प्यूटर के ज्ञान का विस्तार करना
- शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाना

4.2.2.4. कार्यान्वयन कार्यक्रम-1986 राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने के लिए मानव संसाधन मंत्रालय ने एक कार्यान्वयन कार्यक्रम तैयार किया। इस कार्यक्रम में कुल 24 अध्यायों के अन्तर्गत शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में किए जाने वाले क्रियाकलापों को बांटा गया था। ये 24 क्षेत्र है – पूर्वबाल्यकाल परिचर्या व शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा व आपरेशन ब्लेक बोर्ड, माध्यमिक शिक्षा व नवोदय विद्यालय, शिक्षका व्यवसायीकरण, उच्च शिक्षा, मुक्त विश्व विद्यालय व दूर शिक्षा, ग्रामीण विश्वविद्यालय एवं संस्थान तकनीकी एवं प्रबन्ध शिक्षा प्रणाली को कार्यकारी बनाना, उपाधि को रोजगार से अलग व मानव शक्ति नियोजन, अनुसन्धान व विकास, नारी समानता के लिए शिक्षा, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़ा वर्ग की शिक्षा अल्पसंख्यको की शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्कूल शिक्षा की विषय वस्तु व प्रक्रिया, मूल्यांकन प्रक्रिया व परीक्षा सुधार, युवा व खेल,

भाषा विकास, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, संचार साधन व शैक्षिक तकनीकी अध्यापक एवं उनका प्रशिक्षण तथा शिक्षा का प्रबन्ध।

4.2.2.5. संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 – सन् 982 में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया था कि प्रत्येक 5 वर्ष के उपरान्त इस नीति की समीक्षा की जायेगी। सन् 1992 में भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा की गई इसके बाद संशोधित नीति प्रस्ताव तैयार करके संसद के दोनों सदनों में रखा गया इसलिए इसे संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 भी कहते है। इसे कार्यान्वियम कार्यक्रम 1992 के नाम से भी जानते है। इसके कुल 23 खंड थे। इन सभी खण्डों के अन्तर्गत सम्बन्धित क्षेत्रों में विकास की अनेक कार्य नीतियाँ, शैक्षिक कार्यक्रम एवं योजनाएँ प्रस्तुत की गई।

वर्ष 1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की घोषणा करते हुए इसमें मामूली सुधार किये गये परन्तु अर्जित उपलब्धियों एवं प्राप्त अनुभवों को ध्यान में रखते हुए नये ढंग से पुन: कार्यान्वियन कार्यक्रम 1992 को तैयार किया गया। इसमें सम्मिलित किये विभिन्न विषयों के अन्तर्गत किये जाने वाले क्रियाकलापों के लिए एक स्पष्ट रणनीति को प्रस्तुत किया गया। यह कार्यान्वियन कार्यक्रम राष्ट्रीय संकल्पों के अनुरूप व्यवस्था करने में सहायक सिद्ध होगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

4.2.3. प्राथमिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा कक्षा 1 से 8 तक की औपचारिक शिक्षा को कहते है। शिक्षा आयोग (1964-66) ने कक्षा 1 से 5 तक की शिक्षा को निम्न प्राथमिक एवं 6 से 8 तक शिक्षा को उच्च प्राथमिक शिक्षा कहा है। यह औपचारिक विधिवत शैक्षिक ढांचे का प्रथम स्तर है। क्योंकि इसके पहले की शिक्षा जिसे हम पूर्व प्राथमिक शिक्षा कहते है औपाचारिक शिक्षा नहीं है। तथा अधिकांश भारतीय छात्र पूर्ण प्राथमिक शिक्षा से वंचित है। यहाँ हम राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति समझने का प्रयास करेंगे।

4.2.3.1. अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा – स्वतंत्र भारत के संविधान की धारा 45 में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य व नि: शुल्क बनाने का संकल्प किया। इसमें कहा गया कि "संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य अपने क्षेत्र के 14 वर्ष तक के सभी बालकों नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा" परन्तु यह प्रयास पूरा नहीं हो पाया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में भी प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण को विशेष प्राथमिकता दी गई थी , परन्तु 6-14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक/बालिकाओं को स्कूल भेजने तथा अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका। इस स्थिति पर विचार करते हुए सन् 2002 में 46 वें संविधान संगोधन के द्वारा अनुच्छेद 45 को शैशवपूर्ण देखभाल व शिक्षा तक सीमित करते हुए अनुच्छेद 21 (क) को जोड़कर प्राथमिक शिक्षा को एक मूल अधिकार बना दिया गया। इसके साथ-साथ अनुच्छेद 51 क (ट) जोड़कर 6 से 14 वर्ष की आयु के पाल्यों के सभी माता-पिता व संरक्षको के लिए पाल्यों को 6 से 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा की व्यवस्था करने का दायित्व को नागरिकों का मूल कर्तव्य घोषित कर दिया गया। तथा सन् 2009 में

भारतीय संसद ने "अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009" को पारित करके इसे कानूनी दर्जा दे दिया।

4.2.3.2. प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य – प्राथमिक शिक्षा बालाकों को अपने वातावरण में अनुकूलित करने की क्षमता प्रदान करती है। आपस में सहयोग एवं सद्भावना विकसित करती है। बालकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास करती है। उन्हें आत्मनिर्भर बनाती है। बच्चों में नागरिकता के गुणों का विकास करती हैं तथा उनमें नैतिकता की भावना उत्पन्न करती है।

कोठारी आयोग ने अपने प्रतिवेदन में प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्यों के संबंध में लिखा है कि आधुनिक प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य बालक को भावी जीवन की परिस्थितियों का सामना करने में समर्थ बनाने के लिए शारीरिक तथा मानसिक प्रशिक्षण देकर उसको इस प्रकार से विकास करना है कि वह वास्तव में एक उपयोगी नागरिक बन सकें।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) के द्वारा सन् 1975 में तैयार किये गये दस्तावेज में प्राथमिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित निर्धारित किये गये –

- वार्तालाप के लिए मातृभाषा का उपयोग किया जाये।
- व्यवहारिक समस्याओं के समाधान के लिए जोड़ना, घटाना, गुणा व भाग संक्रियाओं की योग्यता प्रदान करना।
- खोज, विज्ञान एवं तकनीकी के महत्व को समझना
- राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति आदर भाव रखना।
- भारत की मिली जुली संस्कृति से परिचय कराना, छुआछूत, जातिवाद, साम्प्रदायिकता का विरोध करना।
- श्रम के प्रति अच्छा दृष्टिकोण रखना।
- सफाई एवं स्वस्थ जीवन की आदतें विकसित करना।
- अच्छाई तथा सौन्दर्य की अभिरूचि बढ़ाना।
- सहयोग की भावना विकसित करना।
- चरित्र निर्माण करना।
- सृजनात्मकता का विकास करना।
- स्वअध्ययन की आदत विकसित करना।

4.2.3.3. प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम – प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का अत्यन्त महत्व है। अनेक समितियों व कोठारी आयोग ने प्राथमिक स्तर का पाठ्यक्रम तैयार किया है। सन 2000 में NCERT के द्वारा तैयार पाठ्यक्रम में प्राथमिक स्तर पर निम्न विषयों को सम्मलित किया गया है, भाषा,पर्यावरण अध्ययन, गणित, कार्यानुभव कला तथा स्वास्थ्य व शारीरिक शिक्षा विज्ञान तथा

उच्च प्राथमिक स्तर पर तीन भाषा, विज्ञान, गणित, व प्रौद्यागिकी, सामाजिक विज्ञान, कार्य शिक्षा, कला शिक्षा, तथा स्वास्थ्य व शारीरिक शिक्षा को सम्मलित किया गया।

4.2.3.4. प्राथमिक शिक्षा का सर्व व्यापीकरण – प्राथमिक शिक्षा का विकास इस ढंग से किया जायेगा कि प्रत्येक बालक को प्राथमिक शिक्षा सरल तरीके से मिल जायेगी तथा वह उसका वास्तव में लाभ उठा सके। प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के लिए तीन कदम उठाये गये।

- सुविधाओं का सर्व व्यापीकरण।
- नामाकंन का सर्व व्यापीकरण ।
- टिके रहने का सर्व व्यापीकरकण।
- **सुविधाओं का सर्व व्यापीकरण**-सुविधाओं के सर्व व्यापीकरण के अन्तर्गत विद्यालयों को बच्चों के घर के पास खोले जाये, प्रत्येक गाव में प्राथमिक स्कूल खोलने को कहा गया एवं स्कूल की दूरी 1 कि.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- **नामाकंन का सर्व व्यापीकरण**- नामांकन के सर्व व्यापीकरण के अन्तर्गत 6 से 14 वर्ष तक के सभी बालकों को प्राथमिक स्कूलों में प्रवेश दिलाने के लिए विशेष अभियान चलाये जा रहे है उसमें से एक है ‘स्कूल चले हम’ है।
- **टिके रहने का सर्व व्यापीकरकण**-टिके रहने के लिए बच्चों को मुफ्त किताबे,स्कूल ड्रेस,साईकिल एवं मध्यान भोजन दिया जा रहा है जिससे उनका स्कूल आना निरन्तर जारी रहे।

4.2.3.5. अपव्यय एवं अवरोधन – अपव्यय एवं अवरोधन प्राथमिक शिक्षा की एक पुरानी अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है इसके लिए उत्तरदायी विभिन्न शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रशासनिक तथा स्वास्थ्य संबंधी करणों का समाधान करके इस समस्या को हल किया गया। इसी समस्या का एक हल था,कक्षा 10 वी तक किसी छात्र को अनुत्तीर्ण नहीं करना क्योंकि फेल होने पर कई छात्र पढ़ना छोड़ देते है।

4.2.3.6. समाजोपयोगी उत्पादक कार्य – शिक्षा को समाज से जोड़ने के लिए महात्मा गांधी द्वारा सुझाई गई शिल्प केन्द्रित शिक्षा तथा कोठारी आयोग द्वारा संस्तुत कार्यानुभव को विस्तार रूप देकर समाजोपयोगी उत्पादक कार्य पाठ्यक्रम में जोड़े गये।

4.2.3.7. नियंत्रण एवं प्रशासन – प्राथमिक शिक्षा का नियंत्रण एवं प्रशासन राज्यों के शिक्षा विभाग के अधीन है। जिला स्तर पर जिला बेसिक अधिकारी प्राथमिक शिक्षा पर नियंत्रण रखता है।

4.2.3.8. परीक्षा एवं मूल्यांकन – प्राथमिक स्तर पर प्राय: लिखित एवं मौखिक गृह-परीक्षाओं के द्वारा आन्तरिक मूल्यांकन करके छात्रों के ज्ञान का आकलन किया जाता है। कोठारी आयोग ने सतत् मूल्यांकन प्रणाली अपनाने का सुझाव दिया। पहले 5 वी एवं 8 वीं में बोर्ड की परीक्षाएं होती थी

जिन्हें सबके लिए शिक्षा के अधिकार आने के बाद बंद कर दिया थ किन्तु अब शायद वे फिर शुरू होने वाली है।

4.2.3.9. ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड – प्राथमिक विद्यालयों में आधार भूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना तैयार की गई। इस योजना में सभी विद्यालयों के लिए भवन,शिक्षण-सामग्री व खेल सामग्री को न्यूनतम आवश्यक सुविधा के रूप में उपलब्ध कराया गया।

4.2.3.10. सबके के लिए शिक्षा – सन् 1990 में 'सबके लिए शिक्षा' विषय पर एक सम्मेलन हुआ उसी के बाद भारत में सर्व शिक्षा अभियान चलाया गया जिसमें पूर्व बाल्यकाल परिचर्या, प्राथमिक शिक्षा का सर्व व्यापीकरण, असारक्षता में कमी, शैक्षिक अवसरों में समानता, नारी समानता के लिए शिक्षा तथा शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार जैसे विषय सम्मलित किये गये।

4.2.3.11. ग्राम शिक्षा समिति – गांवों में प्राथमिक स्तरीय शिक्षा की समुचित व्यवस्था करने के लिए ग्राम शिक्षा समिति का गठन किया गया। यह समिति बेसिक स्कूलों की स्थापना, अनुरक्षण एवं सुधार के लिए योजनाएं बनाती है तथा क्रिन्यावित करती है। इसके दायित्वों को शैक्षिक, आर्थिक व प्रशासनिक भागों में बांटा गया है। यह समिति जन समुदाय व अन्य विभागों के सहयोग में अपना कार्य करती है।

4.2.3.12. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 में प्राथमिक शिक्षा – राष्ट्रीय शिक्षा नीति -1968 में कहा गया कि संविधान की धारा 45 के अनुरूप 14 वर्ष की आयु के सभी बालकों के लिए नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए श्रमपूर्वक प्रयत्न किया जाना चाहिए। स्कूलों में अपव्यय एवं अवरोधन को कम करने के लिए तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्कूल में प्रवेश लेने वाला प्रत्येक छात्र अपना पाठ्यक्रम सफलता पूर्वक पूरा कर रहा है। उपयुक्त कार्यक्रमों का निर्माण करना चाहिए।

4.2.3.13. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में प्राथमिक शिक्षा – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में प्राथमिक शिक्षा में दो बातों,14 वर्ष की आयु तक के बालकों के सार्वभौमिक स्थायित्व एवं शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार पर जोर दिया गया। प्राथमिक विद्यालयों में आवश्यक सुविधाओं का प्रावधान किया गया। स्कूल छोड़कर जाने वाले बालकों की समस्या का समाधान को उच्चतम प्राथमिकता दी गई।

4.2.3.14. कार्यन्वयन कार्यक्रम 1986-राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यन्वयन कार्यक्रम में प्राथमिक शिक्षा के विषय में कहा गया कि –

- क्षेत्र विशेष तथा जनसंख्या विशेष नियोजन क्रियान्वयन व्यूह रचना का मुख्य केन्द्र होगा।
- विद्यालय उन्नति का राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम शुरू किया जाये।
- नियोजन तथा क्रियान्वयन के सभी स्तरों पर अध्यापकों की सहभागिता सुनिश्चित की जाये।

- ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के अन्तर्गत विद्यालयों में भवन, चार्ट खेल सामग्री, आदि की उपलब्धता सुनिश्चित की जाये।
- अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू किया जायेगा।
- छात्रों के अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन करने के लिए उपयुक्त मूल्यांकन प्रणाली विकसित की जाये।

4.2.3.15. परिमार्जित राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1992 -राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के कुछ खण्डों का परिमार्जन 1992 में किया गया जिससे परिमार्जित राष्ट्रीय शिक्षा नीति कहते है इस में प्राथमिक शिक्षा के लिए निम्न प्रावधान किये गये।

- ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड को अधिक व्यापक करके प्रत्येक स्कूल में तीन बड़े कमरे तथा तीन अध्यापक उपलब्ध कराये जाये।
- भविष्य में नियुक्त होने वाले 50% अध्यापक महिलायें होगी।
- ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड को उच्च प्राथमिक स्तर पर विस्तृत किया जाये।
- शाला त्यागी बच्चों, स्कूल रहित क्षेत्रों के बच्चों तथा दिन में स्कूल न जा पाने में असमर्थ कामकाजी बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम को मजबूत व विस्तार करने के लिए कहा।
- 14 वर्ष की आयु वाले सभी बच्चों को संतोषजनक गुणवत्ता वाली नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक राष्ट्रीय मिशन चलाने के लिए कहा।

4.2.3.16. कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992 – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में किये गये संशोधनों के अनुरूप कार्यान्वयन योजना बनाने व प्राप्त अनुभवों व सुझावों को समहित करने की दृष्टि से नया कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992 में बनाया गया इस कार्यक्रम में प्राथमिक शिक्षा के विषय में मुख्य बाते निम्न थी –

- कार्यरत बच्चों तथा वंचित समूहों की शैक्षिक आवश्यकताओं एवं पाठ्य वस्तु प्रक्रिया व गुणवत्ता के लिए समग्र अधिगमन व्यवस्था को अपनाया जाये।
- ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड का विस्तार किया जाये एवं 50% महिला अध्यापकों की भर्ती की जाये।
- औपचारिक स्कूल शिक्षा, स्वैच्छिक विद्यालय योजना, अनौपचारिक शिक्षा, सूक्ष्म नियोजन तथा ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड की वर्तमान योजनाओं में सुधार किया जायेगा।
- स्कूल वस्तें का भार एवं न्यूनतम अधिगम स्तर पर ध्यान दिया जायेगा।
- विद्यालय प्रशासनिक तंत्र को मजबूत बनाया जायेगा तथा अध्यापको को समाज एवं समुदाय के प्रति उत्तरदायी बनाया जायेगा।

- विद्यालय में अध्यापकों को अधिक स्वायतत्ता दी जाये, छात्रों को अधिक सुविधा दी जायेगा एवं पुनरीक्षण व मूल्यांकन प्रणाली विकसित की जायेगी।

4.2.4. उच्च शिक्षा -माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् उच्च शिक्षा प्रारंभ होती है। उच्च शिक्षा महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों,विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं आदि में प्रदान की जाती है। स्वतंत्रता के समय भारत में कुल 20 विश्वविद्यालय थे स्वतंत्रता के बाद विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का विस्तार काफी तेजी से हुआ। आज भारत में 600 से अधिक विश्वविद्यालय एवं मानित विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा संस्थान है। इनके अन्तर्गत करीब 2 करोड़ 50 लाख छात्र अध्ययन कर रहे है।

4.2.4.1. विश्वविद्यालय के प्रकार – भारत में उच्च शिक्षा मुख्यत: विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय में प्रदान की जाती है। परन्तु विश्वविद्यालय ही उच्च शिक्षा के वास्तविक केन्द्र होते है। क्योंकि महाविद्यालय किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध होते है तथा विश्वविद्यालय के निर्देशन में कार्य करते है। विश्वविद्यालयों का वर्गीकरण हमें मुख्य रूप से तीन प्रकार से कर सकते है।

- स्थापना के आधार पर – केन्द्रीय विश्वविद्यालय या राज्य स्तरीय विश्वविद्यालय
- संगठन के आधार पर – संगठन के आधार पर विश्वविद्यालयों को तीन भागों में बांटा जा सकता है

  1. आवासीय विश्वविद्यालय 2. सम्बन्धक विश्वविद्यालय 3. आवासीय सम्बन्धक विश्वविद्यालय
- शिक्षा प्रक्रिया के आधार पर – शिक्षा प्रक्रिया के आधार पर विश्वविद्यालय को दो भागों में बाटा जा सकता है। 1. परम्परागत विश्वविद्यालय 2. मुक्त विश्वविद्यालय

4.2.4.2. उच्च शिक्षा के उद्देश्य – उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान का संकलन करना, नवीन ज्ञान की खोज करना तथा ज्ञान का व्यापक प्रसार करना है। राधाकृष्णन आयोग (1952-53) के अनुसार विश्वविद्यालय शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है –

- प्रजातंत्र की सफलता के लिए कुशल नागरिक तैयार करना।
- विभिनन व्यवसायों, वाणिज्य, कृषि, उद्योग, राजनीति, प्रशासन आदि के लिए छात्रों को प्रशिक्षण देना।
- छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना।

कोठारी आयोग (1964-66) के अनुसार उच्च शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित थे –

- नेतृत्व का विकास करना। इसके लिए प्रतिभाशाली युवकों को खोजकर उन्में मानसिक शक्ति,अभिरूचि, सुप्रवृति एवं नैतिकता का विकास करना।
- नवीन ज्ञान की खोज करना। सत्य की प्राप्ति के लिए निर्भय होकर कार्य करना तथा नवीन आवश्यकताओं व अन्वेषणों के सन्दर्भ में प्राचीन ज्ञान का विश्लेषण करना।

- कृषि, कला, विज्ञान तकनीकी चिकित्सा तथा अन्य व्यवयायों में निपुण एवं प्रशिक्षित नागरिक तैयार करना।
- शिक्षा द्वारा समानता व सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना तथा सांस्कृतिक एवं सामाजिक भिन्नताओं को कम करना।
- अध्यापकों तथा छात्रों में एवं उनके माध्यम से समस्त समाज में सत् जीवन के लिए आवश्यक मूल्य विकसित करना।

4.2.4.3. नियंत्रण तथा प्रशासन – भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना राज्यों की विधायिका या केंद्र को संसद के द्वारा पारित अधिनियमों के द्वारा की जा सकती है। विधायिका या संसद ही अधिनियमों के द्वारा विश्वविद्यालयों के स्वरूप, कार्यक्षेत्र तथा कार्यों को परिभाषित करती है। यदपि विश्वविद्यालय एक स्वायत संस्था है फिर भी केंद्र एवं राज्य सरकार का परोक्ष नियंत्रण इनके ऊपर रहता है। विश्वविद्यालय संघ भी विश्वविद्यालयों के ऊपर क्रमश: आर्थिक तथा शैक्षिक नियंत्रण रखते हैं। किसी विश्वविद्यालय का आन्तरिक नियंत्रण मुख्य रूप से तीन परिषदों – कार्यकारिणी परिषद,कोर्ट तथा विद्या परिषद् के अधीन रहता है।

विश्वविद्यालय के प्रशासन के लिए विश्वविद्यालय का अधिकारी वर्ग मुख्य रूप से उत्तरदायी होता है । किसी विश्वविद्यालय के प्रमुख अधिकारी, कुलाधिपति, कुलपति, कुलसचिव, वित्त अधिकारी, परीक्षा नियंत्रक, संकाय अध्यक्ष,पुस्तकालयाध्यक्ष, अनुशासन अधिकारी होते है। शिक्षण कार्य में विभागाध्यक्ष की भूमिका मुख्य रहती है।

4.2.4.4. उच्च शिक्षा में मूल्यांकन – कुछ विश्वविद्यालयों में वार्षिक परीक्षा एवं कुछ विश्वविद्यालयों में सेमेस्टर पद्धति से अध्यापन कार्य चल रहा है। इसमें बाह्य एवं आन्तरिक परीक्षा के माध्यम से वस्तुनिष्ठ लघु उत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय प्रश्नो के माध्यम से छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन किया जाता है।

4.2.4.5. स्वायत्तता– वर्तमान में विश्वविद्यालय स्वायत्तताहीन संस्थाएं बनकर रह गई है। विश्वविद्यालयों को कम से कम छात्रों के प्रवेश के संबंध में,अध्यापको की नियुक्ति व पदोन्नति के सम्बन्ध में, तथा पाठ्यक्रम के निर्माण के संबंध में पूर्ण स्वायत्तता होनी चाहिए।

4.2.4.6. अन्तर्विषयी अधिगमन – मनुष्य का पूरा ज्ञान एक अन्तरंग इकाई के रूप में रहता है। केवल अध्ययन की सरलता के लिए ज्ञान को हम विभिन्न विषयों या संकायों के रूप में बाट देते है। समान प्रकार के ज्ञान के समूह को किसी विशेष विषय के रूप में जाना जाने लगता है प्रत्येक विषय की अपनी कुछ मान्यताएं, धारणाएं तथा संकल्पनाएं होती है, जिनके आधार पर उस विषय के ज्ञान के भण्डार में वृद्धि होती है। परन्तु विषयों को बंद कमरों अलग-अलग बंद नही किया जा सकता किसी एक विषय के अध्ययन में दूसरे विषयों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। अन्तर्विषयी अधिगमन का उद्देश्य विभिन्न संकायों या विषयों को एक दूसरे के निकट लाकर उनमें परस्पर संबंध स्थापित करना है।

4.2.4.7. कार्य अनुभव-कार्य अनुभव को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। यह श्रम का सम्मान की भावना के बढ़ाने के साथ-साथ छात्र-छात्राओं की अभिरुचियों की अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करता है।

4.2.4.8. समन्वयात्मक संस्थाएं – उच्च शिक्षा एवं अनुसन्धान के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि कुछ ऐसी संस्थाएं हो जो उच्च शिक्षा में समन्वयन व गुणात्मक उन्नयन का कार्य कर सके। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय विश्वविद्यालय संघ, तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ऐसी ही समन्वयात्मक संस्थाएं है।

4.2.5.9 शैक्षिक सुधार-उच्च शिक्षा में शैक्षिक सुधार लाने के लिए अनेक व्यूह रचनाएं बनाई गई थी इनमें प्रवेश, परीक्षा,अनुसंधान व पाठ्यक्रम उन्नयन की दिशा में अनेक सुधारों की अनुसंसा की गई। इसमें सेमेस्टर प्रणाली, क्रेडिट प्रणाली, श्रेयांम संचयन,समान शैक्षिक कैलेण्डर, छात्र स्थान्तारण आदि के द्वारा शिक्षा के स्तर, सार्थकता व समान पहुँच को बढ़ाने अपेक्षा की जा रही है।

4.2.4.10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति -1968 में उच्च शिक्षा-विश्वविद्यालय शिक्षा के संबंध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में प्रावधान किये गये की –

- किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने वाले छात्रों की संख्या, प्रयोगशालायों, पुस्तकालयों शिक्षकों एवं कर्मचारियों की संख्या एवं अन्य सुविधाओं को देखते हुए निश्चित करनी चाहिए।
- नये विश्वविद्यालयों की स्थापना में सावधानी रखनी चाहिए इसके लिए आवश्यक धन की व्यवस्था एवं अच्छे शिक्षकों का होना आवश्यक है।
- स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के संगठन तथा इस स्तर पर प्रशिक्षण व अनुसंधान पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।
- उच्च अध्ययन केन्द्रो को मजबूत बनाया जाये उनमें प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान के अच्छे से अच्छे स्तर के लिए केन्द्रो के कुछ समूह बनाना चाहिए।
- विश्वविद्यालयों में अनुसंधान को अधिक सहायता देने की आवश्यकता है।
- विश्वविद्यालय स्तर पर अंशकालीन शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रमों का बड़े पैमाने पर विकास किया जाना चाहिए।

4.2.4.11. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में उच्च शिक्षा - इस शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा संस्थाओं के एकीकरण तथा सुविधाओं के विस्तार पर जोर दिया। उच्च शिक्षा व्यवस्था के गिरते स्तर को बचाने के लिए शीघ्र उपाय करने को कहा।

- स्वायत्त कालेजों की संख्या बढ़ाने को सुझाव दिया।
- पाठ्यक्रम एवं कार्यक्रम को पुन: बनाने का सुझाव दिया।

- शिक्षण संस्थाओं में न्यूनतम सुविधायें उपलब्ध करायी जाये तथा प्रवेश की क्षमता के अनुसार उसमें बढ़ोत्तरी की जाये।
- विश्वविद्यालय में अनुसंधान के लिए अधिक सहायता राशि देने के लिए सुझाव दिया।
- उच्च शिक्षा में अवसरों को बढ़ाने तथा शिक्षा को जनतान्त्रिक करने के साधन के रूप में मुक्त विश्वविद्यालय खोलने का सुझाव दिया।
- ग्रामीण विश्वविद्यालय का नया पैटर्न विकसित किया जाये।

4.2.4.12. कार्यान्वयन कार्यक्रम -1986-उच्च शिक्षा को गतिशील बनाने की दृष्टि से कार्यान्वयन कार्यक्रम में निम्न बातें कही गई थी –

- उच्च शिक्षा संस्थाओं को संसाधन उपलब्ध कराकर उनमें उपलब्ध सुविधाओं को बढ़ाया जाये।
- स्वायत्त महाविद्यालय एवं विभागों को बढ़ाया जाये।
- उच्च शिक्षा कार्यक्रमों के पाठ्यक्रमों को पुनर्गठित किया जाये।
- अध्यापक प्रशिक्षण के लिए पुनश्चर्या तथा अभिनव पाठ्यक्रमों को चलाया जाये।
- विश्वविद्यालयों में अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाये।
- विश्वविद्यालयों में अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाये इसके लिए आवश्यक अधिरचना को मजबूत किया जाये।
- विश्वविद्यालयों की कार्यक्षमता को बढ़ावा जाये।
- राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर उच्च शिक्षा में समन्वय के लिए प्रयास किये जाये।
- सभी योग्य व्यक्तियों को समान अवसर देने के लिए अन्तरक्षेत्रीय गतिशीलता बढ़ाई जाना चाहिए।
- मुक्त विश्वविद्यालय एवं दूर शिक्षा को बढ़ावा दिया जाये, पाठ्यक्रमों के माड्यूल बनाये जाये, गुणवत्ता बढ़ाई जाये।
- ग्रामीण विश्वविद्यालयों को नया स्वरूप दिया जाये।

4.2.4.13. संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992) तथा कार्यान्वयन कार्यक्रम में उच्च शिक्षा

भारत विश्व की सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली होने के बावजूद उच्च शिक्षा के प्रसार एवं विकास में कई प्रकार की विसंगतियां दिखाई दी गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992 में इस संबंध में निम्नलिखित मुख्य व्यवस्था की गई –

- उच्च शिक्षा के विस्तार के लिए राज्यों में उच्च शिक्षा राज्य परिषदें बनाई जायेंगी एवं विश्वविद्यायों की प्रबन्ध व्यवस्था के संबंध में ज्ञानम समिति के सुझावों को लागू किया जायेगा।

- स्वायत्त महाविद्यालयों की संख्या बढ़ाई जायेगी प्रत्येक राज्य में इस योजना की समीक्षा के लिए स्वायत्त महाविद्यालय परिषद का गठन किया जायेगा।
- विश्वविद्यालयों में स्वायत्त विभागों की योजना को आगे बढ़ाया जायेगा इस योजना की समीक्षा के लिए यू.जी.सी. में एक प्रकोष्ठ की स्थापना की गई।
- उच्च शिक्षा के कार्यक्रमों को विशिष्टीकरण की पाठ्यक्रम संयोजन में नम्यता, संस्थागत गतिशीलता, आधुनिकीकरण व कार्य अनुभव के संयोजन की बढ़ती मांग के अनुरूप पुनर्गठित किया जाये।
- ऐकेडमिक स्टॉफ कालेज योजना को जारी रखते हुए उनमें आवश्यक नवाचारों को सम्मलित किया जाये।
- विश्वविद्यालयों में अनुसंधान विज्ञान शिक्षा सूचना प्रौद्योगिकी समन्वय तथा गुणवत्ता नियंत्रण के कार्यों को बढ़ावा दिया जाये।

4.2.5. तकनीकी तथा कम्प्यूटर शिक्षा- वर्तमान युग विज्ञान व तकनीकी का युग है। किसी देश की समृद्धि कल्याण, सुरक्षा एवं वैभव मुख्यत: विज्ञान व तकनीकी के विकास पर निर्भर करती है। इसके लिए उस राष्ट्र में अच्छी तकनीकी शिक्षा का होना आवश्यक है।

भारत में आधुनिक तकनीकी शिक्षा की शुरूआत ब्रिटिश शासन काल में हुई थी। स्वतंत्रता कि पश्चात् तकनीकी का तीव्र गति से विकास हुआ है, फिर भी ये पर्याप्त नहीं है। तकनीकी शिक्षा में प्रवेश इसके पाठ्यक्रम व शिक्षण की समस्याएं इसके विकास में बाधक हैं। वर्तमान में रोजगार भी एक बड़ी समस्या है। कई छात्र तकनीकी शिक्षा प्राप्त बेरोजगार है। विभिन्न शिक्षा नीतियों में तकनीकी शिक्षा पर विशेष बल दिया है।

4.2.5.1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) में तकनीकी शिक्षा- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1968 में तकनीकी शिक्षा पर विशेष रूप से कुछ नहीं कहा गया इसमें विज्ञान शिक्षा तथा कृषि तथा उद्योगों के लिए शिक्षा की बात कहीं गई। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की गति बढ़ाने के लिए विज्ञान की शिक्षा तथा अनुसंधान को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्रत्येक राज्य में कम से कम एक कृषि विश्वविद्यालय खोलना चाहिए विद्यार्थियों को तकनीकी शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में उद्योगों से सम्बन्धित व्यवहारिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

4.2.5.2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में तकनीकी शिक्षा -तकनीकी एवं कंप्यूटर को पुनर्गठित सम्मावित परिवर्तनों ज्ञान की तीव्रता से बढ़ोत्तरी तथा विज्ञान व तकनीकी की विराट उन्नति को ध्यान में रखकर करना चाहिए। क्योंकि आज कंप्यूटर महत्वपूर्ण एवं सर्वत्र उपयोगी साधन बन गया है। इसलिए कंप्यूटरों का प्रारम्भिक ज्ञान तथा उनके उपयोग का प्रशिक्षण व्यवसायिक शिक्षा का एक अंग होना चाहिए। महिलाओं, आर्थिक व सामाजिक रूप से कमजोर वर्गों तथा विकलांगों के लाभ के लिए तकनीकी शिक्षा के उपयुक्त औपचारिक तथा अनौपचारिक कार्यक्रम बनाये जायेंगे।

- तकनीकी शिक्षा पर व्यय अधिक होता है, इसलिए लागत प्रभावशीलता के लिए तथा श्रेष्ठता बढ़ाने के लिए उपाय किये जायेंगे।
- तकनीकी शिक्षा के प्रसार के लिए प्रोफेशनल संघों को प्रोत्साहित एवं तैयार किया जायेगा।

4.2.5.3. कार्यान्वयन कार्यक्रम(1986)-राष्ट्रीय शिक्षा नीति को लागू करने के लिए मानव संसाधन विभाग ने कार्यान्वयन कार्यक्रम तैयार किया इसे तकनीकी शिक्षा की निम्नलिखित व्यवस्था की गई।

- अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (AICTE) को मजबूत किया जाये।
- राज्यों में तकनीकी शिक्षा बोर्डों तथा निदेशालयों को मजबूत किया जाये।
- तकनीकी संसाधन सूचना प्रणाली का कंप्यूटरीकरण किया जायेगा।
- तकनीकी तथा प्रबन्ध संस्थाओं को स्वायन्तता दी जायेगी।
- उच्च तकनीकी संस्थाओं में अन्तरक्षेत्रीय गतिशीलता बढ़ाई जायेगी।
- तकनीकी शिक्षा में सतत शिक्षा तथा दूर अधिगम को प्रोत्साहित किया जायेगा।
- कंप्यूटर शिक्षा का विस्तार किया जायेगा।

4.2.5.4. कार्यान्वयन कार्यक्रम – 1992 राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 1986 की पाँच वर्ष बाद 1992 में उसकी समीक्षा की गई तथा प्राप्त सफलताओं असफलताओं तथा प्रतिक्रिया के आधार पर इसमें कई संशोधन किये गये। इसके बाद संशोधित नीति बनाई गई ओर इसके कार्यान्वयन के लिए एक कार्यक्रम बनाया जिससे कार्यान्वयन कार्यक्रम 1992 के नाम से जाना जाता है उसमें तकनीकी एवं कंप्यूटर शिक्षा में निम्न बातों को सम्मलित किया गया -

- मानको एवं स्तरों के बनाये रखने के लिए प्रमाणन, पुनरीक्षण व मूल्यांकन को सुनिश्चित करने के लिए ओर अधिक भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद को मजबूत किया जायेगा।
- तकनीकी जनशक्ति की उपलब्धता व मांग की सम्यक जानकारी के लिए समुचित डॉटा बेस विकसित किया जायेगा।
- अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (AICTE) के द्वारा विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए न्यूनतम सम्पर्क कालांश, कंप्यूटर शिक्षण तथा नई तकनीकी सम्बन्धी मानक बनाए जायेंगे।
- कंप्यूटरों की सहायता से शिक्षा देने को बढ़ावा दिया जायेगा तथा शिक्षा संस्थाओं में कंप्यूटरों की उपलब्धता सुनिश्चित की जायेगी।
- विभिन्न विषयों में कंप्यूटरों के उपयोग पर अलग से एक प्रश्न पत्र प्रारम्भ करने की दिशा में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) पहल करेगा।

4.2.6. सारांश

इस इकाई में आपने विभिन्न राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के विषय में जानकारी प्राप्त की। स्वतन्त्रता के पश्चात सर्व प्रथम 1968 में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। सन 1979 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति मसौदा बनाया गया परन्तु वह संसद में पास नहीं हो पाया। इसके पश्चात 1986 में नई शिक्षा नीति बनाई गई इसके क्रियावन हेतु एक कार्यक्रम बनाया गया। पाँच वर्ष पश्चात 1992 में इसकी समीक्षा की गई और आवश्यक संशोधन कर संसोधित शिक्षा नीति बनाई गई जिसके क्रियावन हेतु पुनःकार्यान्वियन कार्यक्रम बनाया गया। इसके अंतर्गत हमने कई मुख्य मुद्दों जैसे प्राथमिक शिक्षा ,उच्च शिक्षा, तकनीकी एवं कम्प्यूटर शिक्षा की जानकारी प्राप्त की और जाना कि शिक्षा नीतियों में इनका विकास कैसे हुआ है।

4.2.7. बोध प्रश्न

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति(1968) विशेषताएं लिखिए
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति(1968) में प्राथमिक शिक्षा के लिये क्या प्रावधान किये गये
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति(1986) में कौन-कौन से क्षेत्रों में कार्य हुआ।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति में 1992 में क्या संसोधन किये गये।
- आपरेशन ब्लेक बोर्ड क्या है ?
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति मसौदा-1979 क्या है ? यह क्यो पारित नहीं हो पाया।
- भारत में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।
- विश्वविद्यालय कितने प्रकार के होते है।
- अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम किस सन में कानून बना ?

4.2.8. संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. अग्निहोत्री, रविन्द्र (2006),आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्यायें एवं समाधान, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. अग्रवाल जे.सी (1993), लैडमार्क्स इन दॉ हिस्ट्री मॉडर्न इंडियन एजुकेशन : नई दिल्ली : वाणी बुक्स।
3. अदावल, एस.बी तथा एम. उनियाल (1982) भारतीय शिक्षा की समस्याएँ तथा प्रवृत्तियाँ, लखनऊ : उत्तरप्रदेश ग्रंथ अकादमी।
4. अल्तेकर, ए.बी. (1951) एज्युकेशन इन ऐन्शिमेन्ट इंडिया; बनारस : नंद किशोर एण्ड ब्रदर्स।
5. ओल्ड, एल.के (1977) शिक्षा के नूतन आयाम; जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
6. कबीर हुमायुँ (1956) स्वतंत्र भारत में शिक्षा; दिल्ली : राज्य पाल एण्ड सन्स।

7. गुप्ता, एस.पी. तथा अलका गुप्ता (2015) भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्यायें; इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
8. चौबे, सरयू प्रसाद (1975) भारत में शिक्षा का विकास; इलाहाबाद : सेंट्रल बुक डिपो।
9. जोशी, सुषमा (2012) भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास एवं समस्याएं : इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।

इकाई 3 शिक्षा : राजनितिक विचारधाराएं एवं भौगोलिक सीमाएं

इकाई की रूपरेखा

4.3.0. उद्देश्य

4.3.1. प्रस्तावना

4.3.2. राजनितिक विचारधाराएं

4.3.3. राजनितिक विचारधाराएं एवं भौगोलिक सीमाएं

4.3.4. शिक्षा: राजनितिक विचारधाराएं एवं भौगोलिक सीमाएं

4.3.5. पाठसार/ सारांश

4.3.6. कठिन शब्दावली

4.3.7. अभ्यास- प्रश्न/ बोध- प्रश्न

4.3.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

4.3.0. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. राजनितिक विचारधारा के संप्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
2. विविध राजनितिक विचारधारा से अवगत हो सकेंगे।
3. भौगोलिक सीमा के संप्रत्यय से अवगत हो सकेंगे।
4. विविध राजनितिक विचारधारा एवं उनकी भौगोलिक सीमा से अवगत हो सकेंगे।
5. राजनितिक विचारधारा, भौगोलिक सीमा एवं शिक्षा के अंतर अनुषांगिक संबंध को समझ सकेंगे।

4.3.1. प्रस्तावना

प्राचीन काल में धर्मसत्ता का राजसत्ता पर प्रभाव था। धर्म एवं राजसत्ता के बिच अटूट संबंध प्राचीन काल से रहा है। धर्मसत्ता एवं राजसत्ता के संघर्ष एवं समन्वय से ही मानव जीवन विकसित हुआ है। राजेशाही, महाजनशाही, सरदारशाही, सरंजामशाही, हुकुमशाही, साम्यवादी, अध्यक्षीय शासनप्रनाली, लोकशाही आदि प्रकार की शासनप्रनाली विश्व के विभिन्न देशों में पायी जाती है। गांधीवादी विचारधारा, अंबेडकरवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा, समाजवादी विचारधारा, राष्ट्रवादी विचारधारा, हिंदूत्ववादी विचारधारा, मुस्लिम राष्ट्रवादी विचारधारा आदि राजनितिक विचारधारा लोकतंत्र के अंतर्गत भारतीय राजनीती में दिखाई देती है। भारतीय स्वतंत्रता के उपरांत भारत ने लोकतांत्रिक शासनव्यवस्था का स्वीकार किया है। 1950 से भारत में लोकतंत्र की शासनव्यवस्था का अंमल आरंभ हुआ। संविधान की उद्देशिका में लोकतांत्रिक शासन एवं प्रशासन को स्थान दिया है। सामाजिक एवं राजकीय जीवन में लोकतांत्रिक मूल्यों का स्वीकार करने के कारण एक नवसमाज एवं

नवराष्ट्र का निर्माण होना प्रारंभ हुआ। भारत ने बहुपक्षीय सांसदीय शासनप्रनाली का स्वीकार किया है। मानव जीवन के सभी क्षेत्र में लोकतांत्रिक मूल्यों का दृष्टिकोण विकसित करना शिक्षा का उद्देश्य है। भारतीय समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है।

4.3.2. राजनितिक विचारधाराएं

राजनितिक विचारधारा समझने से पूर्व राजनितिक संस्था का उदय कीस प्रकार हुआ यह देखना जरुरी है। राजनितिक संस्थाओं को समझने के उपरांत विश्व एवं भारत के संदर्भ में राजनितिक विचारधाराओं के संदर्भ जानकारी लेंगे।

4.3.2.1. राजनितिक संस्थाओं का उदय

राजनितिक संस्थाओं या राजनितिक विचारधाराओं को समझने के पूर्व राजनीतिक संस्थाओ के निर्माण के संदर्भ में जानना जरुरी है। व्यक्तियों ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु समाज का निर्माण कीया। समाज व्यवस्था के निर्माण के पूर्व व्यक्ति स्वतंत्र था एवं व्यक्तियों के व्यवहार पर स्वयं का ही नियंत्रण था। स्वहित एवं स्वसंरक्षण के लिए व्यक्तियों ने समाज का निर्माण किया। समाज का निर्माण व्यक्तीयोंने स्वयं किया। व्यक्तियों ने समाज के निर्माण के लिए अपने पूर्व स्वातंत्र्य एवं स्वायतत्ता का त्याग किया। व्यक्ति एक समाजशील प्राणी है। व्यक्ति विकास के साथ-साथ समाज का विकास करना आवश्यक होता है। समाज विकास में ही व्यक्ति का विकास अंतर्निहित होता है। समाज विकास के बिना व्यक्ति का विकास अधुरा है। व्यक्ति का हित तभी हो सकता है जब समाज का हित होगा। इसके लिए समाज का स्वास्थ्य अच्छा रहना आवश्यक है। समाज की सुव्यवस्था समाज स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण होती है। समाज में निर्मित विवाद का निवारण करने के लिए सामाजिक व्यवस्था की अत्यंत आवश्यकता होती है। सामाजिक व्यवस्था के निर्माण एवं संचालन के लिए बौद्धिक एवं शारीरिक प्रबल व्यक्तियों की आवश्यकता थी। सामाजिक जीवन के सुचारु संचालन हेतु राजनितिक सत्ता की आवश्यकता निर्माण हुई। समाज ने उक्त आवश्यकता की पुर्तता कर समाज के संचालन हेतु नेतृत्व विकसित किया। विभिन्न क्षेत्र के नेतृत्व करनेवाले व्यक्तियों के द्वारा राजसत्ता का निर्माण हुआ। यह राजनितिक सत्ता एक या अधिक व्यक्तियों के पास रही जिससे राजनीती का प्रारंभ हुआ। इ.स. 500 के पूर्व स्पार्टा, अथेन्स आदि राज्यों में नागरी शासन व्यवस्था प्रचलित थी। प्राचीन भारत में भी नागरी शासनप्रनाली की व्यवस्था का इतिहास प्राप्त होता है। राजेशाही, महाजनशाही, सरदारशाही, सरंजामशाही, हुकुमशाही, साम्यवादी, अध्यक्षीय शासनप्रनाली, लोकशाही आदि प्रकार की शासनप्रनाली विश्व के विभिन्न देशों में पायी जाती है।

4.3.2.2. विश्व की राजनितिक विचारधाराएं :

प्राचीन काल से वर्तमान काल तक एकसत्ताक राजेशाही, महाजनशाही, सरदारशाही, सरंजामशाही, हुकुमशाही, साम्यवादी, अध्यक्षीय शासनप्रनाली, लोकशाही आदि प्रकार की शासनप्रनाली विश्व के विभिन्न देशों में पायी जाती है। जिसके संदर्भ जानकारी निम्नवत है –

- **एकसत्ताक राजसत्ता (Autocracy) :**

एकसत्ताक शासनव्यवस्था में एक व्यक्ति के पास सत्ता का केंद्रीकरण होता है। वह व्यक्ति राजा, अनियंत्रित शासक या हुकुमशहा हो सकता है। प्राचीन काल में अधिकतर राष्ट्रों में एकाधिकारशाही या एकसत्ताक राजसत्ता संचालित थी। वर्तमान में विविध देशों में एकसत्ताक शासनव्यवस्था या एकाधिकारशाही अस्तित्व में है।

जिस व्यक्ति पर शासन व्यवस्था चलाने की जिम्मेदारी होती है। उसके लिए उत्तम शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। सामान्य जनता की शिक्षा की ओर दुर्लक्ष किया जाता है। एकाधिकार शासन प्रणाली में राजा की आज्ञा का पालन करना जनता का कर्तव्य होता है। जनता के द्वारा किये गए विरोध को राजसत्ता द्वारा नष्ट किया जाता है। एकसत्ताक शासन प्रणाली में राज्य के ध्येयानुसार शिक्षा प्रणाली का क्रियान्वयन किया जाता है। सत्ता के अनुकूल जनता की विचारप्रणाली विकसित की जाती है। राजा की आज्ञा का पालन करना जनता का कर्तव्य होता है। राजाज्ञा का विरोध करने वाले व्यक्तियों को दंड दिया जाता है। एकसत्ताक शासनप्रनाली द्वारा लिए गए निर्णयों के संदर्भ में जनमत तैयार करना शिक्षा संस्थानों का प्रधान दाईत्व होता है। राज्य के निर्णयों का प्रचार- प्रसार करना शिक्षकों की जबाबदेही होती है। कार्यरत शासनप्रनाली के अनुसार नागरिकों को शिक्षा दी जाती है।

- **महाजन सत्ता (Aristocracy) :**

एकाधिकारशाही के समान ही महाजनशाही सत्ता का स्वरुप होता है। एकाधिकारशाही शासनप्रनाली में सत्ता किसी एक व्यक्ति के पास केंद्रित होती है। महाजनशाही शासनप्रनाली में सत्ता अल्पसंख्य समूह के पास केंद्रित होती है। सत्ता का विभाजन समाज के चुनिंदा लोगो के पास रहती है। ग्रीक देश में यह सत्ता समाज के महान लोगो के पास रहती है। इस कारण उक्त शासनप्रनाली को 'महाजन सत्ता' कहा जाता है। श्रेष्ठतम जन अर्थात महाजन के द्वारा सत्ता का संचालन किया जाता है। महाजन पद कुलीन होता है। पूंजीवादी काल में पूंजीवादियों द्वारा महाजनो का उदय होता है। साम्यवाद में साम्यवादी विचारों के अल्पसंख्यक सत्ता का संचालन करते है। यह अल्पसंख्यक वर्गों का उदय कुलीनता एवं धन के आधार पर होता है।

महाजन सत्ता शिक्षा को अधिक प्रभावित करती है। प्राथमिक शिक्षा के अलावा उच्च शिक्षा पर महाजन एवं धनिक वर्गो के अधीनस्थ चलती है। बहुजन वर्ग एवं उच्च वर्गियों के लिए अलग-अलग शिक्षण पद्धति का प्रचलन था। उच्च वर्गियो को सत्ता संचालन अर्थात राजनीती की शिक्षा दी जाती है। राजनीती विज्ञान, सुरक्षा व्यवस्था, प्रशासन संचालन, आर्थिक विकास आदि का समावेश उच्च वर्गियों की शिक्षा में होता है। शिक्षा की सहायता से महाजनसत्ता की निरंतरता बनाये रखना शिक्षा का प्रधान उद्देश्य होता है।

- **राजेशाही (Monarchy) :**

प्राचीन काल में समाज के रक्षण के लिए जो युद्ध का नेतृत्व करता था वही नेता माना जाता है। वही नेतृत्वधारी व्यक्ति शांति काल में राजा कहलाता है। राज्य के सुयोग्य संचालन के लिए नियम बनाये गए,

जिसे 'राजनीति विज्ञान' के नाम से जाना जाता है। राज्य का सुचारु संचालन कैसे किया जाए, जनता के साथ कैसे व्यवहार किया जाए, जनता के लिए कैसे सुविधा उपलब्ध किया जाए, राज्य का संरक्षण एवं विस्तार कैसे किया जाए, सिमालगत राज्यों के साथ कैसे व्यवहार किया जाए आदि के संदर्भ में शिक्षण राजनीति विज्ञान के द्वारा उपलब्ध कराया जाता। राजधर्म के साथ प्रजाधर्म के नियम भी राजनीति विज्ञान में सम्मिलित होते है। राजा के वंशज को राजा बनाने की व्यवस्था निर्माण की गई। 'The Divine Rights of King' इसप्रकार की कल्पना तत्कालीन समय में इंग्लंड में प्रचलित थी। भारत में भी राजा को ईश्वर का अवतार माना जाता था। बलशाली राजा का पुत्र बलशाली ही होगा ऐसा जनता का मानना था। वर्तमान में अविकसित देशों में राजेशाही शासनप्रनाली का अस्तिव दिखायी देता है।

- **सरदारशाही (Oligrachy) :**

राजेशाही शासनप्रनाली में अस्थिरता निर्माण होने के कारण राजा को राजपद से हटाया जाता है। राज्य के कुछ कर्तबगार सरदार राज्य की सत्ता का संचालन करते है। उस शासनप्रनाली को 'सरदारशाही' के नाम से जाना जाता है। कमकुवत राजा या राजपुत्र को सत्ता से हटाके कर्तबगार सरदार सत्ता का संचालन करते है। सरदारशाही सत्ता राजेशाही के समान वंशागत होती है। विविध सरदार अपनी प्रबलता के आधार पर सत्ता प्राप्त करते है।

- **हुकुमशाही (Dictatorship) :**

इटली की फॅसिज़म एवं जर्मनी की नाझिजम यह हुकुमशाही शासनप्रनाली के सर्वोत्तम उदहारण है। युद्धोत्तर स्थतियों का लाभ लेते हुए जर्मनी एवं इटली में क्रमशः हिटलर एवं मुसोलिनी ने हुकुमशाही शासनप्रनाली की स्थापना की। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत इटली की आर्थिक स्थितियां ख़राब हुई। असंतोष, दंगल, संप आदि का प्रचलन बढ़कर अशांति की स्थिति निर्माण हुई। मुसोलिनी के नेतृत्व में फॅसिस्ट पक्ष ने नेतृत्व किया। राष्ट्रहित में कार्य करते हुए देश में शांति प्रस्थापित की। राष्ट्र के लिए मर-मिटने के लिए फॅसिस्ट युवा तैयार हुए। फॅसिस्टवादियों की सहायता से मुसोलिनी ने अपना हुकुमशाही साम्राज्य स्थापित किया।

प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी का पराभव होने के उपरांत शस्त्र संधि हेतु व्हार्साय का तह किया गया। जर्मनी के उपर अपमानजनक शर्ते रखकर एक राष्ट्र के संदर्भ में अपमान किया गया। व्हर्साय की शस्त्रसंधी के विरुद्ध जनमत तयार करने का कार्य नाझी पक्ष की द्वारा किया गया। नाझी पक्ष हिटलर की नेतृत्व में इकट्ठा हुआ। नाझी का अर्थ 'NAtional SoZlalist-NAZI' है। 1934 में हिड़ेनबुर्ग के मृत्यु के उपरांत अॅडाल्फ़ हिटलर सर्वाधिकारी बना। जर्मन पार्लमेंट नष्ट कर हिटलर हुकुमशहा बना। ज्यू समाज को देशद्रोही करार देते हुए बड़े पैमाने पर मारा गया।

लोकतांत्रिक शासनप्रनाली नाममात्र रहीं। समाचार पत्र, मुद्रण यंत्रणा, कामगार संघटना आदि पर नियंत्रण प्रस्थापित किया। मुद्रण स्वातंत्र्य, सभा स्वातंत्र्य, भाषण स्वातंत्र्य आदि पर रोक लगा दी। विरोधियों को दंडित किया। शस्त्र निर्मिति एवं लष्करी शिक्षा पर बल दिया गया। राज्य विरोधी तत्वों को नष्ट किया गया। सत्ता के अनुकूल शिक्षा को प्रेषित किया गया।

- **साम्यवाद (Communism) :**

झार की जुलमी राजसत्ता, किसानों एवं श्रमिकों की दयनीय आर्थिक स्थिति, कामगारों का असंतोष, राज्य कारभार के प्रति असमाधान एवं मार्क्स के विचारों प्रति आकर्षण आदि कारणों से रशिया में राज्यक्रांति हुई। रशिया में समाजवाद का विकास होने लगा। लेनिन के नेतृत्व में किसान एवं श्रमिको की सोवियत सरकार स्थापित की। सोवियत सरकार को किसान, श्रमिक एवं सामान्य जनता का सहयोग प्राप्त हुआ था। देश में कार्यरत सभी कारखाने सरकार के अधिकार में आ गए। कारखानों में श्रमिकों की सत्ता प्रस्थापित हुई। उद्योग प्रशासन में श्रमिकों की भागीदारी बढ़ी। किसानों को खेती उपलब्ध कराई गई। श्रमिक, किसान एवं सामान्य जनता की सुख-सुविधा की ओर ध्यान दिया गया। लेनिनने बोल्शेविक पक्ष (बहुमतवाला पक्ष) का नाम बदलाकर कम्युनिस्ट (साम्यवादी) पक्ष कर दिया। पूंजीवादी शासनप्रनाली नष्ट करने के लिए आमूलचूल बदलाव किया जाना जरुरी था जो लेनिन के नेतृत्व में किये गए। श्रमिक एवं किसानो की सत्ता निर्माण की गई। साम्यवादी शासनप्रनाली को हुकुमशाही शासनप्रनाली का स्वरुप प्राप्त हुआ।

साम्यवादी शासनप्रनाली में शिक्षा का स्वरुप मार्क्सवाद, साम्यवाद आदि पर आधारित था। श्रमिक, किसानों एवं सामान्य जनता के हितो की रक्षा के लिए शिक्षा का आयोजन, नियोजन एवं क्रियान्वयन किया गया। शिक्षा के द्वारा मार्क्सवाद एवं साम्यवाद का प्रचार-प्रसार किया गया। मार्क्सवाद एवं साम्यवाद का प्रभाव रशिया में नहीं पुरे विश्व में दिखाई देता है। कार्ल मार्क्स, फेड्रिक एंगेल्स, कार्ल कॉट्सकी, बी.आई.लेनिन, रोजा लक्जेमबर्ग, लियो ट्रॉट्स्की, जोशेफ़ स्टॅलिन, माओ-त्से-तुंग आदि विद्वानों का साम्यवाद के चिंतन में महत्वपूर्ण सहयोग है।

- **लोकतंत्र (Democracy) :**

लोकतंत्रात्मक शासनप्रनाली यह विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं आदर्श शासनप्रनाली मानी जाती है। लोकतंत्र को ‘Democracy’ कहते है। ‘Democracy’ शब्द Demos- people, kratos- power से बना है। लोकतंत्र केवल शासनप्रनाली नहीं, यह एक जीवनप्रनाली है। परिवार, विद्यालय, सामाजिक संस्था एवं राजनितिक संस्था आदि में लोकतंत्रात्मक शासनप्रनाली का प्रयोग किया जाता है। जीवन के विभिन्न अंगो में लोकतंत्रात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। लोकतंत्र में सर्व सामान्य जनता के सर्वांगिक विकास पर बल दिया जाता है। लोकतंत्र में लिंग, जन्मस्थान, वंश, जाति, धर्म, पंथ, वर्ग, क्षेत्र आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता। सभी मानव समान है, यह लोकतंत्र का मूलाधार है। सभी व्यक्तियों को अपनी क्षमता के अनुसार विकास के अवसर प्रदान किये जाते है। लोकतंत्र में सभी को स्वतंत्रता प्रदान की जाती है किन्तु सामाजिक जीवन की मर्यादाओं का पालन व्यक्तियों को करना होता है। ‘जियो और जीने दो’ इस तत्व का पालन व्यक्तियों द्वारा करना अपेक्षित है। न्याय, स्वातंत्र, समता, बंधुभाव आदि पर लोकतंत्र की आधारशिला है।

लोकतंत्र यह प्रधानता से शासनप्रनाली है। लोकतंत्रात्मक शासनप्रनाली में सत्ता का संचालन जनता के द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। मतदान के द्वारा जनता अपने प्रतिनिधियों को विधिमंडल में चयनित करती है। बहुजनों के द्वारा चयनित प्रतिनिधि द्वारा कार्यकारी मंडल का निर्माण

किया जाता है। कार्यकारी मंडल का प्रमुख राज्य में मुख्यमंत्री एवं देश में प्रधानमंत्री कहलाता है। लोकतंत्र यह अन्य शासनप्रनाली की तरह वांशिक नहीं है। किन्तु वांशिक परंपरा का असर लोकतंत्र में भी कम-अधिक स्वरुप में दिखाई देता है। जनता ने लोकतंत्र को वंश परंपरागत न बनाते हुए सदाचारी, कर्तव्यतत्पर, ध्येयनिष्ठ, समाजसेवी, भ्रष्टाचारमुक्त, गुन्हेगारिमुक्त प्रतिनिधियों का चयन करना चाहिए। लोकतांत्रिक शासनप्रनाली में भ्रष्टाचार, गुन्हेगारी प्रतिनिधित्व, जात-धर्म-क्षेत्र-भाषा-लिंग-पंथ को प्रधानता आदि अनिष्ट प्रथाओं का प्रचलन बढ़ा है। यह दोष लोकतंत्र की गुणों को ध्वस्त कर देते है। इस कारणवश लोकतंत्र परिणामकारक एवं सामान्य जनता के हितावह नहीं हो सकता है। लोकतंत्र के गुणों को बनाये रखने के लिए विद्वत्ता, पात्रता, कर्तव्य तत्परता, सेवानिष्ठ्ता एवं कार्यकुशलता आदि गुणों के आधार पर प्रतिनिधि की नियुक्ति की जानी चाहिए। विद्वान, कर्तव्य तत्पर, सेवानिष्ठ एवं कार्यकुशल प्रतिनिधि का चयन लोकसभा, विधानसभा, विधान परिषद एवं राज्यसभा में किया जाना चाहिए। राजनितिक दृष्टिसे लोकतंत्र के क्रियान्वयन में दोष होंगे किन्तु शिक्षा की दृष्टी से लोकतंत्र सर्वोत्तम है।

4.3.2.3. भारत की राजनितिक विचारधाराएं :

स्वातंत्र्य पूर्व से वर्तमान काल तक राजनितिक विचारधाराओं में गांधीवादी विचारधारा, अंबेडकरवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा, समाजवादी विचारधारा, राष्ट्रवादी विचारधारा, हिंदूत्ववादी विचारधारा, मुस्लिम राष्ट्रवादी विचारधारा आदि प्रकार की राजनितिक विचारधारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाती है। भारत के लोकतंत्र के अंतर्गत कार्यान्वित विभिन्न राजनितिक विचारधारा लोकतंत्र के रंगबिरंगी वस्त्र है, जो भारतीय लोकतंत्र को आधिक विस्तारित एवं विकसित करने का प्रयास कर राहे है। जिसके संदर्भ जानकारी निम्नवत है –

- **गांधीवादी विचारधारा (Gandhi's Political Philosophy) :**

मोहनदास करमचंद गांधी 'गांधीवादी विचारधारा' के जनक है। सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, धार्मिक सहिष्णुता, शांति, श्रमप्रतिष्ठा आदि मूल्यों की उन्होंने राजनितिक एवं जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठापना कर भारतीय जीवनशैली को नया स्वरुप प्रदान किया। विशाल धार्मिक एवं नैतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए राजनीती को अपनाया। गांधीजी ने स्वयं स्वीकार किया कि 'गांधीवाद' नाम की किसी विचारधारा का अस्तित्व नहीं है। (ओ.पी.गाबा : राजनीती-चिंतन की रुपरेखा, पृष्ठ सं. 410) किन्तु उनके जीवन एवं व्यवहार से विकसित मूल्यों का समुच्चय गांधीवादी विचारधारा माना जाता है। सत्य और अहिंसा उनके जीवन के मूलमंत्र थे। सत्याग्रह राजनीती का शस्त्र एवं अस्त्र है। गांधीजी ने राजनीती एवं नीतिशास्त्र की परस्पर एकता को स्वीकार किया है। वह धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता के पक्षधर रहे है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के वह प्रमुख सेनानी माने जाते है। उन्होंने ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा दिया। सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर उन्होंने बल दिया। गांधीवाद यह फॅसिजम एवं साम्यवाद को अमान्य कर लोकतंत्र का स्वीकार करता है। अहिंसा पर आधारित ही आदर्श राज्य या समाज हो सकता है। अपने जीवन में सर्वोदय का अंगीकार करने का प्रयास किया। जवाहरलाल नेहरु,

राजगोपालाचारी, सरदार पटेल, राजेंद्र प्रसाद, विनोबा भावे, आचार्य कृपलानी आदि गांधीवाद के समर्थक मने जाते है। भारतीय राष्ट्रिय काँग्रेस यह गांधीवाद पर अधिष्टित राजनितिक विचारधारा एवं पक्ष है। स्वातंत्र्योत्तर काल में जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, सोनिया गांधी, राहुल गांधी, मन मोहन सिंह आदि शिर्ष नेताओं ने भारतीय राष्ट्रिय काँग्रेस का नेतृत्व किया है। गांधीजी की विचारधारा पर आधारित बुनियादी शिक्षा या नई तालीम यह शिक्षा योजना वर्धा में क्रियान्वित है। स्वावलंबन, आत्मनिर्भरता, ग्रामीण उद्योग आदि नई तालीम शिक्षा के मुतातत्व है।

- **अंबेडकरवादी विचारधारा (Ambedkar's Political Philosophy) :**

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर 'अंबेडकरवादी विचारधारा' के जनक है। डॉ. बाबासाहब अंबेडकरजी को आधुनिक भारत के निर्माता, भारतीय संविधान के निर्माता, बहुजनों के मसीहा के रुप में जाना जाता है। डॉ. बाबासाहबअंबेडकर सामान्य एवं बहुजनों की उत्थान, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता, जाती उन्मूलन, विकास के समान अवसर, शिक्षा एवं संधि की उपलब्धता आदि की पक्षधर रहे है। जवाहरलाल नेहरु के शब्दों में, वे "हिंदू समाज के अत्याचारपूर्ण तत्वों के प्रति विद्रोह के प्रतिक" थे। (ओ.पी.गाबा : राजनीती-चिंतन की रुपरेखा, पृष्ठ सं. 424) डॉ. बाबासाहब अंबेडकरजीने अस्पृश्यता एवं छुआछुत का स्वयं अनुभव किया। उन्होंने यह जाना की हिंदू धर्म की वर्णव्यवस्था ही अन्यायकारक प्रथाओं का कारण है। उनके अनुसार, अस्पृश्यता की जड़े वर्णव्यवस्था में निहित है। उन्होंने समाज में अछूत एवं अस्पृश्य माने जानेवाली जातियों को संगठित किया। 'शिक्षा, संगठन एवं संघर्ष' का मूलमंत्र दिया। वह दलितों के आत्मसुधार में विश्वास रखते थे। उनका मानना था कि, दलित, अस्पृश्य एवं बहुजनों के विकास के लिए कोई मसीहा नहीं आएगा। बल्कि उन्हें स्वयं दीप होना पड़ेगा अर्थात स्वयं का विकास स्वयं ही करना होगा। मदिरा पान, गोमांस भक्षण, अस्वछता आदि बुरी आदतों को हटाना होगा। उन्होंने समाज को आत्मसन्मान पूर्ण व्यवहार के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अछूतों की शिक्षा को बढ़ावा दिया। अछूतों को अपने अधिकारों के लिए जागृत किया। दलितों के न्याय हक्क के लिए प्रदीर्घ आंदोलन चलाये। कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, चवदार तालाब का सत्याग्रह, अंबादेवी मंदिर प्रवेश सत्याग्रह आदि जनआंदोलन सफलतापूर्वक पूर्ण किये। हिंदू धर्म के अंतर्गत दलितों के उद्धार की संभावना धूमिल होते देखकर हिंदू धर्म का त्याग कर अपने लाखो अनुयायियों के साथ 14 अक्तूबर 1956 में बौद्ध धर्म का स्वीकार किया।

डॉ. अंबेडकरजी ने अछूत एवं अस्पृश्यों के उद्धार के एकमात्र साधन शिक्षा माना है। मिलिंद महाविद्यालय, औरंगाबाद, सिद्धार्थ महाविद्यालय, मुंबई की स्थापना। बहुजनों के जागृति के लिए मूकनायक, बहिष्कृत भारत, प्रबुद्ध भारत आदि साप्ताहिक एवं पाक्षिक चलाये। जो बहुजनों के जागृति में दीपस्तंभ बने। कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, चवदार तालाब का सत्याग्रह, अंबादेवी मंदिर प्रवेश सत्याग्रह आदि जनआंदोलन जनशिक्षा के लिए प्रेरणास्त्रोत बने। बहिष्कृत हितकारिणी सभा, स्वतंत्र मजूर पक्ष आदि राजनितिक पार्टी की सहायता से राजनितिक जागृति की। शासन के विभिन्न अंगो में उचित एवं पर्याप्त प्रतिनिधित्व के लिए असीम संघर्ष किया। डॉ.बाबासाहब अंबेडकर द्वारा निर्मित भारतीय संविधान भारतीयों के समग्र एवं समान विकास का मुलस्त्रोत है। भारतीय समाज के आशा-आकांक्षा का मूलाधार

है। बालविवाह, विधवा विवाह मान्यता, स्त्री सहभागिता, शिक्षा के समान अवसर, शासन के विभिन्न अंगों में पर्याप्त एवं उचित प्रतिनिधित्व, धर्मनिरपेक्षता, न्याय का अधिकार, व्यक्ति स्वातंत्र्य, जातिभेद उन्मूलन, राज्य नीति निदेशक तत्व, सामाजिक-आर्थिक पुनर्रचना, कानून व्यवस्था आदि का सक्षम प्रावधान भारतीय संविधान में अंतर्निहित है। डॉ.अंबेडकरजी के अनुसार लोकतंत्र केवल शासनप्रनाली नहीं यह जिवनप्रनाली है। शासनप्रनाली के रुप में लोकतंत्र को संसदीय लोकतंत्र एवं एकात्मक शासनप्रनाली के रुप में स्वीकार किया। सामजिक-आर्थिक समानता, बहुदलीय प्रणाली, सक्षम विपक्ष आदि सफल लोकतंत्र की कसोटी है।

अंबेडकरवादी अनुयायियों ने दलितों के उत्थान के लिए कार्य करने के कारण कही लोग अंबेडकरवादी विचारधारा को ही 'दलित विचारधारा' मानते है। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ़ इंडिया, बहुजन समाज पार्टी, अंबेडकरवादी रिपब्लिकन पार्टी आदि अंबेडकरवादी एवं दलित विचारधारा पर आधारित है। डॉ.बाबासाहब भीमराव अंबेडकर, राजर्षि छत्रपति शाहू महाराज, महात्मा ज्योतिबा फुले, क्रांतिज्योती सावित्रीबाई फुले, महाराजा सयाजीराव गायकवाड आदि विभूतियों को अंबेडकरवादी विचारधारा के प्रेरणास्त्रोत मानते है। उक्त महापुरुषों के विचारों का भारतीय राजनीती में सक्षम प्रभाव दिखता है। कांशीरामजी, सुश्री मायावती, रा.सू.गवई, अ‍ॅड. प्रकाश अंबेडकर, रामदासजी आठवले, प्रो.जोगेंद्र कवाडे, डॉ.राजेंद्र गवई, अ‍ॅड. सुलेखाताई कुंभारे, चंद्रकांत हंडोरे आदि राजनीतिकों को अंबेडकरवादी विचारधारा एवं दलित विचारधारा के अनुयायी मानते है।

- **मार्क्सवादी विचारधारा (Mark's Political Philosophy) :**

मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित होकर मार्क्सवादी तत्वों को भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रयोग किया गया। भारतीय राजनीती में मार्क्सवादी विचारधारा को अत्यंत महत्व है। भारतीय कमुनिस्ट पार्टी (CPI) की स्थापना 26 दिसंबर 1925 में हुई। मानवेंद्रनाथ राय, सुल्तान अहमद खान, मोहम्मद अली, शफीक सिद्धिकी आदि संस्थापक सदस्य है। 07 नवंबर 1964 में मार्क्सवादी कमुनिस्ट पार्टी का गठन हुआ। सीताराम येचुरी, ज्योति बसु, बुद्धदेव भट्टाचार्य, सोमनाथ चटर्जी, वृंदा करात, प्रकाश करात आदि मार्क्सवादी पार्टी के समर्थक माने जाते है। भारत में मार्क्सवाद एवं साम्यवाद की विचारधारा का क्रियान्वयन का उक्त राजनितिक दलों की सहायता से भारत में किया गया।

- **समाजवादी विचारधारा (Socialistic Political Philosophy) :**

लोकतंत्र से पूरक शासनप्रनाली के रुप में समाजवाद विकसित हुआ है। समाजवाद को लोकतंत्र का प्रमुख आधार माना जाता है। समाजवाद का विकास एक राजनितिक विचारधारा, आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, एक दार्शनिक व्यवस्था, परिवर्तन का आंदोलन आदि के रुप में हुआ है। आर्थिक एवं सामाजिक बदलते परिवेश के अनुरुप समाजवाद एक परिवर्तनशील विचारधारा है। सोशियस (Socious) शब्द से समाजवाद शब्द की उत्पत्ति हुई है। समाजवाद का अर्थ समाज का सुधार है। अर्थात समाजवाद समाज में अंतर्निहित अनिष्ट प्रथाओं को दूर कर समाज में सुधार किया जाता है। समाज से

वर्गभेद, जातिभेद, आर्थिक विषमता, पूंजीवादी व्यवस्था के दोषों को दूर करने का प्रयास करते है। समाज के सभी वर्गों के उत्थान के लिए कार्य करता है। समाजवाद व्यक्तिगत स्वार्थ का विरोध करता है एवं समानता का पुरस्कार करता है। राष्ट्र की संपत्ति समाज या सार्वजनिक मानी जाती है। सभी समाज के हितार्थ राजनितिक,आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था का क्रियान्वयन किया जाता है। देश की संपत्ति, उत्पादन, वितरण आदि पर संपूर्ण समाज का स्वामित्व होता है। संपत्ति एवं उत्पादन का न्याय वितरण और शोषण का अंत किया जाता है। समग्र समाजकल्याण के लिए, मानवता के उद्धार के लिए समाजवादी व्यवस्था कार्य करती है। शांति स्थापना, सहयोग की प्रतिष्ठापना, समान अवसर, सर्व सामान्य का उत्थान, प्रजातंत्र का विकास, संरचनात्मक विकास, सर्वसमावेशक विकास, निष्पक्ष दृष्टिकोण, पारदर्शी प्रशासन, वर्ग विहीन समाज, समष्टि दृष्टिकोण, सार्वजनिक हितों की रक्षा, मानव कल्याण, सामाजिक-राजनितिक-आर्थिक विकास, संपत्ति एवं उत्पादन का समान वितरण, शोषण का अंत, व्यक्तिहित का अंत आदि समाजवादी व्यवस्था की प्रमुख विशेषता पायी जाती है। कार्ल मार्क्स ने वैज्ञानिक समाजवाद की संज्ञा प्रस्तुत की। सेंट साइमन, चार्ल्स फ्यूरीए, रॉबर्ट ओवेन आदि समाजवाद के विचारक माने जाते है। जवाहरलाल नेहरुजी को समाजवाद में प्रगाढ़ आस्था थी। भारतीय समाजवादी चिंतक के रुप में नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, मुलायमसिंह यादव, अखिलेश यादव आदि अग्रगण्य है। समाजवादी विचारधारा पर आधारित भारत में जनता दल, संयुक्त जनता दल, राष्ट्रिय जनता दल आदि राजनितिक पक्ष कार्यरत है। इंद्रकुमार गुजराल, एच.डी. देवेगौडा, चंद्रशेखर, शरद यादव, नितीश कुमार, लालूप्रसाद यादव आदि राजनितिक समाजवादी विचारक माने जाते है।

शिक्षा का समाजीकरण करने की प्रक्रिया समाजवाद है। न्याय, स्वातंत्र्य, समता, बंधुता, आदि समाजवाद के मूलतत्व होते है। समाजवादी विचारधारा में देश एवं समाज के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। समाजवाद में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सामूहिक कल्याण होता है। राष्ट्रहित का भाव शिक्षा द्वारा विकसित किया जाता है। देशप्रेम, मानवकल्याण, त्याग, स्वार्थत्याग, समाज हित आदि मूल्यों का विकास शिक्षा द्वारा किया जाता है। सामाजिक विकास, एकता की भावना, राजनितिक संचेतना, आंतरराष्ट्रीय सदभाव, वैश्विक कल्याण, तकनीकी एवं व्यावसायिक दक्षता, श्रमप्रतिष्ठा, शारीरिक एवं मानसिक सुदृढ़ता, लोकतांत्रिक मूल्य, मानवी मूल्य, मानवाधिकार, लोकतांत्रिक जीवनशैली आदि समाजवादी शिक्षा के उद्देश्य होते है।

अर्थात समाजवादी शिक्षा में श्रम प्रतिष्ठा, सर्वजन कल्याण, सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय, वर्ग-संपत्ति विहीनता, शिक्षा का सार्वभौमिकरण, सहभागिता, सहयोग, राष्ट्रिय संसाधन पर सार्वजनिक अधिकार आदि तत्वों का समावेश पाठ्यक्रम में किया जाता है। व्यक्तिहित की उपेक्षा, भौतिकवादी जीवनशैली का स्वीकार, शासक का अधिपत्य, गुनात्मक अवनती आदि दोष समाजवादी व्यवस्था में पाए जाते है। समाजवाद सर्वहारी समाज के उत्थान की उत्कृष्ट सामाजिक-राजनितिक विचारधारा है। समाज की वर्तमान आवश्यकता के अनुसार समाजवादी विचारधारा का प्रभावशाली क्रियान्वयन आवश्यक है।

- **राष्ट्रवादी विचारधारा (Nationlist Political Philosophy) :**

गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, दादाभाई नौरोजी, बिपिन चंद्र पाल, विवेकानंद, रविंद्रनाथ टैगोर, श्री अरविंद, डॉ. बाबासाहब आंबेडकर, जवाहलाल नेहरु, सरदार पटेल, मौलाना अबुल कलाम आझाद, खान अब्दुल गफ्फार खान आदि विचारक प्रखर भारतीय राष्ट्रवादी माने जाते है। गोपाल कृष्ण गोखले के अनुसार, राष्ट्रवाद का लक्ष्य राष्ट्र के सदस्यों का नैतिक पुनरुत्थान होना चाहिए। लाला लाजपतराय के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र को अपने-अपने आदर्श निर्धारित करने और उन्हें कार्यान्वित करने का मूल अधिकार है। तिलक के अनुसार राष्ट्रवाद कोई मूर्त सत्ता नहीं, यह एक विचार या भावना है। राष्ट्रवाद हमें हमारे गौरवशाली इतिहास की याद दिलाता है। बाल गंगाधर तिलक के अनुसार लॉर्ड मेकाले द्वारा प्रेषित पश्चिमी शिक्षा राष्ट्र के भावी हित एवं कल्याण के लिए घातक है। राष्ट्रिय शिक्षा प्रणाली का निर्माण प्राचीन भारतीय संस्कृति को स्वस्थ और जिवंत के आधार पर होना चाहिए। उन्होंने पश्चिमी मूल्यों पर आधारित शिक्षा का विरोध किया। भारतीय शिक्षा भारतीय संस्कृति, भारतीय जीवनशैली, विकास के लक्ष्य, भारत की संरचना आदि पर आधारित राष्ट्रिय विकास के लिए शिक्षा का नियोजन, आयोजन एवं क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। जवाहरलाल नेहरुजी भारतीय राष्ट्रवाद के सशक्त समर्थक थे। सांस्कृतिक बहुलवाद और संस्लेषण नेहरुजी के राष्ट्रवाद का मूलमंत्र था। नेहरुजी द्वारा रचित 'भारत एक खोज' पुस्तक के अनुसार, राष्ट्रवाद वस्तुत: अतीत की उपलब्धियों, परंपराओं और अनुभवों की सामूहिक स्मृति है। आज के युग में राष्ट्रवाद की भावना इतनी सुदृढ़ हो गई है कि, जीतनी पहले कभी नहीं थी। जब कभी कोई संकट पैदा हुआ है, (हमारा) राष्ट्रवाद फिर से उभर कर सामने आया है और लोगो ने अपनी पुराणी परंपराओं में सुख और सुदृढ़ता की तलाश की है। वर्तमान युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, अपने खोये हुए अतीत की फिर से खोज।"(ओ.पी.गाबा : राजनीती-चिंतन की रुपरेखा, पृष्ठ सं. 429) नेहरुजी के अनुसार राष्ट्रवाद एक महान शक्ति है। वह विध्वसंक राष्ट्रवाद में नहीं बल्कि रचनात्मक राष्ट्रवाद के विश्वास रखते है। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर कहते थे कि, "मै प्रथमत: एवं अंतिमत: भारतीय हूँ।" अपने जात, धर्म, पंथ, संप्रदाय, पक्ष का भारतीयत्व में विलीनीकरण ही सही अर्थों में भारतीय राष्ट्रवाद है।

- **हिंदुत्ववादी विचारधारा (Hinduism Political Philosophy) :**

बाल गंगाधर तिलक, वि.दा.सावरकर, स्वामी विवेकानंद, लाला लजपतराय, लाला हरदयाल आदि हिंदू राष्ट्रवाद के पक्षधर थे। बाल गंगाधर तिलकजी ने गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव के सार्वजनिक आयोजन का प्रारंभ किया यह सर्वज्ञात है। कभी-कभी तिलक पर यह आरोप किया जाता है कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के साथ हिंदू राष्ट्रवाद को मिला दिया और गणपति तथा शिवाजी उत्सव आयोजित करके हिंदुत्व को बढ़ावा दिया। (ओ.पी.गाबा : राजनीती-चिंतन की रुपरेखा, पृष्ठ सं. 369) विनायक दामोदर सावरकर द्वारा 1904 में 'अभिनव भारत' संगठन स्थापन किया। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने समस्त जीवन में हिंदूओं की एकता के लिए कार्य किया। कालेपानी की सजा से मुक्ति मिलने के उपरांत अपनी सारी शक्ति 'हिंदू महासभा' के कार्य को अर्पित की। वह हिंदू महासभा के मूर्धन्य विद्वान माने जाते

थे। हिंदू महासभा के अहमदाबाद, मदुरा आदि अधिवेशन के अध्यक्ष रहें। उनके हिंदू विचारधारा के कारण उन्हें स्वतंत्रता समारोह में आमंत्रित नहीं किया गया। उन्हें गांधीजी विरोधी एवं राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघ का हितैषी माना जाता था। इसी कारण उन्हें गांधीजी की हत्या के षड्यंत्र में नथूराम गोडसे, आप्टे के साथ हिरासत में लिया किन्तु न्यायालय के निकाल के बाद बरी घोषित किया। वह हिंदुओं की सांस्कृतिक महत्ता, हिंदू राष्ट्रवाद एवं हिंदू पुनरुत्थान के पक्षधर थे। हिंदुओ को संगठित करने का उन्होंने अधिक प्रयास किया। उनका मानना था कि, भाषा, इतिहास, संस्कृति, देश, धर्म आदि तत्वों की समानता के कारण हिंदुओं को राष्ट्र के रुप में स्वीकृत किया जा सकता है। जो व्यक्ति सिंधु नदी से समुद्रपर्यंत संपूर्ण भारत को अपनी पितृभूमि तथा पुण्यभूमि मानता है, वही हिंदू है। उक्त तत्व का पुरस्कार करने वाला वर्ग हिंदुत्ववादी माना जा सकता है।" उन्होंने इस परिभाषा की सहायता से हिंदू राष्ट्रवाद का प्रतिपादन किया। कहा जाता है वह मुसलमानों को खुश करनेवाली नीति के समर्थक नहीं थे। राष्ट्रप्रेम, प्रादेशिक एकता एवं अखंडता आदि हिंदुत्व के लक्षण मानते थे। हिंदुत्व की धारणा को मानवतावाद एवं सार्वभौमवाद की धरातल पर देखते रहें। हिंदुत्व के कर्मयोगी जीवन पर विश्वास रखते थे। स्वतंत्र पूर्व एवं स्वातंत्रोत्तर काल में अखिल भारतीय हिंदू महासभा (1915), बजरंग दल (1 आक्टो.1984), विश्व हिदू परिषद (29 आगस्त 1964), राष्ट्रिय स्वंयसेवक संघ (27 सप्टे.1925), भारतीय जनसंघ, भारतीय जनता पक्ष, शिवसेना, महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना आदि संगठन एवं संचालक और अनुयायी हिंदुत्ववादी राष्ट्रवाद के समर्थक रहें। हिंदुत्ववादी विचारधारा के आधारपर अटल बिहारी वाजपेयी एवं नरेंद्र मोदी भारत के प्रधानमंत्री एवं मनोहर जोशी एवं देवेन्द्र फडणविस महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बने। के.बी.हेडगेवार, बी.एस.मुंजे, मा.स.गोलवलकर, मदन मोहन मालवीय, बाल ठाकरे, पी.सुदर्शन, प्रवीन तोगड़िया, मोहन भागवत, भैयाजी जोशी, मुरली मनोहर जोशी, लाल कृष्ण अडवाणी, उमा भारती, उद्धव ठाकरे, राज ठाकरे आदि विभूतियाँ हिंदूत्ववादी राष्ट्रवाद का पुरस्कार करते है।

- **मुस्लिम राष्ट्रवादी विचारधारा (Muslimism Political Philosophy) :**

सर सैयद अहमद खां, महमद इकबाल, मोहमद अली जीना, सिकंदर हयात खां, रहमत अली आदि मुस्लिम राष्ट्रवादी विचारधारा के पक्षधर माने जाते है। सर सैयद अहमद खां भारत में मुस्लिम संप्रदाय के राजनीती एवं सामाजिक गतिविधियों के शिर्ष नेता रहें। उनकी शिक्षा प्राच्य मुस्लिम परंपरा में हुई। मुसलमानों के उन्नयन के लिए नई दिशा दिखाकर राजनितिक शक्ति के रुप में खड़ा किया। कहा जाता है कि ब्रिटिशों से प्रभावित होकर वह उनके अंध भक्त बने। वह पृथक मुस्लिम राष्ट्रवादी बने।1861-65 तक उन्होंने भारतीय मुसलमानों के धार्मिक एवं सामजिक सुधारों एवं शिक्षा का कार्य किया। तत्कालीन ब्रिटिश विधान परिषद के सदस्य के नाते उन्होंने मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग की। इस तरह उन्होंने पृथकवादी मुस्लिम संप्रदाय का प्रतिनिधित्व किया।1887 में उन्होंने भारतीय मुसलमानों ने काँग्रेस में सम्मिलित न होने का प्रचार किया। मोहम्मडन एंग्लो-ओरियंटल स्कुल, अलीगड़ स्थापित किया। जिसका रुपान्तरण महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में हुआ। उन्होंने भारतीय मुसलमानों में पृथकता का भाव विकसित किया। उन्होंने मेरठ के अधिवेशन में कहा कि, " मेरे भाई मुसलमानों, मै तुमको फिर याद दिलाना चाहता हूँ कि तुमने विभिन्न कौमों पर राज्य किया है और कई मुल्कों को

शताब्दियों तक अपने अधीन रखा है। भारत में सात सौ वर्षो तक तुमने राज्य किया है। तुम जानते हो राज्य करना क्या होता है।" भारतीय मुसलमानों को अंग्रेजो से एकनिष्ट बनकर उनका विश्वास जितने का आवाहन करते थे। मेरठ के अधिवेशन में उन्होंने कहा कि," भारत में ब्रिटिशों का शासन केवल चंद वर्षों के लिए ही नहीं, अपितु सदा के लिए बना रहना चाहिए।" अपने कार्य एवं विचारों से वह आधुनिक भारत में मुस्लिम संप्रदाय के राजनीती एवं पृथकत्व के प्रवर्तक बने। मुसलमानों की स्थतियों में सुधार लाने हेतु अलीगड़ आंदोलन चलाया। उन्होंने समय-समय पर मुसलमानों के हित में ब्रिटिश नीति का स्वीकार एवं विरोध किया।1883 में मोहम्मडम पोलिटिकल एसोसिएशन, इंडियन पैट्रियाटीक एसोशिएशन, 1893 में मोहम्मडम एंग्लो-ओरियंटल डिफेन्स असोसिएशन का निर्माण भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विरोध में किया गया।

शेख मुहम्मद इकबाल कवि, मुस्लिम चिंतन के दार्शनिक, मुसलमानों के लिए पृथक राज्य समर्थक के रुप में जाने जाते है। जीवन के पूर्वार्ध में स्वतंत्रता एवं देशभक्त के रुप में जाननेवाले मुहमद इकबाल जीवन के उत्तरार्ध में मुस्लिम पृथकता की ओर झुके। उनकी तराना-ए-हिंदी (1904) कविता के निम्नांकित पंक्तियों द्वारा जीवन के पूर्वार्ध का देशप्रेम झलकता है।

"सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ता हमारा,
हम बुलबुले है इसकी यह गुलिस्तां हमारा,
मजहब नहीं सीखता आपस में बैर रखना,
हिंदी है हम वतन है हिंदोस्ता हमारा।"

(बाँग-ए-बरा, पृ.77-78)

मुसलमानों की जातीयता को नष्ट कर मुसलमानों का शुद्धिकरण करते हुए उन्हें संगठित करने का प्रयास किया। इस्लाम एवं कुरान पर उनकी आस्था के कारण उन्होंने 'कुरान की ओर पुन: जाने' का यह संदेश दिया। 1927 में पंजाब के मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र से विधान परिषद सदस्य चयनित हुए। 1930 में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष बने। उन्होंने द्वितीय एवं तृतीय गोलमेज परिषद में भाग लिया। उन्होंने भारतीय मुसलमानों के लिए पृथक राष्ट्रीयता का स्वीकार किया। वह भारत में शांति का एकमात्र साधन धार्मिक, जातीय एवं भाषीय आधार पर विभाजन को मानते थे। 1938 में उन्होंने मुसलमानों के पृथक राज्य का विचार प्रतिपादन किया।

मोहम्मद अली जीना1906 में दादाभाई नौरोजी के सचिव के रुप में काँग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में संम्मिलित हुए। यहाँ से उनका राजनितिक सफर शुरू हुआ। 1906 में स्थापित मुस्लिम लीग की पूर्वपीठिका सर सैयद अहमद खां द्वारा विकसित की गई। 1910 में मुसलमानों के प्रतिनिधि के रुप में विधान परिषद सदस्य के रुप में चयनित हुए। 1914 में वे मुस्लिम लीग में सम्मिलित हुए। 1916 मुंबई के प्रांतीय काँफ्रेंन्स में मुसलमानों के पुथक प्रतिनिधित्व को दृढ़ निश्चय के रुप में प्रस्तुत किया। मुसलमानों के पृथक राजनितिक संगठन के रुप में मुस्लिम लीग की आवश्यकता एवं उपादेयता को स्पष्ट किया। भारतीय मुसलमानों को संगठित होकर अपने अधिकार के लिए संघर्ष का आवाहन किया। वे भारतीय मुसलमानों को पृथक राष्ट्रीयता का दर्जा देना चाहते थे। लखनऊ में काँग्रेस-लीग समझौते में मुसलमानों के पृथक

प्रतिनिधित्व मान्य किया गया। 1928 में कलकत्ता के सर्वदल संमेलन में नेहरू रिपोर्ट के प्रतिवेदन को असहमति दर्शाते हुए कहा की मुसलमानों को जब तक पृथक अस्तित्व प्रदान नहीं करते तब तक भारतीय संविधान की भावी योजना स्वीकार नहीं की जायेगी। उन्होंने 1930 में गोलमेज परिषद में भाग लिया। जीना द्वारा प्रस्तुत 'चौदा सूत्रों' को 1932 के साम्प्रदायिक पंचाट ने मान्यता दी। 1932 में चौधरी रहमत अली ने 'पाकिस्तान' शब्द का निर्माण किया जिसमे पंजाब, अफगानिस्तान, कश्मीर, सिंध, बलूचिस्तान क्षेत्र संम्मिलित थे। 1938 में मुस्लिम लीग के पटना अधिवेशन में काँग्रेस को हिंदू संगठन बताते हुए महमद अली जिना ने उसकी कड़ी आलोचना की। उन्होंने अपने कृति एवं वक्तव्य द्वारा काँग्रेस के राष्ट्रवादी आंदोलन की प्रखर आलोचना की। 1940 का मुस्लिम लीग के लाहोर अधिवेशन की अध्यक्षता की एवं इसी अधिवेशन में पाकिस्तान का प्रस्ताव पारित किया गया। 1946 में 76 मुस्लिम स्थानों से संविधान सभा के प्रतिनिधि के रुप में मुस्लिम लीग को स्थान मिला। 1947 में माऊंटबेटन द्वारा हिंदूस्थान का विभाजन कर भारत एवं पाकिस्तान की घोषणा की। महमद अली जीना पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर बने।

महमद अली जीना ने सर सैयद अहमद खां, महमद इकबाल का अनुसरण किया जिसका परिमाण हिंदुस्तान का विभाजन एवं पाकिस्तान, बांग्लादेश राष्ट्र का निर्माण हुआ।

4.3.3. राजनितिक विचारधाराएं एवं भौगोलिक सीमाएं

प्राचीन काल से वर्त्तमान काल तक एकसत्ताक राजेशाही, महाजनशाही, सरदारशाही, सरंजामशाही, हुकुमशाही, साम्यवादी, अध्यक्षीय शासनप्रनाली, लोकशाही आदि प्रकार की शासनप्रनाली विश्व के विभिन्न देशों में पायी जाती है। गांधीवादी विचारधारा, अंबेडकरवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा, समाजवादी विचारधारा, राष्ट्रवादी विचारधारा, हिंदूत्ववादी विचारधारा, मुस्लिम राष्ट्रवादी विचारधारा आदि प्रकार की राजनितिक विचारधारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाती है। राजनितिक विचारधारा एवं भौगोलिक सीमा इसका निकट संबंध प्राचीन काल में रहां है। वर्तमान में प्रसार-प्रचार माध्यम, तकनीकी विकास आदि के कारण किसी भी राजनितिक विचारधारा को एक विशिष्ट क्षेत्र में सिमित नहीं रख सकते। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र विकास के लिए उपयुक्त विचारधारा का स्वीकार किया जाता है। विभिन्न विचारधारा के अनुसार राजनितिक पार्टियों का निर्माण एवं संचालन किया जा रहा है। विश्व एवं भारत की सभी राजनितिक विचारधाराओं के संदर्भ में चर्चा करना यहा असंभव है। इस कारण कुछ ही राजनितिक विचारधाराओं के संदर्भ में हमने चर्चा करने का प्रयास किया है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि, राजनितिक विचारधारा के लिए कोई भौगोलिक सीमा की मर्यादा नहीं हो सकती। वह उस विचारधारा के अनुयायियों पर निर्भर है। वर्तमान में राजनितिक विचारधारा का स्वरुप विश्व व्यापक है।

4.3.4. शिक्षा: राजनितिक विचारधाराएं एवं भौगोलिक सीमाएं :

राजनीति एवं शिक्षा का प्राचीन काल से गहरा संबंध रहा है। राजनीतिक मूल्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिक्षा का नियोजन- आयोजन किया जाता था। राजनितिक संस्थाओं के द्वारा शिक्षा के लिए सहायता प्रदान की जाती थी। इस कारणवश शिक्षा के उद्देश्य, नीतियाँ, पाठ्यक्रम एवं क्षेत्र आदि पर राजनीती का प्रभाव होता है। राजेशाही, महाजनशाही, सरदारशाही, सरंजामशाही, हुकुमशाही, साम्यवादी, अध्यक्षीय शासनप्रनाली, लोकशाही आदि प्रकार की शासनप्रनाली विश्व के विभिन्न देशों में पायी जाती है। वर्तमान में अधिकतर देशों ने प्रजातंत्र का स्वीकार किया है। अब शिक्षा को प्रजातंत्र के निर्माण, पोषण एवं विकास का महत्वपूर्ण साधन माना है। जिस देश में प्रजातंत्र के अलावा अन्य शासनप्रनाली है उन देशों में भी राजनितिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार का साधन शिक्षा ही माना है। अपनी राजनितिक विचारधाराओं के प्रसारण के लिए शिक्षा का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा और राजनितिक विचारधाराओं का परस्पर संबंध है।

शिक्षा में शासन संस्था की आवश्यकता होती है। व्यक्ति के विकास में परिवार, मित्रमंडल, समाज, विद्यालय, शासनप्रनाली आदि का प्रभाव पड़ता है। बालक के सहजप्रवृत्ति का विकास परिवार, मित्रमंडल, समाज, विद्यालय, शासनप्रनाली आदि के द्वारा होता है।

4.3.4.1. राजनीती विज्ञान एवं शिक्षा से संबंधित प्रमुख संप्रत्यय :

शिक्षा की आधारभूत अनुशासनों में राजनीती विज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान है। अविकसित, विकासशील एवं विकसित देशों में राजनीती विज्ञान की शिक्षा पर रुचि बढ़ी है। इस विषय में शिक्षा एवं राजनीती विज्ञान का परस्पर प्रभाव देखा जाता है। राजनितिक संस्थाओ का शिक्षा पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। शिक्षा से संबंधित विभिन्न घटनाक्रम, व्यवस्था, नीति आदि को समझने के लिए राजनीती विज्ञान की सहायता मिलती है। राजनैतिक समाजीकरण (Political Socilization), पृथकत्व (Allenation), प्रभावी समूह (Reference Group), संघर्ष (Conflict), शक्ति का केंद्रीकरण- विकेंद्रीकरण (Decentralization of Power), समानता (Equality) आदि राजनीती विज्ञान एवं शिक्षा से संबंधित प्रमुख संप्रत्यय है।

राज्य, राजनैतिक दल, राजनितिक नेतृत्व, सामाजिक संगठन आदि शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य, पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति, पाठ्यसहगामी गतिविधियाँ आदि का आधार है। सोवियत रशिया, चीन ने साम्यवादी विचारधारा के अनुसार शिक्षा का नीति निर्धारण किया। मुसोलिनी और हिटलर ने अपने फॅसिस्ट एवं नाझी विचारधारा के अनुसार शिक्षा का नीति निर्धारण किया। अमेरिका, फ्रांस, भारत आदि लोकतांत्रिक देशोने लोकतांत्रिक विचारधारा के अनुसार शिक्षा का नीति निर्धारण किया। उदारता, लोकतंत्र, वैज्ञानिकता, लोंक कल्याण आदि पर लोकतंत्र में बल दिया जाता है।

- **नौकरशाही:**

निष्पक्षता एवं कुशलतापूर्वक कार्य संपन्न किया जाए तो व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र अधिक हित हो सकता है। किन्तु बेईमानी, भ्रष्ट्राचार, अकुशलता, विलंबता आदि अवगुणों के कारण उचित फल प्राप्त

नहीं होता है। प्रभावपूर्ण राजनेताओं के प्रभाव में नौकरशाही कार्य करता दिखाई देता है। यह बहुजन हिताय नहीं है। शिक्षा की सहायता से कर्तव्यशील, नैतिक, चारित्रिक, राष्ट्रभक्त, कुशल, नेतृत्वक्षम नागरिकों का निर्माण करना आवश्यक है।

- **वर्ग :**

भारत में विभिन्न सामाजिक प्रवर्ग पाए जाते है। नैतिकता, मनोवृत्ती, संस्कृति, व्यवहार आदि में विभिन्न वर्गों में भिन्नता पायी जाती है। धनिक, उच्च नौकरशाह, राजनितिक आदि उच्च वर्ग में आते है। निर्धन, निम्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक पार्श्वभूमी वाले व्यक्ति निम्न वर्ग में आते है। कुछ लोग माध्यम वर्ग में आते है। शिक्षा का प्रयोजन सभी वर्गों के लिए होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय, मानव कल्याणकारी होना आवश्यक है। शिक्षा संस्थानों में भ्रष्ट राजनीती को पनपने नहीं देना चाहिए।

- **गतिशीलता :**

गतिशीलता परिवर्तन का दूसरा नाम है। सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता व्यक्ति एवं समाज में बदलाव लाता है। क्षैतिज एवं उर्ध्वाकार गतिशीलता के लिए उत्तम शिक्षा की आवश्यकता होती है। समाज के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक विकास के लिए विकासात्मक राजनितिक विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। विकास को गतिशीलता प्रदान करने कार्य शिक्षा द्वारा किया जाना चाहिए। शिक्षा एवं राजनीती के गठबंधन से संभव है।

- **परानुभव :**

स्वयं को अन्य स्थिति में रखकर उक्त स्थिति को समझना परानुभव कहा जाता है। राजनीतिक व्यक्ति को यह शिक्षा प्राप्त होगी तो वह उत्तम राजनीतिज्ञ बन सकता है। राजनीती की सहायता से समाज को कौनसी सुविधा प्राप्त होनी चाहिए वह स्वयं समझ जायेंगे। शिक्षकों में भी परानुभाव के गुणों की आवश्यकता है। इस आधार पर विद्यार्थियों की मानसिकता, अवधान, बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता आदि को समझकर शिक्षा विधि-पद्धति का प्रभावशाली उपयोग किया जा सकता है। शिक्षक का यह कर्तव्य है की वह स्वंय एवं अपने विद्यार्थियों को परानुभवी बनाये।

- **स्वतंत्रता :**

स्वतंत्रता यह राजनीती विज्ञान का का विशेष संप्रत्यय है, जो शिक्षा के द्वारा क्रियान्वयन किया जाता है। कहा जाता है कि, लोकतंत्र यह केवल राजनितिक प्रणाली नहीं है यह एक आदर्श जीवनप्रनाली, शिक्षाप्रणाली है। देश में कार्यरत सरकार अपनी विचारधारा के अनुसार शिक्षा नीति का निर्धारण करते है। व्यक्ति के सर्वांगिक विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। न्याय, स्वतंत्रता, समता, बंधुता आदि मूल्यों का समावेश शिक्षा में होना चाहिए।

प्राय: यह कहा जाता है की शिक्षा एवं शिक्षक को राजनीती से दूर रखना चाहिए। शिक्षा एवं शिक्षक की स्थितियों में सुधार के लिए राजनीती एवं राजनितिक नेताओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षक द्वारा प्रजातंत्रीय रूपसे अपनी समस्याओं का समाधान करना अपेक्षित है। शिक्षा समाज के लिए एवं

समाज द्वारा निर्माण, विकसित एवं क्रियान्वित की जाती है। शिक्षा राज्य की कक्षा में सम्मिलित होने के कारण स्थानिक राजनेता का संपर्क आता है। शिक्षक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से राजनीती से संबंधित रहता ही है। असंतुष्ट शिक्षक एवं विद्यार्थियों की सहायता से अपना राजनितिक प्रभाव समाज में बढाने का प्रयास सभी राजनितिक करते रहते है। जाति, भाषा, क्षेत्र, संप्रदाय, धर्म, लिंग, जन्मस्थान आदि का राष्ट्रीयत्व में विलीनीकरण होना चाहिए एवं राष्ट्रियता का अंतरराष्ट्रीयता में विलीनीकरण होना चाहिए। जिससे समाज में सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय, मानवकल्यान, विश्वकल्यान की भावना का विकास होगा। यह उचित शिक्षा द्वारा ही संभव होगा। राजनीती का उचित एवं पर्याप्त उपयोग मानव जीवन सफल, विकासशिल बनाता है किन्तु राजनीती का दुरुपयोग मानव का वर्तमान एवं भविष्य नष्ट भी कर सकता है। जैसे- नाझिवाद, फॅसिस्टवाद, परमाणु युद्ध आदि।

4.3.4.2. शिक्षा एवं राजनीतीक संस्थाओं का अंतरसंबंध :

शिक्षा एवं राजनितिक सत्ता या संस्थाओं का निकट संबंध होता है। विश्व के विविध देशों में विभिन्न प्रकार की शासनप्रनाली होती है। सभी प्रकार की शासनप्रनाली का शिक्षा एवं शैक्षिक संस्थानों पर राजनीती का प्रभाव पड़ता है। शिक्षा में राजनीती का हस्तक्षेप शैक्षिक विद्वानों को अमान्य है। किन्तु शिक्षा के लिए सभी प्रकार की सहायता राजनितिक संस्थाओं द्वारा की जानी चाहिए। शिक्षा नीति, लक्ष एवं उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिस्त, पाठ्य सहगामी गतिविधियाँ आदि के निर्धारण का स्वातंत्र्य शिक्षा क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों को होना चाहिए। समाज की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा किस प्रकार होनी चाहिए यह शिक्षा क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति ही बता सकते है। देश की सत्ता में जो पक्ष रहता है उस पक्ष की राजनितिक विचारधारा का प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है। पूंजीवादी सत्ता में उच्च वर्गियों के लिए विशेष शिक्षा दिया जाता है। साम्यवादी सत्ता में श्रमिक, किसान, गरीब एवं सामान्य जनता के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। अर्थात सत्ताधारी पक्ष अपनी राजनितिक विचारधारा के अनुसार शिक्षा नीति, नियोजन एवं क्रियान्वयन करता है। किन्तु शिक्षाविदों के अनुसार, शिक्षा सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय होनी चाहिए। सभी के लिए शिक्षा उपलब्ध होनी चाहिए। शिक्षाविदों को शिक्षा में राजनीतिक हस्तक्षेप अमान्य है किन्तु सहयोग अपेक्षित है।

एकसत्ताक राजेशाही, महाजनशाही, सरदारशाही, सरंजामशाही, हुकुमशाही, साम्यवादी, अध्यक्षीय शासनप्रनाली, लोकशाही आदि शासनप्रनाली शिक्षा व्यवस्था निम्नवत पायी जाती है-

- **राजेशाही शासनप्रनाली में शिक्षा :**

राजेशाही शासनप्रनाली में सभी सत्ता राजा के पास केंद्रित थी। राजपुत्रों के लिए विशेष शिक्षा का प्रयोजन किया जाता था। युद्ध कौशल, धर्म, राजनीती, प्रशासन, नेतृत्व क्षमता, शारीरिक शिक्षा आदि पर आधारित शिक्षण राजपुत्रों को दिया जाता था। राजा के पौत्र, सरदार के पौत्र, धनिक वर्ग के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। सामान्य जनता के लिए सामान्य शिक्षा ही उपलब्ध की जाती है। राजा की सत्ता के विरुद्ध जनमत तयार न हो इसका विशेष ध्यान दिया जाता है। राजकीय हक्क के प्रति

सामान्य जनता जागरुक न हो इसके लिए प्रयास किया जाता है। बहुजनों की शिक्षा की ओर दुर्लक्ष किया जाता है। राजा के द्वारा निर्मित नियमों का पालन करना सामान्य जनता के लिए अनिवार्य होता है।

- **सरदारशाही शासनप्रनाली में शिक्षा :**

राजेशाही शासनप्रनाली में अस्थिरता निर्माण होने के कारण राजा को राजपद से हटाया जाता है। राज्य के कुछ कर्तबगार सरदार राज्य की सत्ता का संचालन करते थे। उस शासनप्रनाली को सरदारशाही के नाम से जाना जाता है। राजनिष्ठा, राजाज्ञा पालन, देशहित, देशसेवा, त्याग आदि अपेक्षा सामान्य जनता के द्वारा की जाती है। सरदारशाही शासनप्रनाली में शिक्षण व्यवस्था राजेशाही शासनप्रनाली के समान होती है। शारीरिक शिक्षा, युद्ध कौशल, धार्मिक शिक्षा आदि की विशेष शिक्षा राजकुलिन युवाओं को दी जाती है। सामान्य जनता के लिए सामान्य शिक्षा दी जाती थी। सामान्य जनता के लिए उच्च शिक्षा का प्रावधान नहीं था।

- **हुकुमशाही शासनप्रनाली में शिक्षा :**

इटली की फॅसिज़म एवं जर्मनी की नाझिजम यह हुकुमशाही शासनप्रनाली के सर्वोत्तम उदहारण है। युद्धोत्तर स्थतियों का लाभ लेते हुए जर्मनी एवं इटली में क्रमशः हिटलर एवं मुसोलिनी ने हुकुमशाही शासनप्रनाली की स्थापना की। फॅसिस्टवादियों की सहायता से मुसोलिनी ने अपना हुकुमशाही साम्राज्य स्थापित किया। 1934 में हिड़ेनबुर्ग के मृत्यु के उपरांत सर्वाधिकारी बना। जर्मन पार्लमेंट नष्ट कर हिटलर हुकुमशहा बना। आज वर्तमान में विविध देशों में भी हुकुमशाही शासनप्रनाली का अस्तित्व दिखायी देता है।

लोकतांत्रिक शासनप्रनाली नाममात्र रहीं। समाचार पत्र, मुद्रण यंत्रणा, कामगार संघटना आदि पर नियंत्रण प्रस्थापित किया। मुद्रण स्वातंत्र्य, सभा स्वातंत्र्य, भाषण स्वातंत्र्य आदि पर रोक लगा दी। विरोधियों को दंडित किया। शस्त्र निर्मिति एवं लष्करी शिक्षा पर बल दिया गया। राज्य विरोधी तत्वों को नष्ट किया गया। सत्ता के अनुकूल शिक्षा को प्रेषित किया गया। शिक्षा केवल वरिष्ट एवं बलिष्ठ समाज के लिए होती है। राज्य के हित में ही सामान्य जनता का हित होता है। प्रज्ञावान बालक सत्ताधारी एवं उच्च वर्गियो में जन्मते है। शिक्षा से सत्ताधारी एवं उच्च वर्गियों में उच्च गुणों का विकास होता है। इस हेतु सत्ताधारी एवं उच्च वर्गियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। राजनितिक एवं सत्ताधारियों द्वारा शिक्षा नीति निर्धारित की जाती है। संस्कृति का उदात्तीकरण, राष्ट्रवाद, वैश्विक प्रभुत्व, शिस्त पालन, कर्तव्य पालन, त्याग, राष्ट्रनिष्ठा आदि तत्वों पर शिक्षा अधिष्टित होती है। अपनी हुकुमशाही शासनप्रनाली के नीति पर शिक्षा दी जाती है। शारीरिक शिक्षा, लष्करी शिक्षा, शिस्त, आज्ञा पालन, स्वार्थ त्याग, राष्ट्रवाद आदि शिक्षा में सम्मिलित होते है।

- **साम्यवाद शासनप्रनाली में शिक्षा :**

लेनिन के नेतृत्व में किसान एवं श्रमिको की सोवियत सरकार स्थापित की। सोवियत सरकार को किसान, श्रमिक एवं सामान्य जनता का सहयोग प्राप्त हुआ था। लेनिनने बोल्शेविक पक्ष (बहुमतवाला पक्ष) का नाम बदलाकर कम्युनिस्ट (साम्यवादी) पक्ष कर दिया। साम्यवादी शासनप्रनाली को हुकुमशाही

शासनप्रनाली का स्वरुप प्राप्त हुआ। साम्यवादी शासनप्रनाली में शिक्षा का स्वरुप मार्क्सवाद, साम्यवाद आदि पर आधारित था। श्रमिक, किसानों एवं सामान्य जनता के हितो की रक्षा के लिए शिक्षा का आयोजन, नियोजन एवं क्रियान्वयन किया गया। प्रसार माध्यम, लेखन-भाषण स्वातंत्र्य, व्यक्ति स्वातंत्र्य आदि पर बंधन होते है। शिक्षा के द्वारा मार्क्सवाद एवं साम्यवाद का प्रचार-प्रसार किया गया। साम्यवादी अपनी विचारधारा के अनुसार शिक्षा नीति का नियोजन करते है। साम्यवादी शिक्षा के केंद्र में श्रमिक, किसान, कामगार एवं सामान्य जनता होती है। शिक्षा के द्वारा साम्यवाद को अनुकूल जनता के विचार बनाये जाते है। परिश्रम, विज्ञान, उत्पादन मूल्य, निरीश्वर, नैतिक शिक्षा आदि को शिक्षा में महत्ता दी जाती है। आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, राजकीय, सांस्कृतिक आदि दृष्टिकोण से परिश्रम को महत्व दिया जाता है। शिक्षण यह साम्यवाद का शस्त्र एवं शिक्षक शिपाई होता है। मार्क्सवाद एवं साम्यवाद का प्रभाव रशिया में नहीं पुरे विश्व में दिखाई देता है। पंचवार्षिक योजना यह रशियन साम्यवाद की देन है। पंचवार्षिक योजना के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है। राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम (कृषि, अभियांत्रिकी, शस्त्र निर्मिति आदि) का चयन विद्यार्थियों को करना होता है। साम्यवादी विचारों से प्रेरित नागरिकों का निर्माण शिक्षा द्वारा किया जाता है। यही साम्यवादी शिक्षा का लक्ष्य होता है।

- **लोकतंत्र शासनप्रनाली में शिक्षा :**

लोकतंत्रात्मक शासनप्रनाली यह विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं आदर्श शासनप्रनाली मानी जाती है। परिवार, विद्यालय, सामाजिक संस्था एवं राजनितिक संस्था आदि में लोकतंत्रात्मक शासनप्रनाली का प्रयोग किया जाता है। जीवन के विभिन्न अंगो में लोकतंत्रात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है। लोकतंत्र में सर्व सामान्य जनता के सर्वांगिक विकास पर बल दिया है। लोकतंत्र में लिंग, जन्मस्थान, वंश, जाति, धर्म, पंथ, वर्ग, क्षेत्र आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता। सभी मानव समान है यह लोकतंत्र का मूलाधार है। सभी व्यक्तियों को अपनी क्षमता के अनुसार विकास के अवसर प्रदान किये जाते है। लोकतंत्र में सभी को स्वतंत्रता प्रदान की जाती है किन्तु सामाजिक जीवन की मर्यादाओं का पालन व्यक्तियों को करना है। ‘जियो और जीने दो’ इस तत्व का पालन व्यक्तियों द्वारा करना अपेक्षित है।

राजनितिक दृष्टि से लोकतंत्र के क्रियान्वयन में दोष होंगे किन्तु शिक्षा की दृष्टी से लोकतंत्र सर्वोत्तम है। लोकतंत्र केवल शासनप्रनाली नहीं, यह एक जीवनप्रनाली है। न्याय, स्वातंत्र, समता, बंधुभाव आदि पर लोकतंत्र की आधारशिला है। उक्त मूल्यों की शिक्षा लोकतांत्रिक शिक्षा प्रणाली में अपेक्षित है। लोकतंत्र में लिंग, जन्मस्थान, वंश, जाति, धर्म, पंथ, वर्ग, क्षेत्र आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता। सभी के शैक्षिक विकास के समान अवसर प्रदान किये जाते है। लोकतांत्रिक विधि का प्रयोग शिक्षा में किया जाता है। अभिक्रमशिलता, साहस, उद्यमिता, चिकाटी, श्रमप्रतिष्ठा आदि मूल्यों का समावेश लोकतांत्रिक शिक्षा में किया जाता है। लोकतंत्र के प्रभाव के कारण शिक्षा शिक्षक केंद्रित न रहते विद्यार्थी केंद्रित बनी है। विशिष्ट बालकों के लिए विशेष शिक्षा का प्रबंधन किया जाता है। दिव्यांगो के लिए विशेष शिक्षा का प्रावधान विद्यालयों में किया जाता है। अल्पसंख्यांक, आर्थिक एवं सामाजिक पिछड़े वर्गों के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है। उच्च शिक्षा, शोध हेतु विशेष छात्रवृत्ति का प्रावधान किया है।

4.3.5. पाठसार / सारांश :

प्राचीन काल से शिक्षा पर धर्म का प्रभाव था। मानव की प्रगति के साथ-साथ परिवार, समाज, राजनितिक संस्था आदि का निर्माण हुआ। पराक्रमी, शुर लोगों का नेतृत्व विकसित हुआ। राजेशाही, महाजनशाही, सरदारशाही, हुकुमशाही, साम्यवादी हुकुमशाही, लोकतंत्र का विकास हुआ। विविध राजनितिक विचारधाराओं की भौगोलिक सीमाएं मर्यादित क्यों न हो किन्तु शिक्षा भौगोलिक सीमाओं को लांघकर विश्व में फैलती है। विविध शासनप्रनाली में शिक्षा का महत्व अनन्यसाधारण है। विश्व की सभी राजनितिक विचारधारा शिक्षा की सहायता से ही दी जा सकती है। भारत की राजनितिक संस्कृति में राजगुरु का स्थान राज्य में महत्वपूर्ण था। शिक्षक स्थान राजनितिक विचारधाराओं का निर्माण, क्रियान्वयन, प्रसार-प्रचार, विकास आदि में महत्वपूर्ण स्थान होता है। राजनितिक विचारधाराओं को शिक्षा की सहायता से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर स्थानांतरित किया जाता है। देश की राजनितिक विचारधारा के अनुकूल नागरिकों को शिक्षकों द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है। देश की राजनितिक विचारधारा के क्रियान्वयन का शस्त्र शिक्षा एवं शिपाई शिक्षक को माना जाता है। विश्व में अधिकतर देशों में लोकतंत्र पाया जाता है। लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुसार शिक्षा का प्रयोजन किया जाता है। न्याय, स्वातंत्र्य, समता, बंधुता आदि लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास शिक्षा द्वारा किया जाता है। वर्तमान में लोकतंत्र शासनप्रनाली, शिक्षणप्रनाली, जीवनप्रनाली, मानवप्रणाली बनी है।

4.3.6. कठिन शब्दावली :

विचारधारा : प्रेस्टन किंग के अनुसार, "विचारधारा का राजनितिक व्यवस्था में राजनितिक विचारों की सुंगत प्रणाली के वास्तविक अनुप्रयोग के साथ संबंध होगा ताकि वह उनकी गतिविधियों को निर्दिष्ट करे या इन अनुप्रयोगों को करने के गंभीर विभेद के साथ उसका संबंध होगा।"

लोकतंत्र : अब्राहम लिंकन के अनुसार, " जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन से होता है।"

समाजवाद : जी.डी.एच.कोल के अनुसार,"समाजवाद एक आंदोलन भी है, विचार भी।"

फासीवाद : विलियम एबेस्टाइन के अनुसार,"फासीवाद एकदलीय अधिनायक यंत्र (Singal-Party Dictatorship) के अंतर्गत सरकार और समाज का सर्वाधिकारी संगठन (Totalitarian Organization) है जो घोर राष्ट्रवादी (Intensely Nationalist), प्रजातिवादी (Racist), सैन्यवादी (Militarist) और साम्राज्यवादी (Imperialist) है।"

नाझीवाद : "फासीवाद का जर्मन रूपांतरण नाझिवाद कहा जाता है।"

राष्ट्रवाद : जवाहरलाल नेहरुजी द्वारा रचित 'भारत एक खोज' पुस्तक के अनुसार, राष्ट्रवाद वस्तुत: अतीत की उपलब्धियों, परंपराओं और अनुभवों की सामूहिक स्मृति है। आज के युग में राष्ट्रवाद की भावना इतनी सुदृढ़ हो गई है कि, जीतनी पहले कभी नहीं थी। जब कभी कोई संकट पैदा हुआ है, (हमारा) राष्ट्रवाद फिर से उभर कर सामने आया है और लोगो ने अपनी पुराणी परंपराओं में सुख और सुदृढ़ता की तलाश की है। वर्तमान युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, अपने खोये हुए अतीत की फिर से खोज।"

हिंदुत्ववाद : “जो व्यक्ति सिंधु नदी से समुद्रपर्यंत संपूर्ण भारत को अपनी पितृभूमि तथा पुण्यभूमि मानता है, वही हिंदू है। उक्त तत्व का पुरस्कार करने वाला वर्ग हिंदुत्ववादी माना जा सकता है।”

4.3.7. अभ्यास-प्रश्न / बोध-प्रश्न :

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मार्क्सवाद का उदय कौनसे देश में हुआ ?

(क) अमेरिका

(ख) रशिया

(ग) भारत

(घ) चीन

2. ‘पाकिस्तान’ (PAKISTAN) शब्द की निर्मिती में निम्नांकित क्षेत्र संम्मिलित होते है।

(क) सिंध

(ख) बलूचिस्तान

(ग) हैदराबाद

(घ) कश्मीर

3. निम्नांकित में से कौनसे विचारक मुस्लिम राष्ट्रवादी विचारक माने जाते है?

(क) मौलाना अब्दुल कलाम आझाद

(ख) खान अब्दुल गफ्फार खान

(ग) दादाभाई नौरोजी

(घ) महमद इकबाल

4. निम्नांकित में से कौनसे विचारक हिंदुत्ववादी विचारक माने जाते है?

(क) जवाहरलाल नेहरू

(ख) वि.दा.सावरकर

(ग) मानवेंद्रनाथ राय

(घ) महात्मा गांधी

5. निम्नांकित में से कौनसी राजनितिक विचारधारा का उदय भारतीय भूमि में हुआ?

(क) साम्यवादी विचारधारा

(ख) फॅसिस्ट विचारधारा

(ग) अंबेडकरवादी विचारधारा

(घ) लोकतांत्रिक विचारधारा

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. राजनितिक संस्था से आप क्या समझते है ?
2. राजनितिक संस्थाओं का उदय किस प्रकार हुआ ? स्पष्ट कीजिए।
3. राजनीती एवं शिक्षा के संबंध पर प्रकाश डालिए।
4. लोकतंत्र से आप क्या समझते है।
5. समाजवाद की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।
6. हिंदुत्ववाद का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
7. मुस्लिम राष्टवादी विचारधारा की विशेषता बताईए।
8. अंबेडकरवादी विचारधारा का स्वरुप स्पष्ट कीजिए।
9. भारत के संदर्भ में साम्यवाद पर प्रकाश डालिए।
10. राजनीतीक विचारधारा में शिक्षा की भूमिका संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. राजनितिक संस्थाओ का अर्थ बताते हुए विश्व की विभिन्न राजनितिक संस्थाओं की चर्चा कीजिए।
2. राजनितिक संस्थाओ से आप क्या समझते है? भारत की विभिन्न राजनितिक संस्थाओं की चर्चा कीजिए।
3. विश्व की विभिन्न राजनीतीक विचारधारा का भारतीय परिप्रेक्ष्य में विवेचन कीजिए।
4. भारत की विभिन्न राजनीतीक विचारधारा का भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में विवेचन कीजिए।
5. 'राजनितिक विचारधारा एवं शिक्षा का घनिष्ट संबंध होता है' स्पष्ट कीजिए।
6. 'लोकतंत्र यह सर्वोत्तम राजनितिक विचारधारा है' चर्चा कीजिए।
7. विश्व की अन्य शासनप्रनाली से लोकतांत्रिक शासनप्रनाली अधिक व्यापक संप्रत्यय है- स्पष्ट कीजिए।
8. मुस्लिम राष्ट्रवादी विचारधारा का स्वातंत्र्योत्तर भारत के संदर्भ में अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
9. हिंदुत्ववादी विचारधारा का स्वातंत्र्योत्तर भारत के संदर्भ में अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
10. राजनितिक विचारधारा, भौगोलिक सीमाएं एवं शिक्षा का परस्पर संबंध विस्तार से स्पष्ट कीजिए।

4.3.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

- ❖ किरण, चांद (2013). *शिक्षा: सामाजिक परिप्रेक्ष्य*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.
- ❖ गाबा, ओ.पी. (1998). *राजनीति- चिंतन की रुपरेखा*. दिल्ली: मयूर पेपरबैक्स.
- ❖ गुप्ता, एस.पी. एवं गुप्ता, अलका (2015). *शिक्षा के समाजशास्त्रिय परिप्रेक्ष्य*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.
- ❖ नागर, पुरुषोत्तम (2013). *आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनितिक चिंतन*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.
- ❖ जौहरी,जे.सी. (1990). *समकालीन राजनितिक सिद्धांत*. नई दिल्ली: स्टर्लिंग पब्लिशर्स.
- ❖ तरुण, हरीवंश (2006). *मानक शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.
- ❖ दुनाखे, अरविंद (2008). *भारतीय समाज, शिक्षक व शिक्षण*. पुणे: नित्य नूतन प्रकाशन.
- ❖ पारसनिस, न.रा. (2007). *शिक्षणाची तात्विक व समाजशास्त्रिय भूमिका*. पुणे: नित्य नूतन प्रकाशन.
- ❖ पाण्डेय, के.पी. (2011). *शिक्षा के सामाजिक आधार*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.
- ❖ मालवीय, राजीव (2016). *शिक्षा के मूल सिद्धांत*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.
- ❖ माथुर, एस.एस. (2015). *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रिय आधार*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
- ❖ रूहेला, एस.पी. (2015). *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रिय आधार*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
- ❖ लाल, रमन बिहारी (2006).*शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजशास्त्रीय सिद्धांत*. मेरठ: रस्तोगी पब्लिकेशन.
- ❖ शुक्ला, के.के. एवं परिहार, ए.जे.एस. (2011). *शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार*. मेरठ: आर.लाल. बुक डपो.
- ❖ BoixMansilla, V. (2005). *Assessing student work at disciplinary crossroads.Change*, January/February, 14-21.
- ❖ Beane, J. A. (1995). *Curriculum integration and the disciplines of knowledge*. Phi Delta Kappan,77(4), 616-622
- ❖ Foshay, A. W. (1970). *How fare the disciplines? Phi Delta Kappan.* 51(7), 349-352.

- Heckhausen, Heinz. *"Discipline and Interdisciplinarity."* Interdisciplinarity. Leo Apostel et al.,eds. OECD: Paris, 1972.
- Youngblood, Dawn, 2007. "*Interdisciplinary Studies and the Bridging Disciplines: A Matter ofProcess.*" Journal of Research Practice, v.3, i.2.
- http://www.eric.ed.gov/ERICWebPortal/contentdelivery/servlet/ERICServlet?accno=EJ800366.
- https://en.wikipedia.org/wiki/Outline_of_academic_disciplines#/media/File:Disciplines_mind_map.jpg

नोट – इस कृति का कोई भी अंश विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लिए बिना पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। संयोगवश यदि इसमें कोई भी कमी या त्रुटि रह गई हो तो इसके लिए संपादक, संयोजक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। अवगत कराए जाने पर सुधार करने का प्रयास किया जाएगा।